सूरज के दर्पण में

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

सूरज के दर्पण में

आवृत्ति	:	प्रथम संस्करण, अप्रैल 2021 4000 प्रतियाँ
मूल्य	:	₹ 100/-
प्रकाशक	:	**साधुमार्गी पब्लिकेशन** अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.) ☎ 0151-2270261, 3292177, 2270359 e-mail : ho@sadhumargi.com visit us : www.sadhumargi.com
ISBN No.	:	978-81-951493-3-9
मुद्रक	:	**ज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञ** ज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञज्ञ ज्ञ Visit us : kkkkkkk kkkkkkkkkkkkkkk

आत्महित में लोकहित...

सूरज से प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। सभी उसे अच्छी तरह से जानते हैं। वह उपयोगी है। लोग उपयोग भी करते हैं। पर जितना उपयोग करते हैं वह सीमित है। जो उसका सही उपयोग कर ले उसके जीवन की दिशा ही बदल जाये। सही उपयोग तब हो पायेगा जब उससे शिक्षा ग्रहण करेंगे।

सूरज दिखावा नहीं करता... वह अपना काम करता है... बिना किसी की प्रतीक्षा किये... वह किसी के फोन कॉल का इंतजार नहीं करता... वह इसका भी इंतजार नहीं करता कि कोई उसके दरवाजे पर आकर दस्तक दे... वह संसार को जगाता है... उठाता है... वह संघर्ष की मिसाल है... समयबद्धता की पहचान है... लोकमंगल के लिए सूरज खुद को छिपाता भी है... दूसरे का ग्रास भी बन जाता है... वह अपने अस्तित्व का अभिमान भी नहीं करता... जनहित के लिए दूसरों को श्रेय दे देता है...

सूरज अपनी शक्ति का सकारात्मक उपयोग करता है। हम भी अपनी शक्ति का सकारात्मक उपयोग करें। सकारात्मक उपयोग से रिश्ते-नातों के अनुराग को दूर करें... राग को किनारे करें... साधना की दिशा में चलें... परमात्मा की दिशा में बढ़ें... हमारी सकारात्मक सोच प्रसन्नता का कारण बनेगी... प्रसन्नता हमें ऊर्जा से भर देगी... सूर्य अपनी ऊर्जा का प्रयोग लोकमंगल में करता है... हम अपनी ऊर्जा का उपयोग आत्ममंगल में करें... ज्ञानार्जन में करें... आराधना में करें... चित्त को निर्मल बनाने में करें... अपनी समझ को सही बनाने में करें... हमारा आत्ममंगल करना, ज्ञानार्जन करना, आराधना करना ही मानवहित में होगा... जीवहित में होगा... लोकहित में होगा...

लोकहित में हम अपनी शक्ति का उपयोग करके सूरज में अपना प्रतिबिम्ब देखने की कोशिश करें। हालांकि यह इतना आसान नहीं है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि हो न सके... हो सकता है... बस विचार करना है... प्रयास करना है... सूरज को अपने सामने रखना है... उसके माध्यम से अपने दोषों को

पहचानना है... उन्हें दूर करना है... सूरज के साथ प्रख्यात शायर दुष्यंत कुमार की इस पंक्ति को भी सामने रख लेना है –

'कौन कहता है कि आसमां में सुराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीअत से उछालो यारों'

हम इसे सामने रख पाते हैं... ऐसा विचार कर पाते हैं... ऐसा संकल्प कर पाते हैं... अच्छाइयों को स्वीकार करने में तत्पर हो पाते हैं... तो निश्चित रूप से अपने जीवन को नयी दिशा दे पाएंगे... अपने आपको धन्य बना पाएंगे...

हम जीवन को नयी दिशा दे सकते हैं... अपने आपको धन्य बना सकते हैं... नयी दिशा दे लेंगे... धन्य बना लेंगे... अवश्य कर लेंगे... कर ही लेंगे... बस करनी है शुरुआत... तो कर डालिए... आज से... अभी से... इसी क्षण से... सूरज को सामने रखते हुए... प्रभु महावीर को याद करते हुए... आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. के व्यक्तित्व का ध्यान करते हुए...

इसमें सहयोगी बनेगी आपके हाथ में आयी पुस्तक 'सूरज के दर्पण में'... यह आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. के प्रवचनों का संकलन है... इसमें संकलित प्रवचन जोधपुर चातुर्मास के हैं... सन् 2019 के चातुर्मास के... उस चातुर्मास के प्रवचनों की छह और पुस्तकें पहले प्रकाशित हो चुकी हैं... यह सातवीं है...

पूर्व की भाँति इसके प्रकाशन में भी गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्य श्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्य श्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गयी हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बतायें, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

संयोजक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छांव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हे चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**सूरज के दर्पण में**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

जयचन्द लाल जी शकुन्तला देवी गेलड़ा
हावड़ा (पश्चिम बंगाल)

।। सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें।।

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	गुणवान बनो	7
2.	पग-पग पर निधान	24
3.	सौभाग्य की सरगम	39
4.	अपना रूप पिछावन	57
5.	मोह रात बने मोह जीत रात	68
6.	मैं महावीर की दिशा में	72
7.	मैं भी बन जाऊं महावीर	86
8.	जब ले आत्मा अँगड़ाई	91
9.	प्रीत न जाने साँझ सवेरे	105
10.	अवसर लाखीणो	117
11.	हर कदम सफलता की ओर	129
12.	शब्दो मां समाए ना ऐवो तू महान	142
13.	सँभलो, पाँव फिसल न जाये	153
14.	अलख को हम लख सकें	165

1

गुणवान बनो

मनड़ो घणो रिझायो जी कि मनड़ो घणो रिझायो जी,
दया धर्म उपदेश वीर रो घणो सुहायो जी,
कि मनड़ो घणो रिझायो जी...
दान सुपात्र मन हर्षावे मिटे जग की जात,
युगों-युगों की रथ जग चाले भली भाव ने साथ... मनड़ो...
मन मति न जीत ना पाय, रखना ध्यान विशेष,
मर्यादा शासन की शोभा, टाले सब संक्लेश... मनड़ो...

प्रभु महावीर का निर्वाण दिवस सन्निकट है। प्रभु महावीर इस युग के अप्रतिम तीर्थंकर थे। 24वें तीर्थंकर हुए। ऐसा हम पढ़ते, सुनते और जानते रहे हैं कि 23 तीर्थंकरों के परीषह, उपसर्ग एक तरफ रख दिए जाएं और भगवान महावीर के परीषह और उपसर्गों को दूसरी तरफ रखा जाए तो भगवान महावीर के परीषह और उपसर्ग ज्यादा होंगे। उम्र छोटी, काया छोटी पर परीषह, उपसर्गों की भरमार! कह दें कि पग-पग पर परीषह। इतने सारे परीषहों को शांत भाव से सहन करना, कहना बहुत आसान है किंतु एक छोटी-सी बात भी मन में आग लगा देती है।

छोटी-सी बात भी मन को शांत नहीं रहने देती है। उछलता है मन। कंकड़-पत्थर पर चलते हैं तो भी शरीर उछलने लगता है, मन उछलने लगता है और कहीं चिनगारी पर पैर रख दिया तो भी मन उछलने लगता है। बंदर से भी बढ़कर हमारा मन उछलने लगता है। प्रभु महावीर के विषय में हमने बहुत सुना है, बहुत जाना है। फिर भी उनसे हम अनजान बने रह गए। कैसे बने रह गए अनजान? जब तक स्वयं उसका हम अनुभव नहीं कर लेते हैं, थोड़ा-सा भी अपने जीवन में ढाल नहीं लेते हैं, तब तक उससे अनजान ही रहेंगे। थोड़ा-सा

भी अनुभव करके देखें कि उनके साथ जो परीषह, उपसर्ग हुए, यदि मेरे साथ थोड़ा-सा हो जाए तो मैं कितना शांत रहता हूं? मैं यदि शांत रहना समझ गया, शांत रहना सीख गया तो मैंने महावीर को जान लिया। तो मैंने प्रभु महावीर पर आए हुए परीषहों और उपसर्गों को जान लिया। दूसरा, एक छोटी-सी बात को झलकाने में मन को कितना बल लगाना पड़ता है तब जाकर वह स्थिर रह पाता है। नहीं तो वह बहुत जल्दी भड़कने वाला है।

प्रभु महावीर के निर्वाण के साथ ही दीपावली का समय जुड़ा हुआ है। किसी जमाने में दीपावली के दिन खाते-बही नए भरे जाते थे। वह भी हर किसी से नहीं भरवाये जाते थे। जो लिखने वाला होता है, उसी के हाथों से लिखाया जाता था। ऐसा नहीं कि हर कोई आदमी लिख दे। वह बड़े तरीके से लिखा जाता था। लिंक हुआ कभी, लिखते हैं क्या? लिखेंगे तो ज्ञात हो पायेगा। आजकल आप लोग लिखते हो या नहीं लिखते हो, किंतु पहले ऐसा लिखते थे। (प्रतिध्वनि-अभी भी लिखते हैं) मतलब काम हो या मत हो, चलना तो लकीर पर ही है। काम करे या नहीं करे। शालिभद्र जैसी रिद्धि, धन्ना जी जैसी सिद्धि, अभय कुमार जैसी बुद्धि और किसके समान क्या? (प्रतिध्वनि-बाहुबली जैसा बल) हां, बाहुबली जैसा बल। क्या लिखते हैं और? (प्रतिध्वनि-कयवन्ना जी का सौभाग्य) कयवन्ना जी का सौभाग्य और आगे? इतना मिल जाए फिर तो बहुत है।

मिलना व्यक्ति के पुण्य व पुरुषार्थ पर आधारित है। हमारा बैंक में जमा क्या है? हमने बैंक में क्या जमा किया है? जो बैंक में आपका जमा है, वही आपको मिलेगा। एफ.डी. भी नहीं है ये, ये तो लॉकर है। आपने बैंक के लॉकर में क्या रखा है, उसकी जानकारी आपको है या बैंक वालों को है? किसको है? आजकल रूल्स क्या हैं पता नहीं, लेकिन पहले बैंक वालों को बताने की आवश्यकता नहीं थी कि आपके लॉकर में आपने क्या रखा है? पहले तो बैंक के लॉकर में जो चीज रखते थे, उसको बैंक में बताने की आवश्यकता नहीं होती थी। अब क्या सिस्टम है, मुझे नहीं पता।

(सभा में बैठे लोग बोलते हैं-बाबजी अभी भी वही सिस्टम है। बैंक वालों को बताने की आवश्यकता नहीं होती है।)

बैंक केवल उसकी सुरक्षा की जवाबदारी निभाता है। सुरक्षा की गारंटी देता है और उसके एवज में कुछ किराया लेता है। आपने उसमें यदि कागज के

भुंगले बनाकर रखे तो आपको केवल वे ही मिलेंगे। यदि सोना, चांदी, रत्नों को लॉकर में रखे होंगे तो आपको वे चीजें मिलेंगी। जो आपने रखा है वही आपको मिलने वाला है। लिखने में हम भले ही लिख दें कि 'शालिभद्र जैसी रिद्धि' किंतु लिखने से वह नहीं मिलेगी। यदि शालिभद्र जैसा हमने भी कुछ आचरण किया होगा या करेंगे तो वैसी रिद्धि हमें मिल सकती है। मिल सकती है या नहीं मिल सकती है? (प्रतिध्वनि-मिल सकती है)

शालिभद्र की कहानी बहुत बार हम सुनते रहे हैं। जितनी बार भी सुन लें, मन ऊबता नहीं है। यह पुण्यवान पुरुषों की पहचान है। नहीं तो बार-बार उसे सुन नहीं पाएंगे। जैसे ही कहानी आएगी मन बोलेगा कि बार-बार वही व्याख्यान। रोज-रोज वही बातें सुन रहे हैं। मन नहीं करेगा उसे सुनने को, लेकिन शालिभद्र की कहानी कितनी बार भी सुन लेते हैं, उनकी जीवनी कितनी बार भी सुन लेते हैं फिर भी मन में प्यास रहती है कि और सुनने को मिले।

आचार्य पूज्य गुरुदेव भोपालसागर के पास एक गांव में थे। वहां माहेश्वरियों के काफी घर थे। गांव का नाम याद नहीं आ रहा है। वहां पर गुरुदेव का व्याख्यान हुआ, मेवाड़-मालवा में कई जगहों पर, जहां जैनियों के घर विशेष नहीं होते या कम होते हैं और साधुओं का आना-जाना बहुत कम होता है, वहां पर दोपहर में भी व्याख्यान होता है। रात्रि में भी लोग कराया करते हैं। कपासन-भोपालसागर के आस-पास माहेश्वरी लोग बहुत ज्यादा संतों के प्रवचन का लाभ लेने के लिए तत्पर रहते हैं। वे आग्रह करके गुरुदेव को ले गए थे। रात्रि के व्याख्यान का प्रसंग बना। उसमें शांति मुनि जी म.सा. का पधारना हुआ। जब वे रामायण सुनाने लगे तो गांव वालों ने कहा कि महाराज! रामायण तो घणी सुणियोड़ी है। बहुत सुनी हुई है। आप तो शालिभद्र जी को सुनाओ। क्या बोले? बोले कि रामायण तो बहुत सुनी हुई है। जो आता है वह रामायण ही सुनाता है। वैष्णव समाज वाले संत भी आते हैं तो रामायण सुनाते हैं। महाभारत सुनाते हैं। ये महाभारत और ये रामायण तो बहुत बार सुनी हुई है, बहुत बार सुन ली और दिनभर घर में भी रामायण ही होती रहती है। अब आप भी क्या रामायण सुना रहे हो? आप तो शालिभद्र सुनाओ। कहने का मतलब शालिभद्र को सुनने के लिए लोगों की आतुरता-तत्परता रहती है। हम भी सुनें शालिभद्र को -

शालिभद्र पुण्यवान, बड़े गुणवान, सुनी जिनवाणी,
जिनकी है अमर कहानी।

ये तो हम जान ही रहे हैं कि शालिभद्र बड़े पुण्यवान हैं। ये भी हम जान रहे हैं कि वे गुणवान हैं किंतु गुणवान की पहचान क्या होती है?

शालिभद्र पुण्यवान, बड़े गुणवान, सुनी जिनवाणी,
जिनकी है अमर कहानी।

गुणवान। सबसे उत्तम गुण है 'क्षमा'। सबसे उत्तम गुण है 'उपशम भाव'। यदि हमारा भाव उपशम रहता है, कषाय शांत रहते हैं, तो सारे गुण उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। उस स्थिति में न क्लेश होगा, न संक्लेश होगा, न राग होगा, न द्वेष होगा। कुछ भी नहीं होगा। शांत भावों का झरना चलता रहेगा। शालिभद्र की खासियत थी कि कभी किसी से तीखे स्वर में बात करने की नौबत ही नहीं आई। आया ही नहीं तीखापन। तीखापन उन्होंने जाना ही नहीं। उन्होंने जितनी मधुरता का अनुभव किया, उतना शायद ही किसी अन्य ने किया है। उन्होंने तीखापन न सुना और न उनके द्वारा कभी तीखेपन का व्यवहार ही हुआ। एकदम शांत भाव। ये अध्यात्म गुण है। मोह-कर्म के तदनुरूप क्षयोपशम होने पर ये गुण प्रकट होते हैं। बाकी गुण, अन्य गुण पैदा हो सकते हैं किंतु उपशम भाव का गुण मोह-कर्म के उपशम से होता है और मोह-कर्म को ही सबसे भारी कर्म माना गया है।

मोह कर्म के उपशम से यह प्रसंग उपस्थित हुआ। भगवान की वाणी सुनने पर उनको बड़ी तृप्ति हुई। मन को बहुत शांति लगी। जब उनका मन शान्त ही था तो फिर बहुत शान्ति कैसे मिली? भगवान के पास वे आए, उससे पहले उनका मन थोड़ा-सा अशांत हो गया था। थोड़ा-सा मन अशांत हो गया। पहली बार अशांत हुआ। पहले कभी हुआ था क्या अशांत? कौनसी डेट थी, कौनसी तिथि थी, कौनसी तारीख थी? जब मगध सम्राट श्रेणिक उनके घर पर आए और मां भद्रा ने शालिभद्र को बुलाया। उन्होंने कहा कि मुझे क्यों बुला रही हो? जो करना है, कर लो। तुम ही तो सब करती रही हो, तुम ही कर लो। फिर माता स्वयं गई बुलाने के लिए और कहा कि ये तो हमारे नाथ हैं। नाथ! सुनकर उन्हें करंट-सा लगा। अब तक तो सारे लोग मुझे ही 'नाथ-नाथ' कहते हैं। क्या मेरे पर भी कोई नाथ है? वह मगध सम्राट के पास गया। माता के कहने से सम्राट के पास गया। चार मंजिल उतरकर, तीसरी मंजिल पर नीचे उतरे। राजा

को इतना प्रेम उमड़ा कि उन्होंने उनको गोद में बिठा लिया।

नरेंद्र मोदी हाथ मिला लें तो भी बहुत है। रामा-श्यामा कर लें तो भी बहुत है। यदि गोद में बिठा लें, मुंह में कवल दे दें तो जानो कि स्वर्ग ही मिल गया। और बाकी क्या रहा? वहां पर मगध सम्राट श्रेणिक अपनी गोद में बिठाता है और हाथ फिराता है। वह बड़ा मुग्ध हो रहा है। बड़ा खुश हो रहा है किंतु शालिभद्र का शरीर पसीने से तर हो गया। क्यों हो गया तर? वह कभी इस हालत में आया ही नहीं। उसको लग रहा है कि मुझे क्या समझा जा रहा है कि मेरे पर इस प्रकार से हाथ फिराया जा रहा है? खैर, अभय कुमार ने देखा और उन्होंने उनको मुक्त करवाया। वे मुक्त तो हो गये पर न जय जिनेन्द्र, न सलाम, न वंदन। कुछ भी नहीं। जैसे पिंजरे से कोई पक्षी निकलता है वैसे ही अपने महल में जाकर बैठ गया। विचार करने लगा कि क्या कमी रही मेरे में? मेरे पास क्या कमी है जिससे मेरे पर भी कोई नाथ है। ये तो अब तक मैंने नहीं सुना था। 'अश्रुतपूर्व'। जो पहले मैंने कभी नहीं सुना, वो आज मुझे सुनना पड़ा। इसका क्या कारण? इतने में मालूम पड़ा कि भगवान महावीर का आगमन हुआ है।

भगवान महावीर का आगमन हुआ है तो भगवान महावीर के समवसरण में चले गए, उनकी देशना में चले गए। वहां पर प्रभु महावीर की देशना सुनी कि 'नाथ कौन होता है और अनाथ कौन होता है?' कितना भी धन मिल जाए, कितनी भी संपत्ति मिल जाए, कितना भी वैभव मिल जाए। धन, संपत्ति, वैभव से कोई नाथ नहीं हो सकता। नाथ कौन होता है? नाथ वह होता है जो अपनी पहचान कर ले। यह जान ले कि मैं कौन हूं। इसकी पहचान कर ले, इसका अनुभव कर ले, वह सच्चा नाथ है। ऐसा नाथ फिर परिस्थितियों से परेशान नहीं होता है। वह जानता है कि मेरे साथ कुछ भी नहीं है। यह बाहर-बाहर की सारी रचना है। मेरी आत्मा का कोई नाथ नहीं है। मैं स्वयं ही स्वयं का स्वयंभू नाथ हूं। मेरी आत्मा पर जो आवरण है, वही दु:ख का कारण है। ऐसा अनुभव करता है कि मेरी आत्मा शाश्वत है, इसलिए वह बाहर की परिस्थितियों से परेशान नहीं होता। वह मानता है कि यह कर्मों का खेल है। कर्मों के खेल के कारण मुझे इन सब बातों को सहन करना होगा। चाहे रोकर सहन करो, दु:खी होकर करो तो भी करना तो पड़ेगा। मन से करो तो भी करना पड़ेगा। अनमने मन से करो तो भी करना पड़ेगा। सहन तो करना ही होगा। वह उस समय शांत

रहता है कि अब मुझे इससे परेशान नहीं होना।

भगवान की वाणी सुनकर उसके भीतर संवेग भाव जाग्रत हो गया। संसार की दशा से मन उद्विग्न हो गया। वे घर आते हैं और माता के सामने दीक्षा की बात करते हैं। माता क्या जवाब देगी? माता ने क्या जवाब दिया? माता ने कहा कि बेटा, तू दीक्षा की बात कर रहा है!

मां भद्रा ने जब यह जाना, उसने चाहा मन भरमाना,
तू पहले समझा ले घर धणीयानी, जिनकी है अमर कहानी

माता ने कहा कि बेटा! मेरी कोई रुकावट नहीं है। पर देखो, तुम्हारी धर्मपत्नियां जो तुम्हारे आश्रित हैं, उनको मैं कैसे समझाऊंगी? पहले उनको तुम्हें समझाना पड़ेगा। मैं तो बाद की बात हूं। मेरी बात बाद की है। पहले किसको समझाना? (प्रतिध्वनि-धर्मपत्नियों को) पहले धर्मपत्नियों को समझाना। तू ऐसा कर कि उनको समझाने का प्रयत्न कर। भद्रा ने सोचा कि समझाने में लगेगा तो कालक्षेप हो जाएगा और काल बीतने के बाद भाव भी ठंडे पड़ जाते हैं। एक बार चढ़ा हुआ होता है वैराग्य। उस समय की अलग ही छटा होती है। उस समय उसको लगता है कि बस अभी मुझे दीक्षा लेनी है। एक घंटे का विलंब किसके लिए? एक घंटे का भी विलंब क्यों करूं? एक घंटे के लिए विलंब क्यों करना? वह एक घंटे के लिए भी विलंब नहीं करना चाहता है किंतु ये रसायन, ये भाव भी ज्यादा वक्त रहते नहीं हैं। जैसे कोयल हर वक्त नहीं बोलती है वैसे ही ये रसायन हर वक्त आते नहीं हैं। न सदा बने ही रहते हैं।

हम भी इतने व्याख्यान सुनते हैं। व्याख्यान सुनकर कभी-कभी वैराग्य चढ़ जाता है। वैराग्य भाव या संवेग का भाव आता होगा, किंतु क्या हर व्याख्यान में आ जाता है? हर वक्त, हर व्याख्यान में नहीं आता है। कभी-कभी ऐसी घड़ी आती है कि हमारे मन में कुछ संवेग की धारा प्रवाहित होने लगती है। हम जानते हैं कि वह कितनी देर चलती है? जैसे ही वातावरण बदला, जैसे ही माहौल बदला, हमारे भाव, हमारे भीतर रही हुई धारा भी बदल जाती है।

माता ने विचार किया कि सबसे अच्छा उपाय यही है। दूसरी बातों की चर्चा से बढ़िया यह समझा कि इससे कहा जाय कि तू पहले अपनी धर्मपत्नियों को समझा। वे समझ जाती हैं तो फिर आगे विचार करेंगे। शालिभद्र पत्नियों को समझाने लगता है। भद्रा ने विचार किया कि ये शालिभद्र इतना पुण्यवान

कैसे है? इसका पुण्य इतना प्रबल कैसे है? इसकी जानकारी मुझे भगवान से लेनी चाहिए।

शालिभद्र पुण्यवान, बड़े गुणवान, सुनी जिनवाणी
जिनकी है अमर कहानी...
भगवान इतनी पुण्यवाणी, इसको कैसे यह मिल पाई
चाहूँ जानना, नहीं रहूं अनजाणी, जिनकी है अमर कहानी

भगवान इसकी इतनी पुण्यवानी कैसे खिली? इसने ऐसा क्या कार्य किया? इसके जीवन में ऐसी क्या घटना घटी? इसने किस प्रकार से क्या कुछ किया, जिससे महान पुण्य का हकदार बना? भगवान ने संगम के भव की बात कही। बताइये कि किस प्रकार से उसने कष्टों को सहा था? कितनी-कितनी कठिनाइयां सही थीं? खाने-पीने की कितनी सारी मर्यादाएं थीं।

साथियो! मर्यादा के लिए उसने कोई सौगन, त्याग-प्रत्याख्यान नहीं लिये थे, किंतु मिलता ही क्या था? राब-रोटी, छाछ-रोटी, नमक-रोटी के अलावा कोई चीज नहीं। जाना ही नहीं कि मिठाई क्या होती है? क्या नमकीन होती है? सुनील जी! आपने कितनी प्रकार की मिठाइयां खाई हैं? याद है? नाम मालूम हैं क्या सबके? खाई है तो नाम मालूम होगा ही। वह भी बदल-बदलकर लाने की बात रहती है। एक ही मिठाई नहीं लाऊं घर में।

अभी भी घरों में जाएंगे तो दो-चार प्रकार की मिठाइयां तो होती हैं। इतने-इतने प्रकार की मिठाइयां सामने लाते हैं। दीपावली के दिन आ गए। कल ऐसे ही बात चली कि दीपावली बारह महीने में ही क्यों आती है? छः-छः महीने में आवे तो बच्चों को भी मजा आ जावे। छः-छः महीने में आवे तो दो बार मिठाई आवे। एक बच्चे ने कहा कि मुझे उपवास करना है। मैंने पूछा कि कर लोगे उपवास? उसने कहा, हां। मैंने कहा कि क्या करना है उपवास करके? क्यों करना है उपवास? तो कहा कि उपवास करता हूं तो मम्मी पारणे में हलवा खिलाती है। इसलिए उपवास करना है। किसलिए उपवास करना? इसलिए उपवास करना कि पारणे में मम्मी हलवा खिलाएगी, साल में दो बार दीपावली आएगी तो दो बार मिठाइयां आएंगी। वैसे तो मिठाइयां चलती रहती हैं। यह अलग बात है, यह तो विनोद है। न तो हमारे कहने से दीपावली साल में दो बार आएगी और न वैसा रूप ही बनेगा। साधु के लिए कौनसी दीपावली है? साधु के लिए तो बारह महीने ही दीपावली है। साधु के लिए तो हर पल, हर वक्त दिवाली

ही है।

'सदा दीपावली साधु रे, आठों याम त्योहार' साधु के लिए कौनसी घड़ी, कौनसा पल त्योहार नहीं है? उसके लिए हर पल, हर घड़ी त्योहार है। 'मानो तो त्योहार, नहीं मानो तो रात जगेरा' जैसा समय हो, उसे बिताओ। आपके हाथ में है कि कैसे बिताओ? जो समय मिला है, उसको दो तरीके से बिताया जा सकता है। पहला यह कि प्रसन्नता से बिताया जा सकता है। नहीं तो मायूसी से। चेहरा उदास करके, उदास मुद्रा में बैठ जाना। समय कैसे बिताना चाहिए, यह आपके ऊपर है। समय वही है। आप इसको बिताएंगे कैसे? इसको कैसे संपन्न करना? या तो रोकर करोगे या मौज मनाकर संपन्न करोगे। जो मौज-मस्ती में रहे और मौज-मस्ती में समय बिताये उसकी तो तुलना ही नहीं हो सकती। साधु तो सदाबहार जिंदगी जीने वाले होते हैं। इसलिए उनके आठों पहर ही त्योहार होते हैं। एक भी पहर ऐसा नहीं है, जो त्योहार नहीं हो। एक भी पहर ऐसा नहीं है जब उत्सव नहीं हो। 'सदा दीपावली साधु के, आठों याम त्योहार' साधु के लिए तो आठों पहर त्योहार है। वैसी दीपावली यदि सबके लिए आ जाए तो कहना ही क्या?

भगवान कहते हैं कि भद्रा, तू सुनना चाहती है शालिभद्र की जीवनी को कि इसका इतना पुण्य कैसे है, तो सुनो-बड़ी कठिनाई में उसका जीवन चल रहा है। मां और बेटा, दो सदस्य हैं। टूटी टपरी है रहने का स्थान। माता भी इधर-उधर, पास-पड़ोस का काम करती है और बेटा सेठों की गायों को चराने का काम करता है। उसी से जो मिलता है, उसी में खा-पीकर तृप्त रहते हैं। न कोई आकांक्षा, न कोई अभिलाषा। उसके मन में किसी भी अन्य पदार्थ की, खाने की अभिलाषा नहीं है। एक बार घरों में गया तो सेठानियों ने कहा कि भाई, आज हम गाय को नहीं भेजेंगे चराने के लिए। आज बच्छबारस है। आज गाय और उसके बछड़े की पूजा होगी। उन लोगों ने बताया कि आज खीर बनेगी। वह बड़ा खुश हुआ कि आज तो मेरे घर में भी खीर बनेगी। पर भोजन करने बैठा तो वही छाछ और रोटी। उसने कहा कि नहीं मां, आज तो खीर खाऊंगा। माता कहने लगी कि बेटा, अपने लिए तो यही खीर है।

उसने जिद पकड़ ली कि आज तो मुझे खीर ही खानी है। भगवान भद्रा को कथा सुना रहे हैं। पर मैं क्या बोलूं, यह बताओ? बोलने को शब्द कहां से लाऊं? ये विचार करो कि उस मां के दिल पर क्या बीत रही होगी? गौर करो

कि उसके दिल पर क्या बीत रही है? जिसने कभी कोई मांग या कोई फरमाइश नहीं की, आज पहली बार उसने कुछ मांगा। आपके बेटे की फरमाइश रोज चल रही है। आपकी संतानों की फरमाइश रोज होती रही है कि आज वह चॉकलेट चाहिए, आज वह चीज चाहिए। आज ये चाहिए, आज वह चाहिए। आज वह खिलौना चाहिए, आज वैसा खिलौना चाहिए। क्या-क्या नहीं चाहिए? रोज की डिमांड है। है या नहीं है? एक दिन भी चॉकलेट नहीं मिली तो? फिर ये छोटी वाली नहीं, लंबी वाली चाहिए। मैं नाम नहीं जानता इसलिए छोटी-बड़ी कह रहा हूं। जो भी नाम है, आप समझ लो। कौन-कौनसे घर हैं जहां फरमाइशें पूरी नहीं की जाती हैं या कभी पूरी की और कभी नहीं की। प्राय: करके पूरी करनी पड़ती होगी। ज्यादा करके करनी ही पड़ती होगी।

उस मां की हालत को समझो। उसके दिल को समझो कि आज बेटा पहली बार किसी वस्तु की मांग कर रहा है और माता लाचार है, विवश है। अपने बेटे की मांग पूरा करने में समर्थ नहीं है। उसके दिल पर क्या गुजर रही होगी? उसके दिल पर क्या बीत रही होगी? उसके दिल की यदि हम टोह लेना चाहें, थाह लेना चाहें तो देखें कि उसका दिल कितना क्रन्दन कर रहा होगा भीतर से कि मैं कैसी मां हूं जो अपनी संतान के मन की मुराद एक दिन भी पूरी नहीं कर पाई। आज वर्षों बाद पहली बार उसने खीर मांगी है और मैं इसको खिला नहीं पा रही हूं। ऊपर से भले ही उसकी आंखों में आंसू नहीं होंगे किंतु दिल झर-झर करके आंसू बहा रहा होगा। हमारे घर में कई बार खीर बनकर नाली में चली जाती होगी। कितनी ही बार हम थाली में जूठा छोड़ देते हैं। जूठी खीर नाली में चली जाती होगी। बच्चे कहते हैं कि भावे नहीं। भाती नहीं है इसलिए पूरी कटोरी ऐसे ही छोड़ दे। जिनका पेट खाली होता है, उनको क्या नहीं भाता है?

वहां खाने को नहीं मिल रहा है। वहां खाने को तरस रहा है और यहां ऐसे ही नाली में बहायी जा रही है। ये कर्मों का खेल है। ये दुनिया के खेल हैं।

कर्मों के खेल निराले हैं।
ऋषि मुनि भी इससे हारे हैं।। कर्मो. ..

ये कर्मों की विडंबना है। ये कर्मों की ही विडंबना है कि कहीं नालियों में खाना बह रहा है और कहीं खाने के लिए तरसा जा रहा है। संगम भी आज जिद पर है कि खीर ही खानी है। माता मिन्नत करती है, समझाती है, परंतु उसने

कभी उस पर हाथ नहीं उठाया। कभी उसने क्रोध नहीं किया। तुलना करना थोड़ी-सी उस मां से। इतने अभाव में भी गुस्सा नहीं आया। अभाव में आदमी को बहुत जल्दी गुस्सा आ जाता है। जब कुछ नहीं होता है तो दे धड़ाम, दे थप्पड़ और जबरदस्ती खिलाने की कोशिश करती है। वह जानती थी बच्चे का मन कि बच्चे को कभी कुंठित नहीं करना चाहिए। बच्चा कुंठित हो जाएगा तो उसका विकास रुक जाएगा। वह विकसित नहीं हो पाएगा। उसने जीवन विज्ञान, परिवार विज्ञान के कोर्स नहीं किये थे किंतु जीया जरूर था। आज कोर्स तो हो रहे हैं किंतु कितने परिवार हैं जो बिखरे नहीं।

बन्धुओ! भले ही उसके घर में चीजें नहीं थीं किंतु ये वैभव उसके पास था कि परिवार को कैसे चलाना? परिवार में संतान के साथ कैसा व्यवहार करना? आजकल बाहर का वैभव कइयों के पास होगा, किंतु परिवार संचालन कैसे होगा? परिवार में शांति कैसे रहेगी? यह धन, यह वैभव बहुत कम लोगों के पास होता है। विरले लोग इस कला में पारंगत होते हैं। यह भी एक कला है। इस कला में जो निपुण होता है, वह बड़े-बड़े परिवारों को भी साध लेता है।

'एक सती नगर सारा।' घर में एक व्यक्ति समझदार हो, तो वह पूरे परिवार की गाड़ी चलाने में समर्थ हो जाता है। रेल में लगा एक इंजन पूरी गाड़ी को खींच लेता है। कई डिब्बे लगे होते हैं। 10, 12, 15 डिब्बे। कितने भी होते हों, लेकिन इंजन कितने लगे होते हैं? (प्रतिध्वनि-इंजन एक ही होता है) आजकल 2-3 इंजन कई गाड़ियों के भीतर लगे होते हैं। रेल लंबी होती है, डिब्बे ज्यादा होते हैं तो दो इंजन भी लगा लेते हैं। लंबी गाड़ी हो तो एक से ज्यादा इंजन लगा देते हैं, वह अलग बात है किंतु प्राय: एक रेल में एक ही इंजन लगा होता है और वह पूरी गाड़ी को खींच लेता है। वैसे ही एक व्यक्ति, जिसमें कला हो, गुण हो, निपुणता हो, ज्यादा नहीं दो-तीन बातें हैं। उन बातों की आवश्यकता होती है।

राकेश जी[1] क्या हैं दो-तीन बातें? कौनसी हैं वे दो-तीन बातें, जिनसे परिवार चलता है? (प्रतिध्वनि-पहली सहनशीलता)

पहली बात है-वात्सल्य भाव होना। सबके साथ एक समान वात्सल्य का होना। बिल्ली वाला वात्सल्य नहीं होना चाहिए। ऐसा नहीं कि चूहे का बच्चा आ जाए तो प्रक्रिया अलग होना और स्वयं का बच्चा आए तो अलग प्रक्रिया

1. राकेश जी चौपड़ा, जोधपुर-युवा संघ के अध्यक्ष

होना। सबके प्रति समान वात्सल्य भाव का होना। मेरे परिवार का सदस्य है। चाहे अपनी संतान हो, देवरानी की हो या जेठानी की, सब मेरे हैं। ये भाव वात्सल्य के भीतर होना चाहिए। कभी भी उसमें भिन्नता का भाव नहीं होना चाहिए। ये चीज अच्छी है तो मेरी संतान को दे दूं। ये मेरी संतान है तो चुपड़ी हुई रोटी दे दूं और दूसरे की संतान है तो लूखी दे दूं। थोड़ा भेद आया नहीं कि दरार चालू हो जाती है।

दूसरी बात है-उदारता, उदार भाव रहना। पहले सबको खिलाना, सब में वितरित कर देना। उसके बाद अपने हिस्सा में आए तो भला, नहीं आए तो संतोष रखना। यह उदारता का भाव है। उदारता का भाव होता है तो घर में कठिनाई नहीं आती। सब में वितरण करने के बाद कुछ बचेगा तो ठीक और नहीं बचेगा तो कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। क्या नहीं खाया हमने अनादिकाल से? खाते-खाते कितना खा लिया? पहनने में क्या कमी रखी? पहले दूसरों की खुशियां बरकरार रखेंगे तो आपका दिल अपने आप ही खुश हो जाएगा। खाने से और पहनने से जो दिल खुश नहीं होता है, वह दिल किसी को खुशियां बांटने से अपने आप ही खुश हो जाएगा। मन खुश रहता है। ऐसा करते रहेंगे तो हमारा दिल खुश रहेगा। रहेगा या नहीं रहेगा? ऐसा नहीं कि अपना पहले अलग रख लो। यदि ऐसा होगा तो मन में कुंठा रहेगी, मन में शांति नहीं रहेगी, मन अटका रहेगा, मन में प्रफुल्लता नहीं रहेगी।

सबको देने पर सबके चेहरों पर खुशियां देखें तो अपने आप खुशियों का ढेर लगेगा। ऐसा होता है तो दो-चार बातें भी जरूरी नहीं रहती हैं। न अधिक धन की आवश्यकता रहती है। धन से तो पिंड ही छुड़ाए तो ठीक है। परिवार संचालन के लिए आवश्यकता होती है, वह अलग बात है, किंतु मुख्य रूप से उदारता और वात्सल्य दो भाव हैं तो कितने ही लोगों का परिवार क्यों न हो आप बहुत अच्छी तरह से निभा सकते हो। परिवार को बहुत अच्छी तरह से चला सकते हो। पर धन-संग्रह की बुद्धि आ गई तो विवाद खड़ा हो सकता है। तकरार हो सकती है। आज ज्यादातर झगड़े किसके हैं? आज ज्यादातर झगड़े धन को लेकर हैं। तुमने इतना धन दबा लिया, उसने उतना धन दबा लिया। तुमने यह कर लिया, उसने वो कर लिया। तुमने यह दबा लिया, उसने वो दबा लिया। अरे! दबा लिया तो दबा लिया। तुम्हारा भाग दबा लिया क्या? तुम्हारा भाग तुम्हारे साथ है। तुम्हारी क्षमता तुम्हारे पास है, तुम्हारी बुद्धि और शक्ति

तुम्हारे पास है। बोलो है या नहीं है? फिर काहे का झगड़ा।

जगदलपुर की बात है। छत्तीसगढ़ के बस्तर का क्षेत्र है। वहां का एक प्रसंग आया। वहां बताया गया कि नीतिकारों के अनुसार बाप की संपत्ति पर जो आंखें गड़ाकर रखता है, वह वेश्या को देखने का काम करता है। बाप की संपत्ति की आस लगाकर रखना वेश्या की ओर देखना है। वेश्या की ओर ताकना है। वह कभी भी उचित नहीं है। बाप की संपत्ति का हकदार कब होता है? आज के कानून की भाषा में नहीं, नैतिकता की भाषा में। जब तक तुम अपने पैरों पर खड़े नहीं हो जाओ, जब तक कार्य करने में समर्थ नहीं हो तब तक पिताजी की पूंजी का तुम आधार ले सकते हो। जिस दिन पैरों में शक्ति आ गई, कमाकर खाने की बुद्धि आ गई, उसके बाद बाप की संपत्ति को छूना नहीं चाहिए। कई लोगों ने उस समय पच्चक्खाण कर लिए कि बाप की संपत्ति का हिस्सा नहीं लेंगे।

कई लोगों ने कहा कि यदि आग्रह हो कि हिस्सा बराबर का लेना पड़ेगा, फिर क्या करना? ऐसा आग्रह हो तो पहले यह कहना चाहिए कि मुझे बाप की संपत्ति लेनी नहीं है। बाकी का हिस्सा कर दो। हो सकता है ऐसा भाई हो, जो देने पर अड़ा रह जाए कि देना ही है मुझे, बराबर हिस्सा करने पर अड़ ही जाए और हिस्सा करना पड़े तो खुद के लिए उस हिस्से का उपयोग नहीं करना। किसी भी अन्य कार्य में उसको लगाया जा सकता है। लोगों ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा ली कि अपने पास वह संपत्ति नहीं रखूंगा। बोलो, ऐसी स्थिति में घर की दशा कैसी होगी? क्या लड़ाई-झगड़े होंगे, कोर्ट-कचहरी होगी?

दो भाई हैं। मान लो, पिता की संपत्ति नहीं है। दोनों ने कमाई है। संपत्ति में बंटवारा करना है। संपत्ति को लेकर भाई जुदा हो सकते हैं। जहां संपत्ति से प्यार होगा, वहां पर भाइयों का प्यार नहीं होता। वहां पर भाइयों का वर्षों का प्रेम एक मिनट में टूट जाता है। राम को भरत से प्यार था और भरत को राम से प्यार था। उनको राज्य से प्यार नहीं था। राज्य से प्यार होता तो क्या होता? राम के वनवास जाने पर क्या होता? होता कि 'पापो कटियो' यानी पीछा छूटा। बहुत ही बड़ी बाधा थी। मैं चाहकर भी हटा नहीं सकता था। वहां पर मां ने क्या तरकीब निकाली है? मंथरा की तो बत्तीसी ही मंढ़वा दो सोने की। धन घड़ी, धन भाग हो गया। हम तो ऐसे हो सकते हैं किंतु भरत का मन ऐसा नहीं था। उसको संपत्ति और राज्य से प्यार नहीं था। भाई चला गया तो संपत्ति

किस काम की? भाई यदि मेरा नहीं रहा तो राज्य का क्या करूं? यह राज्य मेरे लिए कांटों की तरह हो गया। कांटे चुभा करते हैं तो शांति नहीं लेने देते, किंतु हम लोगों ने कांटे इतने भीतर लिए हैं, इतने कांटे भीतर चुभाए हैं कि अब तो अभ्यास हो गया। कभी भी कांटा चुभा लो, मालूम ही नहीं पड़ेगा।

हमारे इतने कांटे चुभ गए कि चुभन लगती नहीं है, एक जमाना था जब चाहते थे कि मां दूसरा भाई जन्मे तो बढ़िया है। हमें भाई मिल जाए। भाई से कीमती कौन है? आज कहते हैं, मां दूसरा भाई न जन्मे सबसे बढ़िया है। भाई जन्म ले तो दुश्मन का जन्म हो गया। बहुत कुछ सोचने की बातें हैं। यह दुश्मनी क्यों पैदा होती है? धन के कारण यह दुश्मनी पैदा होती है। मैं उतना रख लूं, मैं इतना कर लूं। यह विवाद का कारण खड़ा हो जाता है। वर्षों की दोस्ती, वर्षों का भाईचारा, वर्षों का प्यार, छिन्न-भिन्न हो जाता है। एक झटके में सब चीजें भिन्न हो जाती हैं।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय,
टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गांठ परि जाय।

क्या होगा?

मनड़ो घणो रिझायो जी कि मनड़ो घणो रिझायो जी,
दया धर्म उपदेश वीर रो घणो सुहायो जी।। मनड़ो....

मन मोती कहीं बिंध ना पाए। कितनी सुंदर बात कहीं गई है! डाउन रखना। ये मन का मोती बिंध न जाए। इसके भेदन से सारा मामला बिगड़ जाएगा। ये किसी से बिंध गया, धन से, पैसों से किसी से भी बिंध गया, तो कीमत क्या रहेगी? अभेद मोती बहुत कीमती होता है। अभेद मोती की कीमत होती है। अभेद मोती की ही कीमत हुआ करती है। जो मोती बिंध गया, उसकी क्या कीमत होगी? बिंधने के बाद उसकी कीमत नहीं रहेगी। वैसे ही मन का भेदन नहीं होना चाहिए।

भगवान महावीर भद्रा से कहते हैं कि संगम की मां के पास-पड़ोस के लोग इतने अच्छे थे कि संगम के रोने की आवाज सुनते ही पड़ोसन आ गई कि क्या हुआ? क्या बात है? क्यों रो रहा है बच्चा? भद्रा कहती है कि बाईजी बच्चा है, ऐसे ही रो रहा है। कुछ खास नहीं है। अरे! नहीं ऐसी बात कैसे है? आज तक कभी बच्चे के रोने की आवाज मैंने नहीं सुनी और आज रो रहा है तो क्या कारण है? तब भद्रा ने बताया कि इसे जब ज्ञात हुआ कि अनेक घरों में

आज खीर बन रही है तो रोने लगा कि इसको भी खीर चाहिए। पड़ोसन ने कहा कि बस इतनी सी बात है। मैं भेजती हूं अभी खीर।

संगम की मां ने कहा, नहीं बाईजी। ऐसे खीर नहीं भेजना। आपको देना है तो चावल, दूध और शक्कर दे दो। वह चीजें दे दो, मेरा काम हो जाएगा। मैं फ्री की चीज नहीं लेना चाहूंगी। क्या नहीं लेना चाहेगी? फ्री की चीज नहीं लेना। लोग फ्री की चीज इतनी ठूंसे जाएंगे कि दबा लो। जितनी दबाना है, दबा लो। अरे भाई! चीज फ्री की है पर पेट तो आपका है ना! पेट में ज्यादा ठूंस रहे हो। बीमारी हो गई तो फ्री वाला इलाज कोई करवाने आएगा क्या? ऐसे लोग भी हैं जो फ्री की चीज देखते हैं तो ठूंसने का काम करते हैं। ऐसी बात नहीं है कि ऐसे लोग नहीं है। ऐसे लोग भी हैं। आप फ्री खाने के लिए बुलाओ, फिर देखो। खाने वालों की कमी नहीं है। ऐसे-ऐसे लोग भी हैं जो जम जाएं तो ऐसे कि फिर उठा नहीं जाए। पकड़कर उठाना पड़े। बहुत कम ऐसे लोग हैं। आजकल खाने-पीने के हिसाब से काफी सुधार हो गए हैं किंतु कुछ वर्षों पहले ऐसा भी था।

उन्होंने दूध, चावल और शक्कर दे दिया। खीर बनाकर खाने के लिए वह बैठा। जैसे ही वह खीर खाने के लिए बैठा, माता पानी भरने के लिए गई। उसने देखा खीर तो गर्म है। खीर को ठंडा करने के लिए वह थाली को ऊंचा-नीचा कर रहा है। खीर थोड़ी ठंडी हो जाए फिर खाएंगे। इतने में मुनिराज पधार गए।

शालिभद्र पुण्यवान, बड़े गुणवान, सुनी जिनवाणी,
जिनकी है अमर कहानी
पास पड़ोस पुण्यवान मिले, जिससे जीवन उद्यान खिले,
बनी खीर तब आए संत सुकानी...
जिनकी है अमर कहानी
शुद्ध भाव दान है बलिहारी, हर्षित मन पुण्य बना भारी,
धन भाग दिवस, धन आज घड़ी सुहानी...
जिनकी है अमर कहानी

यह कहानी ऐसी है कि गाते रहो, गाते रहो, गाते ही रहो। मन में एक उमंग पैदा होती रहती है। गाने का मन रहता नहीं है फिर भी मन गाने को प्रेरित कर देता है कि गा लें क्या फर्क पड़ता है? एक कड़ी और गाने में आ जाती है।

गला भारी है या हलका है, क्या देखना है? गला भारी का बहाना बनाकर बैठेंगे तो बैठ जाओ। गला तो जो है वो ही काम आएगा। अब किसी अन्य का गला तो काम आएगा नहीं। यहां पर तो अपना ही गला काम आएगा। किसका गला काम आएगा? (प्रतिध्वनि-स्वयं का) अपना स्वयं का गला ही काम आएगा। दूसरे का गला काम नहीं आएगा। अपने गले से ही काम होगा। वही गला काम आएगा। अपने गले से ही गाना पड़ेगा।

किसकी पुण्यवानी बताई भगवान ने? सफल सुकानी संत आए। तिराने के लिए संत-महात्मा पधार गए। तिरण-तारण की जहाज लेकर संत-महात्मा पधार गए। यहां पर सोचने के लिए बहुत गुंजाइश है। कभी खीर खाई ही नहीं, कभी घर में देखी ही नहीं। आज पड़ोस से साधन लेकर बनाई और थाली में ठंडी करने के लिए डाली कि महाराज, 6-7 हाथ के महाराज सामने खड़े हैं। महाराज को देखा। अब क्या करना? क्या करना है साहब? आपने बच्चों को क्या संस्कार दिए? कई बार बच्चों से संत चॉकलेट मांग लेते हैं। लाओ, चॉकलेट मुझे दे दो तो बच्चे 'ऊंहूं, ऊंहूं' कहते हुए चॉकलेट वाले हाथ को पीछे कर लेते हैं। मानो कहीं संत झटक ही न लें। इतनी चॉकलेट खा ली तो भी एक चॉकलेट भी नहीं दे पाते हैं। फिर मां समझाती है कि बेटा इसके बदले दो चॉकलेट दूंगी या चार चॉकलेट दूंगी तब जाकर देने के लिए तैयार होते हैं। नहीं तो एक चॉकलेट तक छूटनी मुश्किल हो जाती है। एक चॉकलेट के बदले दो या चार चॉकलेट दें, एक के बदले दो चॉकलेट देने की हां भरे तो हाथ से चॉकलेट निकले। लोभ, लालच दो तो चॉकलेट छूटे। नहीं तो नहीं।

सोचो कि जिसने कभी खीर खाई नहीं, आज उसका सपना पूरा हो रहा है। अभी पूरा नहीं हुआ। मुंह में नहीं गया, स्वाद नहीं लिया। अभी सपना है। जाना नहीं कि कैसी होती है खीर? इतने में संतों को देखकर उसका हृदय इतना प्रफुल्लित हुआ कि 'धिन घड़ी, धिन भाग।' आज तो शुभ घड़ी आई है, मेरे घर संत पधारे हैं। पधारो, पधारो, पधारो।

बिना बुलाए गुरु घर आए, मानो भाग्य हमारे हैं।

बिना बुलाए संत घर में आ जाएं तो हमारे भाग्य हैं। संत को घर में लाने के लिए बुलाना पड़े, तो मानो भाग्य अधूरा है। बुलाना पड़ गया तो अभी हमारा भाग्य अधूरा है। और घर में संत आए नहीं तो मानो घर कुंवारा है। कुंवारा है अभी तक घर। पुराने लोग मानते थे कि तोरण नहीं बंधी तो घर

कुंवारा है। घर में लड़की नहीं है तो मोल लाकर या गोद लेकर लड़की की शादी करते और तोरण बंधवाते थे।

मैं कहता हूं जिस घर में दीक्षा नहीं हुई, वह घर कुंवारा है। जिस घर से दीक्षा नहीं हुई हो, वह घर कुंवारा है। अरे! घर में तो जन्मों-जन्मों से शादियां हुई हैं किंतु दीक्षा कब हुई? दीक्षा नहीं हुई तो घर कैसा? घर में सुनियाड़ है। दीक्षा हो तो बसतो घर है अन्यथा 'सूने घर का पावणा, जिम आए तिम जाए।' दीक्षा नहीं हुई तो सूने घर रा पावणा और दीक्षा हुई तो बसते घर का पावणा।

सोचो, आप लोग। संगम के सामने संत खड़े हैं और उसके क्या विचार हो रहे हैं? ओहो पधारो, पधारो। संत कह रहे हैं सरतो, सरतो। सरतो और वह सरक गयी। खीर की थाली खाली कर दी। अब वह थाली को चाट रहा है। मां आई। देखा कि बेटे को भूख है। उसने जो खीर बची हुई थी वह परोस दी। धन्य हो गए, धन्य हो गए। उसकी उमंग, उसका उमंग भाव बढ़ता जा रहा है। ग्राफ इतना बढ़ता जा रहा है कि सीमा ही नहीं बन रही है। उसी सीमा में जो पुण्य-योग बंधा उसका ही उस भव में शालिभद्र को भोग चल रहा है।

भगवान महावीर शालिभद्र के बारे में बताते हैं। बंधुओ! हम शालीभद्र जैसी रिद्धि, धन्ना जी जैसी सिद्धि और किसके जैसी क्या लिखने में तो पीछे नहीं रहते हैं, किंतु वैसा कर्तव्य करने के लिए तैयारी नहीं करते। वैसा करने की तैयारी करने पर पुण्यवाणी दौड़ी चली आएगी। अपने आप। बोलना नहीं पड़ेगा। न्योता नहीं देना पड़ेगा कि आवो सा, आवो सा। उसे आने का न्योता देने से काम नहीं चलता है, किंतु व्यक्ति उस चीज को चाहता तो है कि वह चीज मुझे मिल जाए, मैं वैसा करूं या नहीं करूं। करेगा तो भरेगा। नहीं करेगा तो कहां से मिलेगा? इसलिए यदि शालिभद्र जैसी रिद्धि की आवश्यकता है तो खाली दान देने की बात मत समझना। उसने जिस प्रकार का जीवन जीया, वैसा ही जीवन जीयें। वैसे उपशम भाव का जीवन जीयें। शालिभद्र की कथा से जीवन जीने के कई गुर मिलते हैं। फ्री का खाना नहीं खाना। मेहनत करना। पड़ोसियों के साथ अच्छा व्यवहार करना। मोह-ममता को बढ़ाना नहीं। दान देना तो भाव से। दान देने के पश्चात् मन में न्यूनता नहीं आना आदि अनेक विषय हैं, जिन पर प्रकाश डाला जा सकता है, जिससे हम अपने जीवन को प्रकाशित कर सकते हैं।

बंधुओ, हम अपने-अपने में प्रयत्न करें। जिंदगी जीयें तो प्रेम की

जिंदगी, प्रसन्नता की जिंदगी जीयें। कोई तनाव नहीं, कोई टेंशन नहीं। फिर देखो कि पुण्यवाणी का क्या करतब होता है? पुण्यवानी क्या करतब दिखाती है? फिर कहीं से, कहीं जिंदगी में तनाव नहीं बनेगा। शालीभद्र जैसे शांत भाव में जीये, वैसे ही हम जीयेंगे। ऐसा लक्ष्य बनाएं। ऐसा लक्ष्य बनाए रखेंगे तो धन्य बनेंगे।

आज सुखदा श्री जी म.सा. और वरदा श्री जी म.सा. के कितने की तपस्या हो गई? (प्रतिध्वनि-25 की तपस्या हो गई) याद है आपको? 25 की तपस्या हो गई है। ऐसे ही बढ़ने वाले बढ़ते चले जाते हैं और खाने वाले केवल खाने में लगे रहते हैं। हमको तो तेला करने में भी कितनी बार सोचना पड़ता है। दीपावली हर साल मनाते हैं। इस बार दीपावली के साथ भगवान महावीर निर्वाण मनाएं। तेला-बेला जैसी भी अपनी शक्ति हो। भक्ति को चैलेंज नहीं कर सकता, पर शक्ति के अनुसार तप का लक्ष्य रखें।

23 अक्टूबर, 2019

2

पग-पग पर निधान

मेरे वीर प्रभु भगवान, मुझको पाना सच्चा ज्ञान
पाना सच्चा ज्ञान, मुझको पाना सच्चा ज्ञान... मेरे वीर...
राग द्वेष ग्रंथि है बाधक, कर उसका सन्धान
ग्रंथि देश तक आकर लौटा, रहा सदा अनजान
निबिड़ ग्रंथि का भेद करे तब, टले दोष अज्ञान
ज्ञान रवि तब प्रकटित होता, होती निज पहचान
चेतन का शुद्ध चिंतन चलता, तब पाता विज्ञान
कर्म लेप से अशुद्ध बना हूँ, उपादान पर ध्यान। मेरे वीर...
मैं ही कर्ता, मैं ही भोक्ता, अवर दोष क्यों मान
अंतर-द्रष्टा राम बनो तुम, पाकर सम्यग्ज्ञान। मेरे वीर...

परमात्मा की स्तुति करते हुए मुझे सच्चा ज्ञान पाना है। ज्ञान की अलग-अलग कोटियां हैं। सच्चा ज्ञान भी है और कच्चा ज्ञान भी है। हमें जब तक यह ज्ञान नहीं हो जाए कि 'मैं ही कर्ता और मैं ही भोक्ता हूं' तब तक सारा ज्ञान कच्चा है। कच्चे ज्ञान की पहचान क्या होगी?

कच्चा घड़ा बनाया है। अभी अवाड़े में पकाया नहीं है। मिट्टी से घड़ा बनाया जाता है। उसके बाद अवाड़े में उसको पकाया जाता है। अभी घड़े को पकाया नहीं है, केवल बनाया ही है। उस पर पानी की एक-दो बूंद गिरे तो शायद सहन कर ले, लेकिन पानी की तेज बौछार पड़े तो उसकी हालत क्या होगी? (प्रतिध्वनि-घड़ा बिखर जाएगा। घड़ा नष्ट हो जाएगा) मालूम है ना? क्या हो जाएगा वह घड़ा? (प्रतिध्वनि-घड़ा बिखर जाएगा। घड़ा नष्ट हो जाएगा) यह कच्चे ज्ञान की पहचान है।

जैसे कच्चा घड़ा नष्ट हो जाता है, वैसे ही कच्चा ज्ञान हमारी आत्मा

को नष्ट करने वाला हो सकता है। समझ लो थोड़ा कि कैसे नष्ट करने वाला हो सकता है वह कच्चा ज्ञान? हमने ज्ञान तो किया है किंतु थोड़ी कठिनाई आ गई, थोड़ा कष्ट आ गया, थोड़ा परिश्रम आ गया, थोड़ा उपसर्ग आ गया तो हम खिसक जाएंगे या आर्तध्यान करने वाले बनेंगे? विलाप करने लगेंगे? हाय! हाय! मेरे साथ क्यों ऐसा व्यवहार हो रहा है? मुझे इतनी सारी परेशानियां क्यों देखनी पड़ रही हैं? हे भगवान! क्या मैं ही हूं अकेला दुनिया में? ये सारी बातें कब सामने आएंगी? कच्चे ज्ञान से आएंगी। वैसे उसने बहुत कुछ सीखा, बहुत कुछ शास्त्रों का ज्ञान किया होगा, बहुत सारे शास्त्र रटे होंगे, किंतु जब तक सच्चा ज्ञान प्राप्त न हो जाए कि 'मैं ही कर्ता हूं और मैं ही भोक्ता हूं।' कर्मों को करने वाला भी मैं ही हूं और बिखेरने वाला भी मैं हूं, तब तक...

कर्मों को बिखेरने की शक्ति किसमें है? कर्मों को बिखेरने की शक्ति आत्मा में है। कर्मों को करने वाला आत्मा है और कर्मों को बिखेरने वाला भी आत्मा ही है। जब यह ज्ञान पक्का होगा तो कोई भी कष्ट मेरे सामने आएगा, किसी भी कर्म का उदय मेरे सामने आएगा, मुझे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। हम बहुत से महापुरुषों के जीवन-चारित्रों को सुनते हैं। उसके मूल में, जड़ में यह बात रही हुई है कि उन पर कितने भी कष्ट आए, वे कभी घबराए नहीं।

कष्टों में घबराना कच्चे ज्ञान की पहचान है। राम के सामने प्रसंग आया अयोध्या त्यागने का। उन्हें कोई घबराहट नहीं। हरिश्चन्द्र राजा को राज्य का त्याग करने की नौबत आ गई, कोई घबराहट नहीं। सेठ सुदर्शन को सजा हो गई शूली की। उसको शूली पर चढ़ाने की बात हो गयी, लेकिन चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं। महासती सीता से कहा गया कि रावण के यहां रही हो, बिना परीक्षा के कैसे स्वीकार कर लिया जाए? कहते हैं कि सीता ने अग्निदेव का आह्वान किया और अंततोगत्वा अग्नि में प्रवेश किया। उन्हें कोई घबराहट थी क्या कि जल जाऊंगी? कोई चिंता थी? उन्हें कोई चिंता नहीं, कोई घबराहट नहीं। प्रह्लाद को होलिका की गोद में बिठाकर आग लगाई गई तो होलिका जल कर भस्म हो गई, प्रह्लाद बच गया। कहीं से कहीं तक उनके मन में भय नहीं था। निर्भयता धर्म की पहली सीढ़ी है, धर्म का पहला सोपान है। हमारे भीतर निर्भयता आनी चाहिए। लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जाए, कोई चिंता की बात नहीं है। कोई विचार ही नहीं है कि जिंदा रहेंगे या मर

जाएंगे? मर जाएंगे तो मर जाएंगे। जिस दिन मरना है उस दिन मरेंगे ही।

मृत्यु मिलनी ही है। उसे कौन रोकने वाला? न जिंदा रहने की आस और न मरने की चिंता। ये बातें जहां हो जाती हैं, वहां निर्भयता आती है। वस्तुत: धर्म में हम प्रवेश करेंगे तो निर्भयता के सोपान से ही प्रवेश कर सकेंगे। भय, चंचलता हमें धर्म से थोड़ा अलग करने वाले हैं, धर्म से हटाने वाले हैं। धर्म में हमें जीने नहीं देने वाले हैं। इनसे हम धर्म में जीने का अनुभव नहीं कर पाएंगे। हम धर्म में जी रहे हैं इसलिए धर्म निर्भयता के साथ बढ़ेगा।

सेठ धन्ना जी की सिद्धि सवायी है। शालिभद्र की बात हमने सुनी थी, धन्नाजी की बात, उनकी सिद्धि सवायी है। तीनों भाई विमुख बन गए। ईर्ष्या, द्वेष आ गया। यूं समझ लो कि धन्ना तीनों की आंखों का कांटा बन गया। क्या बिगाड़ा धन्ना ने उनका? धन्ना जी ने उन तीनों भाइयों का कुछ बिगाड़ा क्या? (प्रतिध्वनि-नहीं) धन्ना ने कुछ भी नहीं बिगाड़ा। जहां तक बन सका, उन्होंने उनका आदर किया, सम्मान किया, सत्कार किया किंतु उनकी दृष्टि वैसी बन गई। हमारे नजरिये का बहुत बड़ा रोल होता है कि वह किधर मुड़ा हुआ है।

गाड़ी की स्टेयरिंग हाथ में होती है और आगे का एक पहिया मुड़ता है। स्टेयरिंग एक पहिया को घुमाती है ना? एक पहिया घूमा तो गाड़ी किधर घूम जाएगी? एक पहिया घूमने पर बाकी के सारे पहिये और गाड़ी उस ओर मुड़ जाती है। एक नजरिया हमारा घूमा, नजरिया बदला कि सारी चीजें बदल जाती हैं। नहीं समझ पाते हैं हम। हमको लगता है कि मेरा नजरिया सही है किंतु मेरा नजरिया सही है तो मैं सुखी क्यों नहीं हूं? मेरा नजरिया सही है तो मैं चिंता में क्यों हूं? मेरा नजरिया सही है तो मैं टेंशन में क्यों? मेरा नजरिया सही है तो तनाव में क्यों? यदि टेंशन में हैं तो सोचना चाहिए कि मेरा नजरिया मुझे ठीक करना है। सोचते हैं, जानते हैं। अपने नजरिया को महत्त्व देने की स्थिति में रहते हैं। मेरा नजरिया सही होगा तो मुझे तनाव क्यों होगा? मेरा नजरिया सही है तो मुझे टेंशन क्यों होगा? मेरा नजरिया सही है तो मुझे दर्द क्यों होगा? मेरा नजरिया सही है तो मुझे पीड़ा क्यों होगी? मेरा नजरिया सही है तो मैं संक्लेश में क्यों जी रहा हूं?

मेरा नजरिया सही होगा तो मैं प्रसन्नता में जीऊंगा। यह पहचान उसकी कसौटी है। जैसे सोने को कसौटी पर कसते हैं वैसे ही अपने नजरिये को

कस लो। मैं यदि प्रसन्नता में हूं, संक्लेश नहीं है तो मेरा नजरिया सही है। यदि मेरे भीतर ईर्ष्या बढ़ रही है, द्वेष बढ़ रहा है, संक्लेश बढ़ रहा है तो मेरा नजरिया सही नहीं है। मुझे अपने नजरिया पर विचार करना चाहिए। धन्ना जी के तीनों भाई मानने को तैयार नहीं कि हमारा नजरिया खराब है। वे तो यह मान रहे हैं कि पिताजी ने धन्ना को बिगाड़ दिया है। इसको ज्यादा माथे पर चढ़ा दिया है। सेठ धन्ना जी के कारण उन्होंने पिताजी से भी दुश्मनी ले ली। पिताजी से द्वेष बना लिया। धन्ना का जब तक जन्म नहीं हुआ तब तक पिताजी के प्रति बहुत श्रद्धा थी, बहुत प्रेम था। पिताजी तब तक बहुत अच्छे थे, किंतु धन्ना जी के आने से घर में संक्लेश हो गया। पर, धन्ना जी ने कोई संक्लेश पैदा नहीं किया।

सूर्य उदय होने के बाद अंधकार दिखाई नहीं देता है। यह सूर्य का दोष है क्या कि बेचारे को दिखाना बंद करा दिया? इसमें सूर्य का क्या दोष है? कहते हैं कि एक बार विष्णु जी की सभा में एक फरियाद पहुंची। फरियाद लेकर गया अंधकार। कहा कि भगवंत, जब आपने सृष्टि रची है और आपकी सृष्टि है तो फिर सबको जीने का अधिकार क्यों नहीं है? विष्णु जी ने कहा कि सबको जीने का अधिकार दिया हुआ है, सबको जीने का अधिकार है। अंधकार ने कहा कि नहीं, नहीं, प्रकाश मेरे पीछे पड़ा रहता है। जहां और जब देखो, मेरे पीछे पड़ा रहता है। मुझे शांति से सांस नहीं लेने देता है। तो भगवान ने कहा कि प्रकाश को बुलाओ। अंधकार से कहा कि तुम भी यहीं रुको। सुन लेते हैं उसकी भी कि क्यों पड़ा है पीछे? अंधकार ने कहा, मैं उसके सामने नहीं रुक सकता। मैं तो ये गया, ये गया।

विष्णु जी ने प्रकाश को बुलाया और कहा, भाई तुम्हारा तो वैसे ही ज्यादा नाम है। तुम तो वैसे भी फैले हुए हो। सब तरफ तुम्हारा नाम है। तुम बेकार में बेचारे अंधकार को क्यों परेशान कर रहे हो? उसे क्यों परेशान करते हो? उसको जीने दो। उसको भी जीने का मौका दो। प्रकाश ने कहा कि मैंने क्या किया है? अंधकार है कौन? मैं तो अंधकार को जानता ही नहीं हूं। प्रकाश, अंधकार को जानता है या नहीं जानता? कभी उनकी मुलाकात हुई है क्या? कभी देखा क्या दोनों को साथ में कि यह अंधकार है और यह प्रकाश है? प्रकाश ने सबको जाना किंतु वह अंधकार को नहीं जानता।

प्रकाश ने कहा, अंधकार कौन है? मेरा कभी उससे आमना-सामना ही नहीं हुआ तो मैं कैसे उसको तकलीफ देने वाला हूं? प्रकाश, अंधकार को

वैसे ही तकलीफ देने वाला नहीं है जैसे सूर्य के उदय होने से उल्लू को दिखता नहीं तो इसमें सूर्य क्या करे। सूर्य इसलिए प्रकाशित नहीं हो रहा है कि उल्लू को नहीं दिखे, सूर्य का ऐसा लक्ष्य भी नहीं है। वैसे ही धन्ना जी के तीनों भाइयों को समझ नहीं आता है तो वे क्या करें? सही में तो धन्ना जी के तीनों भाइयों को समझ आना चाहिए और यह सोचना चाहिए था कि मेरा भाई, हमारा भाई कितना पुण्यवान है! किंतु उनकी पुण्यवाणी को वे झेल नहीं पाए। वे उनका मर्डर करने तक सोचने लगे। उनको मार देने तक का विचार उन भाइयों ने कर लिया।

धन्नाजी की कहानी बहुत लंबी है। एक आधे व्याख्यान में पूरी नहीं होने वाली है। हमको कहानी से क्या लेना-देना है? हमें तो धन्ना जी के जीवन से प्रेरणा लेनी है।

धन्ना की सिद्धि सवाई है,
मन में ना मान बड़ाई है... धन्ना की...
विरोध भावना भटकाती,
आगे बढ़ने से अटकाती,
जीवन की ये सच्चाई है। धन्ना....

'विरोध भावना भटकाती है। आगे बढ़ने से अटकाती।' कभी भी देख लो। विरोध करने वाला वहां ही खड़ा रहेगा। आगे नहीं बढ़ पाएगा। हम कहते हैं कि विरोध नहीं करना चाहिए। कोई अपराध कर रहा हो, कोई अन्याय कर रहा हो, ऐसा कर रहा हो, वैसा कर रहा हो, यह गलत कर रहा है। अन्याय मेरी दृष्टि में है या सचमुच में अन्याय है? अपने मन से मैंने किसी को अन्याय मान लिया, किंतु इसकी पहचान कौन करेगा कि वस्तुत: वह अन्याय की श्रेणी में है या नहीं! जब तक मेरे मन में विरोध का भाव बना है, तब तक मैं न्याय और अन्याय की सही परीक्षा नहीं कर पाऊंगा।

दो भाई थे। पश्चिम बंगाल की बात है। कहां की बात है? (प्रतिध्वनि-पश्चिम बंगाल की बात है) हां, पश्चिम बंगाल की बात है। दो भाई थे। अच्छा प्रेम था। अच्छा मतलब कि बस दूसरी कोई चीज है ही नहीं, इतना प्रेम। राम और भरत की बात कह दो तो कोई बड़ी बात नहीं है। उन भाइयों ने आपस में विचार किया कि देखो, चाहे कुछ भी हो जाए, अपने को एक रहना है। अपने को कोई बंटवारा नहीं करना है। दोनों भाइयों का अच्छा

प्रेम चलता रहा। संसार के रीति-रिवाज के अनुसार विवाह-शादी हुए। एक भाई के तीन संतानें और दूसरे भाई के दो संतानें हुईं।

बड़ा भाई विचार करने लगा कि आज हम एक हैं, कोई दिक्कत नहीं है। हम में अच्छा प्रेम है, किंतु पीछे परिवार में फजीहत नहीं हो। घर के मालिक सोचते हैं कि सदा परिवार एक रहे, इकट्ठा रहे तो अच्छी बात है, किंतु कल को किसने देखा है? इसलिए मेरे रहते-रहते ऐसा कुछ कर दूं कि साथ में रहे तो उनकी मर्जी, पर अलग हो तो किसी को भनक भी न लगे कि अलग हो गए। मनो-मन साथ हैं और अलग-अलग है। साथ भी हैं और अलग भी हैं। प्रेम से रहो, शांति से रहो, समाधि से रहो। अलग रहकर भी सुख से नहीं रह पा रहे हो और साथ में रहकर भी तनाव में रह रहे हो तो क्या मतलब है? कुछ भी मतलब नहीं है। जीवन क्या तनाव में झोंकने के लिए है? पर आदमी कब सोचता है? वह पहले नहीं सोचता है और जान-बूझकर तनाव ले लेता है।

बड़े भाई ने बंटवारे की रूपरेखा बनाई और छोटे भाई को सौंप दी कि ये बंटवारा किया गया है। छोटे भाई ने कहा कि मुझे मंजूर नहीं है। क्या बोला? (प्रतिध्वनि-मुझे मंजूर नहीं) मुझे मंजूर नहीं है। बड़े भाई को काटो तो खून नहीं। पैरों के नीचे की जमीन खिसक गई। लगा कि अभी धरती फटे और उसमें समा जाऊं। जिस भाई ने इतना प्यार दिया, प्रेम दिया, स्नेह दिया उसने आज बंटवारे की बात को एकदम से नकार दिया कि मुझे स्वीकार नहीं है। मैं इसको मानता ही नहीं हूं। मैंने ईमानदारी से कहीं पर किसी प्रकार से एक रत्ती भर भी भेदभाव नहीं किया और भाई ने ऐसा जवाब दिया।

उस समय उसके मुंह से शब्द नहीं निकले। क्या बोले अब? क्या कहे अब? फिर धीरे से बोला, भाई तुम्हें यह मंजूर नहीं है तो तुम बताओ कि कैसे करना है? तुम बंटवारे की बात कर लो। कैसे करना है, तुम यह निर्णय कर लो। छोटे भाई ने कहा, भैया, मेरे और आपके बीच में पहले ही बात हो रखी है कि अपन एक रहेंगे। बड़े भाई ने कहा कि अपन एक ही तो हैं। पीछे शांति रहे, समाधि रहे, इसलिए यह किया गया है। छोटे ने कहा-नहीं। यह बंटवारा पीछे का नहीं है, अपना है। बड़े भाई के तीन बेटे थे और छोटे भाई के दो बेटे थे और बंटवारा दो भागों में किया गया था तो छोटे भाई ने कहा कि दो भागों में बंटवारा हुआ है इसलिए पीछे का नहीं है। यह आपका और मेरा बंटवारा हुआ है।

किसका हुआ बंटवारा? आपका और मेरा बंटवारा हुआ। मैंने पहले

ही कह दिया है कि अपना बंटवारा नहीं होगा। यदि पीछे का बंटवारा करना है तो पांच भागों में करो। किस-किस को मंजूर है? दो भाग मंजूर है या पांच भाग?

(सभा में बैठे किसी श्रावक ने कहा, पांच भाग होना चाहिए)

अच्छा! अच्छा! मेरे सामने आप यह बोल रहे हो! यहां की नीति है या बाद की नीति है? कौन-सी नीति है? क्यों होना चाहिए पांच भाग? पांच भाग क्यों होने चाहिए? पांच भाग भी होने क्यों? छोटे भाई का कहना था कि अपन दोनों एक हैं, हम दोनों में कोई बंटवारा नहीं होना चाहिए। बाद वालों का बंटवारा बाद वालों की बात है। वे दो करें या पांच करें। किंतु बड़ा भाई उस विषय को नहीं समझा था। वह उस विषय में नहीं जा पाया था कि मेरे तीन हो गए तो क्या हो गया और छोटे भाई के दो हो गए तो क्या हो गया? हिस्सा तो दो होगा। इसलिए उसने दो हिस्से किए, किंतु छोटे भाई ने दो हिस्सों को नकार दिया। अंततोगत्वा पांच हिस्से करने पड़े। हम एक हैं। पीछे भले ही पांच हैं। उनकी मर्जी कि वे कितने हिस्से करें? कैसे रहें? हम तो एक ही हैं।

हम एक हैं और एक ही रहेंगे। सभी भाइयों की बात ऐसी बन जाए तो सतयुग आएगा या कलयुग आएगा? (प्रतिध्वनि-सतयुग आएगा) हमारा दुर्भाग्य है कि हम छठे आरे की तरफ जा रहे हैं। हमारा सौभाग्य होता, हम चौथे आरे में जाते। हमारा दुर्भाग्य है कि हम छठे आरे को देख रहे हैं। हमारा दुर्भाग्य है या हमारा सौभाग्य है? हमारा दुर्भाग्य है कि आज छठे आरे की हालत देखने में आ रही है। आज कोर्ट-कचहरी में भाइयों के आपसी विवाद हजारों मिलेंगे या लाखों मिलेंगे? अब कौन गिनने गया? अब कौन सर्वे करने लगे? छोटी-छोटी बात कि इतनी-सी जगह उसने ले ली। एक हाथ उसने दबा ली। उसने इतना पैसा दबा लिया, उसने उतना पैसा दबा लिया। उसने इतना-इतना दबा लिया। दबा लिया तो तुम्हारे भाग्य को तो नहीं दबाया ना!

तुम्हारे भाग्य को दबाने की ताकत किसमें है? धन्नाजी के भाग्य में था जो था। तीनों भाइयों ने मिलकर कितनी भी साजिश रच ली, किंतु 'पुरुषस्य भाग्यम्...'। नीति में बताया गया है कि पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जान सकते। स्त्री का चारित्र और पुरुष का भाग्य, देवता भी नहीं जानते हैं फिर सामान्य व्यक्ति की बात ही क्या है? 'स्त्रियश्चरित्रं, पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति, कुतो मनुष्यः।' जिस भाग्य को लेकर तुम चल रहे हो, क्या उस

भाग्य पर किसी ने अधिकार जमा लिया? किंतु तुम्हारे मानसिक विवाद ने तुम्हारे भाग्य पर प्रश्नवाचक चिह्न खड़ा कर दिया। विवाद खड़ा कर दिया या नहीं कर दिया? अब तो कोर्ट और कचहरी में पैसा और समय लगा रहे हो। उसका उपयोग व्यापार में करते। उससे बढ़कर व्यापार में ध्यान लगाते तो फायदा होता या हानि होती? संक्लेश होता या शांति रहती? पर आदमी ढलान की ओर जाता है। ढलान किस तरफ होती है? 'पानी तो ढलान चले, बात चली आई है।' ढलान की तरफ पानी को बहाना नहीं पड़ता है। वह अपने आप ही चला जाता है। वैसे ही हम ढलान की तरफ अपने आप ही चले जाते हैं।

ढलान का परिणाम क्या होता है? हम ऊंचाइयों पर नहीं पहुंच पाते हैं? विवाद, संक्लेश में रहते हैं कि ऐसा कैसे कर दिया? ऐसा कैसे हो गया? ऐसा किसके लिए कर दिया? वैसा किसके लिए कर दिया? किंतु रिजल्ट क्या आया और क्या आएगा? आपकी जिंदगी में आपके जीते जी कोर्ट से निर्णय मिल जाए तो भली बात है। बड़ी बात है कि आपके जिंदा रहते ही कोर्ट से निर्णय मिल गया। कइयों को दूसरी पीढ़ी में भी रिजल्ट मिलना मुश्किल है। फिर हमने क्या किया? फिर इससे हमें क्या फायदा हुआ?

राम अयोध्या छोड़कर चले गए। भरत अयोध्या के राजा नहीं बने। दोनों मूर्ख रहे होंगे? ठीक है ना? दोनों मूर्ख रहे होंगे कि ऐसा राज्य छोड़कर राम चले गए और ऐसा राजा का पद मिला तो भरत ने उसको छोड़ दिया। हमारी दृष्टि में मूर्खता रही होगी, किंतु उनकी मूर्खता थी क्या? हमारी दृष्टि में मूर्खता रही हो तो उस मूर्खता को धन्यवाद। उस मूर्खता ने आज तक उनको जिंदा रखा है। आज तक उनकी मूर्खता जिंदा रही है। भले ही आपकी दृष्टि में वह मूर्खता रही होगी, किंतु उसकी वजह से आज तक उनको याद किया जाता है। आज तक लोग उनका गुणगान करते हैं। हमारी दृष्टि सही है तो हम कहेंगे कि ये मूर्खता हमें स्वीकार्य है। ये मूर्खता करना बढ़िया है। जिन्होंने न्याय नहीं करके अन्याय किया तो उनके लिए तो अन्याय सही है पर हमारी दृष्टि में न्याय कुछ भी रहा होगा, वह हमारा अपना न्याय हो सकता है।

धन्ना की सिद्धि सवाई है, मन में ना मान बढ़ाई है। धन्ना...

बही-खाते में पहले लिखते हैं, 'शालिभद्र की रिद्धि' और फिर 'धन्ना की सिद्धि'। धन्ना जी के पग-पग पर निधान था। पग-पग पर पुण्य के फूल खिलते जाते। इसलिए कहा जाता है-'पदे-पदे निधानानि' पुण्यवान के हर

कदम पर निधान, हर कदम पर भण्डार है। धन्ना जी की कहानी से हमें कोई मतलब नहीं है, किंतु कहानी से जो टपकता है 'अमृत', उसकी यदि एक घूंट भी पी लें तो जीवन अनोखा बन जाए। जीवन में आनन्द आ जाए। संतप्त प्राणी शांति की श्वास ले सकता है।

दवाइयां बहुत हैं। दवाइयां ला-लाकर अलमारियां भर दी, लेकिन यदि लेवे नहीं तो उन दवाइयों का क्या मतलब? दवाइयां रोग गिराने के लिए लाई जाती हैं या घर में सजाने के लिए! अलमारियों में रखने के लिए! वैसे आगमों में दु:ख दूर करने के, अशान्ति मिटाने की, साधनाओं की विधियां मिलती हैं, लेकिन हम यदि उनको लेंगे ही नहीं, उनका उपयोग करेंगे नहीं तो दु:खी होते रहेंगे। बस! जीते रहें, जीते रहें। जीते रहो कौन बचाने आएगा? कौन आपको जीवन में प्रसन्नता देने वाला आएगा? तुम्हारी स्वयं की नीयत ही नहीं है कि मैं शांति से जीऊं। तुम्हारी नीयत ही नहीं है कि मैं प्रसन्नता में जीऊं तो तुमको प्रसन्नता में जीने का उपाय कोई कितना भी बता दे, बढ़िया से बढ़िया औषधि बता दे, बढ़िया से बढ़िया डॉक्टर आ जाए, किंतु किस काम का। जब आप सेवन नहीं कर रहे हो तो वे क्या काम आएंगी?

हम सुनते जरूर हैं किंतु सेवन कितना करते हैं? जब दो भाइयों का बंटवारा आ जाए, उस समय हम क्या करेंगे? उस समय हम दो हिस्से करेंगे या पांच हिस्से करेंगे? यदि दो हिस्से हो जाएं और दो हिस्सों में थोड़ा-सा भी 19-21 हो गया तो मन 19-21 तो नहीं हो जाएगा? वहां पर मन 19-21 तो नहीं हो जाएगा? बोलो? यदि मन 19-21 हो रहा है तो यह सुना हुआ क्या काम आएगा? ये सुना हुआ क्या फायदा करेगा? इससे फायदा क्या हुआ? तीर वही सही होता है, जो समय पर लग जाए। निशाने पर लग जाये। कितने ही तीर छोड़ो, निशाने कितने ही साधते रहो, तीर कभी ठीक निशाने पर लगे ही नहीं, वह किस काम का? वैसे तीर छोड़ने का कोई मतलब नहीं है। मूल्य उस तीर का है जो निशाने पर लगे।

आपने सुना है कि चेडा महाराज युद्ध में खड़े हैं। एक तीर छोड़ने के बाद, बस! उनका एक तीर भी निर्णायक होता था। एक तीर भी कभी खाली नहीं जाता। हमारा निशाना भी एकदम सही होना चाहिए, हमारा निशाना भी अचूक होना चाहिए कि हां! कहीं चूकने की बात ही नहीं है। फिर देखो, हमारे जीवन को कौन दु:खी बना सकता है? धन्ना जी की लंबी कहानी सुनेंगे तो

आपको मिलेगा कि वे घर छोड़कर गए। अमुक जगह से निकले। यहां से निकले, वहां से निकले, इधर से निकले, उधर से निकले। कहां-कहां से नहीं निकलते गए? जैसे-जैसे आगे जाते गए, उनकी सिद्धि सवाई बढ़ती चली गई। कई राजाओं की कन्याएं, सेठों की कन्याएं, कई धनपतियों की कन्याएं मिलीं। कई राजमहल उनको मिले। कई राज्य उनको मिले और मौका मिला तो राज्य को भी छोड़कर चले गए। राज्य को भी भाइयों के सुपुर्द करके चले गए। उनको धन-सम्पदा, राज-पाट, पद छोड़ते क्षण नहीं लगा। क्या हम इतने तैयार हैं? है हमारी इतनी तैयारी?

कहीं कोई मन में मोह नहीं कि यह मेरे द्वारा बसाया गया राज्य है। इसमें तो भाइयों का अधिकार ही क्या है? वे बोल कैसे सकते हैं? फिर भी वहां से भी वे निकल गए। भाइयों के प्रति मन में कोई द्वेष नहीं। शांति से रहो, समाधि से रहो। यदि धन से समाधि मिलती है तो यह रखो। पूरा राज्य रखो। पूरा धन रखो, किंतु जिसको समाधि मिलनी नहीं है, उसके पास अंबार लगे धन का तो भी क्या हो जाएगा? वह शान्त नहीं रह पायेगा। उसे शान्ति मिल नहीं पायेगी। धन्ना जी सब कुछ छोड़कर घर से निकल जाते। वे छोड़कर जाते किंतु सिद्धियां उनके पीछे-पीछे छाया की तरह चलती हैं। वे जहां जाते सिद्धि उनके पीछे-पीछे दौड़ती।

तीसरी बात हम लिखते हैं कि 'अभय कुमार की बुद्धि'। अभय कुमार की बुद्धि में क्या चमत्कार था! मगध सम्राट श्रेणिक और अभय कुमार का मिलाप जिस तरीके से हुआ, वह बुद्धि की पहचान थी। बुद्धि की पहचान होते ही वे प्रधानमंत्री बन गए। प्रधान दीवान बन गए। जो कार्य अन्य लोगों से संपन्न होना संभव नहीं होता, वह कार्य कौन कर सकते थे? (प्रतिध्वनि-अभय कुमार) जो कार्य दूसरों से संपन्न होना संभव नहीं होता, जो कार्य दल से, बल से, किसी से भी संपन्न होना संभव नहीं होता, वह कार्य अभय कुमार द्वारा संपादित करने में कहीं कोई रुकावट नहीं आती। वह कार्य संपादित हो जाता।

बुद्धि अभय आधार, भविक जन,
बुद्धि अभय आधार...
अभय जैसी बुद्धि पाए,
लिख बही में भाव सजाए,

बरते मंगलाचार, भविक जन। बुद्धि...
बुद्धि को सत् बुद्धि रखना,
आत्म समीक्षण हर दिन करना,
बुद्धि सदा जयकार, भविक जन।। बुद्धि...

दल, बल, बाहुबल, भुजबल आदि सब बलों पर कौन भारी पड़ता है? (प्रतिध्वनि-बुद्धि बल) बुद्धि बल इन सब पर भारी पड़ता है। अभय कुमार की बुद्धि कार्य-साधिका थी। जो काम कोई नहीं कर सके, वह काम अभय कुमार की बुद्धि से हो जाता। जो कार्य दल-बल से नहीं होता वह बुद्धि से हो जाता है। अभय कुमार की बुद्धि से वह कार्य संपन्न हो जाता।

इसकी एक छोटी-सी झलक हम देख लें। मेघ कुमार माता के गर्भ में आए और माता को एक दोहद पैदा हुआ। धारिणी माता को दोहद हुआ कि रिमझिम वर्षा बरस रही हो, सुमधुर शीत लहर चल रही हो, ऐसे में वह हाथी पर बैठकर संचालन करती हुई वन विहार करे। श्रेणिक महाराज भी पीछे बैठे हों। वह समय गरमी का था। ऐसे समय में ऐसा दोहद कैसे पूर्ण हो? दोहद पूरा नहीं होने से धारिणी महारानी कृश होने लगी।

परिचारिकाओं ने सम्राट को सूचना दी। सम्राट आए, कहा कि क्या बात है? क्या तकलीफ है? क्या तुम्हारा किसी ने अपमान कर दिया? धारिणी ने कहा कि नाथ! ऐसा कुछ भी नहीं है। फिर क्या कारण है? क्या बोलूं? और क्या बताऊं? सम्राट ने कहा, तुम्हारी जो भी बात है, तुम्हारी जो भी बात हो, तुम्हारी जो भी आस हो, जो भी इच्छा हो, जो भी अभिलाषा हो, नि:संकोच बताओ। मैं उसे पूरा करने का प्रयत्न करूंगा। श्रेणिक ने जब आश्वासन दे दिया तो उसने अपना दोहद बताया। श्रेणिक ने आश्वासन दे तो दिया, पर वहां से बाहर आ अपने सिंहासन पर बैठ गए और आंखें बंद करके सोचने लगे कि ये कार्य संपन्न कैसे होगा?

वर्तमान में तो ऐसा कार्य सम्पादित करना बहुत आसान है। आज के जमाने में चार-पांच लाख रुपये खर्च कर दो तो काम हो जाए। पैसे खर्च करो तो हेलीकॉप्टर से रिमझिम वर्षा हो जाएगी और ऐसा कोई परमाणु विस्फोट करवा देंगे, जिससे हवा का भी संचार होने लग जाए। बस कुछ देर लगे और काम हो जाए। कुछ पैसे खर्च करो तो घंटे, दो घंटे के लिए हेलीकॉप्टर मिल जाता है।

पैसा पास में हो तो कोई भी काम हो, करवा ही लेंगे। किंतु वहां पर वह काम कैसे हो? मगध सम्राट श्रेणिक चिंता मग्न हो गए। कैसे होगा? क्या होगा? वे भूल गए कि मैं कहां बैठा हुआ हूं? क्या हो रहा है? अभय कुमार चरण वंदना के लिए आए, वंदन प्रणाम के लिए आए। उनको वंदन किया, प्रणाम किया। लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं? कोई हलचल नहीं। जैसे लाश पड़ी हो। मुर्दा पड़ा हो। लेकिन वहां थोड़ा स्पंदन है। लाश में श्वास नहीं चलती है, वहां श्वास जरूर चल रही है। बाकी होशो-हवास नहीं कि कहां बैठा हूं? अभय कुमार ने विचार किया कि कारण क्या हो गया? आखिर में उन्होंने आवाज लगाई तो भी कोई चेतना नहीं। ध्यान उधर है ही नहीं। थोड़ा उनको झंझोरा कि तात! क्या बात है? रोज आता हूं तो आप सीने से लगाते हैं, माथा चूमते हैं, हाथ फेरते हैं पीठ पर, आशीर्वाद देते हैं और आज मेरी तरफ देखते ही नहीं हैं?

सम्राट् की आंखें फटी-सी रह गईं। विश्वास ही नहीं कि मेरे सामने कौन खड़ा है? जैसे नींद में सपना देखते हैं। नींद से जगा हुआ आदमी जैसे होता है, नींद से उठा हुआ आदमी होता है, वैसे ही। अभय कुमार ने फिर निवेदन किया। सम्राट् बोले कि अभय! अभय कुमार विचार करने लगे कि ओहो! क्या चिंता है? कैसी चिंता है? अभय स्वयं विचलित हो गये। योग्य पुत्र के रहते हुए भी पिता यदि चिन्तित हो तो उस पुत्र की योग्यता का क्या मतलब? आज के सपूत चिंता बढ़ाने वाले हैं या चिंता घटाने वाले, मैं नहीं कह सकता हूं। मैं निर्णय नहीं देने वाला। यह तो आप ही ज्यादा जानते हैं। अत: आपसे पूछ लेना उचित है कि आज के सपूत माता-पिता की चिंता बढ़ाने वाले हैं या चिंता घटाने वाले हैं? (प्रतिध्वनि-बढ़ाने वाले हैं) तो फिर? आप लोग गर्व से बोल रहे हो कि बढ़ाने वाले हैं। कितने लोग ऐसे होंगे जिन्होंने संकल्प लिया होगा कि हमारे कारण से मायतों को किसी प्रकार का तनाव नहीं आने देंगे। यदि उनकी नसीहत है, फितरत है, उससे वे तनाव में जीते हैं तो बात अलग, किंतु आप अपनी तरफ से उनको तनाव में नहीं आने देंगे। बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे। बल्कि ये कहते मिलेंगे लोग कि मैं क्या करूं? मैं पूरा प्रयत्न करता हूं कि उनको तनाव नहीं आने दूं, किंतु वे हर बात को लेकर तनाव में आ जाते हैं। रहा होगा कुछ। तीन भाई धन्ना जी के बोले कि पिताजी हमेशा तनाव में जीते हैं। अब पिताजी करें तो क्या करें? तुम्हारे साथ रहें तो भी तनाव में रहें और धन्ना जी के साथ रहें तो फिरना पड़े जगह-जगह।

अभय कुमार कहते हैं कि तात! आपकी यह हालत देखकर तो मेरा संतान होना व्यर्थ है, बेकार है। आपको कोई परेशानी हो और मैं जिंदा रहूं तो बेकार है। आपकी कोई परेशानी है, आप उसको बताइए। सम्राट् ने कहा कि अभय कुमार बहुत कठिन काम है किंतु मुझे विश्वास है कि तुम उसे पूरा करोगे। अभय कुमार ने कहा कि तात! आप नि:संकोच अपनी चिंता बताइए। अभय कुमार को वह चिंता बताई गई। अभय कुमार ने उस चिंता का क्या किया? अभय कुमार ने उस चिंता को झेल लिया। मगध सम्राट् को विश्वास था कि अभय कुमार ने इसके लिए हां कर ली है तो वह काम करेगा ही। कैसे करेगा, इसका मुझे फालतू का टेंशन नहीं करना है। ऐसा उन्होंने विचार नहीं किया कि मैंने कह तो दिया, लेकिन क्या होगा? होगा या नहीं होगा? तुमने अपनी चिंता सौंप दी फिर भी चिंता लिए बैठे हो?

मगध सम्राट् ने अपनी चिंता सौंप दी। अब उनको चिंता नहीं है कि वह कैसे करेगा? क्या करेगा? 'कौन ओढ़े, कौन खींचे' अब तो अभय कुमार ओढ़े और अभय कुमार ही खींचे। अभय कुमार विचार करने लगे कि मैंने इस बात की हां तो कर ली, किंतु इस कार्य को संपन्न कैसे करूंगा? यहां से उनकी बुद्धि चालू हुई। 'वन, टू, थ्री...' और विचार आया कि ये मनुष्यों के वश की बात नहीं है। यह कार्य किसी मनुष्य की सहायता से संपन्न होने वाला नहीं है। इस कार्य के लिए मुझे देव से ही सहयोग लेना पड़ेगा। यदि देव से सहायता नहीं लेते तो बात बनती नहीं। उस स्थिति में तो पिताजी का विश्वास खत्म हो जाएगा कि अरे! अभय कुमार, तुमने मेरे से वादा किया था। तुमने कहा था कि मैं काम संपन्न कर दूंगा और संपन्न नहीं कर पाए। पिता का विश्वास छिन्न हो जाएगा, जो नहीं होना चाहिए।

उसने कहा था कि आप चिंता मत कीजिए। अब चिंता की बात नहीं है, काम हो जाएगा। जब तक पिता की चिंता बनी रहे, माता का दोहद पूरा नहीं हो जाए, तब तक वे कार्य करेंगे। हालांकि वह उनकी असली मां नहीं थी। वह उनकी चूल मां थी, सौतेली मां थी, किंतु वहां पर आकर ऐसा नहीं सोचा कि सौतेली मां का दोहद है। एकदम शांति और समाधि से प्रिय देव, मित्र देव को याद कर तेला करके पौषधशाला में बैठ गए कि ये कार्य देवता के द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। तेले में देव का स्मरण करने लगे। जैसे ही तेला होता है, देवता को लगता है कि कोई मुझे याद कर रहा है। याद कर रहा है तो क्या बात

है, किसलिए याद कर रहा है? देखा कि अरे! अभय कुमार मुझे याद कर रहा है। देव वहां पहुंच जाता है। सारी रामायण नहीं बता रहा हूं किंतु जैसा बोला कि अभय कुमार, तुमने मुझे मन से याद किया। मैं तुम्हारा क्या भला करूं? मैं तुम्हारा क्या हित करूं? तुम क्या चाहते हो?

अभय कुमार पौषध पालते हैं और पौषध पालकर कहते हैं कि हे मित्र! तुम्हारे अन्दर क्षमता है। तुम सब कुछ करने में समर्थ हो। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मेरी चूल माता को यह दोहद पैदा हुआ है कि इस-इस प्रकार से, संपन्न होना चाहिए। देव ने कहा कि मित्र अभय, तुम जैसा चाहते हो वैसा ही होगा। तुम जाकर अपनी चूल माता को तैयारी करवाओ। मैं यह सारी रचना करता हूं। देवता को कितनी देर लगे? ताली बजे और काम हो गया। देव ने विक्रिया की और वहां का दृश्य देखते ही देखते बदल गया। बादल आ गए। रिमझिम वर्षा चालू हो गई। शीतल पवन चालू हो गई। ये दृश्य देखकर धारिणी महारानी का मन प्रफुलित हो गया। इधर अभय कुमार जाकर सूचना देते हैं पिताजी को। उनका तरीका देखो। ये नहीं कि धारिणी माता के सामने जाकर यह बात कहूं और अपनी बड़ाई करूं कि देखो, तुम सौतेली मां हो तो भी मैंने तुम्हारे लिए ये काम कर दिया। उन्होंने ऐसा नहीं किया।

पिता की चिंता है तो वह पिता को जाकर कहता है कि पिताजी, तात! आपका कार्य हो गया है। आप चूल माता को सूचना दें और उनकी भावनाओं को पूरा करें। अपनी वीरता बताने के लिए, अपनी डींग हांकने के लिए नहीं गए कि इस प्रकार से करके मैंने सारा दृश्य बनाया। ऐसा कहने के पीछे मेरी भावना यह है कि यदि हम अपनी बुद्धि को पवित्र बनाए रखते हैं तो हमें बुद्धि से समाधान मिलेगा। यदि बुद्धि को विवादों में, उलझनों में उलझाकर रखेंगे तो वह बेचारी करेगी क्या? पहले से ही वह उलझी हुई है, वह क्या करेगी? इसलिए बुद्धि को सदा पवित्र बनाए रखो, बुद्धि को सदा निर्मल बनाए रखो। उसकी निर्मलता बरकरार रहेगी, उसकी पवित्रता बरकरार रहेगी तो कोई भी समस्या खड़ी नहीं होगी। समस्या खड़ी हो भी गई तो भी बुद्धि उसका समाधान ढूंढ़ने में प्रवीण होगी। वह उसका समाधान ढूंढ़ लेगी।

बुद्धि अभय आधार, भविक जन,
बुद्धि अभय आधार...

बुद्धि अभय आधार का एक अर्थ यह हो गया कि अभय का आधार,

बुद्धि थी। दूसरा अर्थ है बुद्धि अभय देने वाली है। आप अपनी बुद्धि को पवित्र बनाए रखते हैं, निर्मल बनाए रखते हैं तो भय की कहीं से कहीं तक आवश्यकता नहीं होगी। निर्भय बनकर जीयो, शांत बनकर जीयो, समाधि में जीयो। इस प्रकार का यदि हम प्रयत्न करेंगे तो दीप पर्व के प्रवचन सुनना हमारे लिए सार्थक हो पाएगा। अभय कुमार की बात सुननी सार्थक हो पाएगी। धन्ना जी की बात सुनकर हम मन को शांति और समाधि में ले जाने में समर्थ बनेंगे अन्यथा बातें रोज ही चल रही हैं। होने की बात रोज ही हो रही है। वही घोड़े हैं, वही मैदान है। हम उन्हीं घोड़ों को उसी मैदान में लेकर दौड़ते हैं। उन्हीं घोड़ों को लेकर मैदान में दौड़ाते रहते हैं तो शांति मिलने वाली नहीं है। इससे समाधि मिलने वाली नहीं है। शांति और समाधि किसी बाजार से नहीं मिलेगी। वह नजरिया बदलने से मिलेगी। इसलिए हम अपना नजरिया बदलें और अपने आप को समाधि के मार्ग पर आगे बढ़ाएं।

महासती श्री सुखदा श्री जी म.सा. और वरदा श्री जी म.सा. की कितने की तपस्या हो गई है? (प्रतिध्वनि-26 की तपस्या) उनके आज 26 की तपस्या हो गई है। भगवान महावीर के निर्वाण के अवसर पर तपस्या करने की कोई जबरदस्ती नहीं है। ये तो आपके यहां की ही जन्मी हुई बायां/लड़कियां हैं। अब इनको दहेज देना है तो आप ही देख लो कि आपकी शक्ति क्या है? आपकी क्षमता क्या है? वैसे तो आदमी अपनी नाक रखने के लिए पता नहीं क्या-क्या कर लेता है। अब जो करना है, आपको करना है। आप जानो और आप ही करो। इतना ही कहते हुए विराम।

24 अक्टूबर, 2019

3

सौभाग्य की सरगम

जय बोलो, जय बोलो, महावीर प्रभु की जय बोलो।
जय बोलो, जय बोलो, महावीर प्रभु की जय बोलो।
चरमावृत में आप पधारे,
पांच लब्धियां आरज सारे,
करण तीन गुणकार, प्रभु की जय बोलो।।
नमो सिद्धाणं पथ अपनाया,
परीषहों से ना मन घबराया,
मन वच एकाकार, प्रभु की जय बोलो।।
कर्म घातिया दूर हटाया,
अनंत शक्तियों को प्रकटाया,
द्वेष न दे सुखकार, प्रभु की जय बोलो।।

चलना दो प्रकार से होता है। एक चलना होता है मंजिल पाने के लिए और एक चलने का कोई लक्ष्य नहीं होता। बस चल रहे हैं। कहां जाना है, कोई ठिकाना नहीं है। गति और क्रिया दोनों में है। दोनों में गति यानी चलने की क्रिया हो रही है, किंतु एक क्रिया मंजिल दिलाने वाली होगी जबकि एक क्रिया भटकाने वाली होगी। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दो अवस्थाएं हैं। मिथ्यात्व अवस्था में होने वाली गति भटकाने वाली होती है। सम्यक्त्व अवस्था की गति मंजिल दिलाने वाली होती है।

सम्यक्त्व का एकरूप, जिसको व्यावहारिक धरातल पर हम मानते हैं वह है देव, गुरु, धर्म पर आस्था होना और दूसरा आगमिक विधान है, जिसको हम कहेंगे कि निश्चय रूप से वह व्यक्ति सम्यक्त्वी हो गया है। उसके लिए चरमावृत में आ जाना जरूरी है। चरमावृत को कैसे समझेंगे हम? इसको

समझने की लंबी प्रक्रिया है। अभी उस गहराई में हम नहीं चलते हैं। चरमावृत में आना होगा। पांच लब्धियां भी बनेंगी। तीन करण का योग बनेगा तब कहीं व्यक्ति सम्यक्त्वी बनेगा। चाहे कोई भी हो। भगवान महावीर की आत्मा हो, चाहे अन्य किसी की आत्मा। उस रास्ते से गुजरने और सम्यक्त्व में प्रविष्ट होने के बाद ही उसकी यात्रा चालू होती है। भगवान महावीर की यात्रा को हम नयसार के भव से मानते हैं। भगवान महावीर के रूप में जन्म हुआ उसके बीच अनेक भव किये। अंतिम भव में उन्होंने जब अवसर आया देखा तो विचार किया कि अब मुझे आत्मकल्याण की ओर बढ़ना चाहिए। भाई से अनुमति प्राप्त कर सिद्ध भगवान को नमस्कार करते हुए यानी आदर्श को सन्मुख रखते हुए उन्होंने साधना पथ को स्वीकार किया। कर्मों से युद्ध किया। घातिया कर्मों को दूर किया। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हो गए।

भगवान महावीर के युग में यज्ञों का बहुत बोलबाला था। यज्ञों के नाम पर हिंसा का तांडव भी चल रहा था। इंद्रभूति गौतम भी यज्ञ आदि करवा रहे थे। उन्होंने देवों के विमानों को आते हुए देखा तो बड़े खुश हुए कि मेरे यज्ञ के प्रभाव से स्वयं देवता आ रहे हैं। किंतु विमान आगे बढ़ गए तो मन में टीस पैदा हुई। उन्हें मालूम पड़ा कि कोई महावीर नाम के व्यक्ति हैं, ये विमान उधर जा रहे हैं। उन्होंने सोचा कि जरूर कोई इंद्रजाल होगा, जिसने मेरे यज्ञ में आने वाले विमानों को अपनी तरफ आकर्षित कर लिया, किंतु उसका इंद्रजाल मैं लंबे समय तक टिकने नहीं दूंगा।

ऐसा माना जाता है कि उस समय के धुरंधर विद्वानों में इंद्रभूति गौतम थे। वे चले अपने शिष्यों के साथ प्रभु महावीर से शास्त्रार्थ करने के लिए। वहां पहुंचते ही भगवान महावीर ने उनको उनके नाम से संबोधित किया तो चौंक गये कि मेरे नाम को कैसे जान रहे हैं? इतने में भगवान ने उनके भीतर रहे हुए अज्ञान को, संशय को पकड़ा और कहा कि 'इंद्रभूति गौतम, तुम इतने विद्वान होते हुए भी आत्मा के विषय में संशयशील बने हुए हो?'

बस! वहीं से इन्द्रभूति गौतम झुक गए। वे प्रभु के चरणों में नतमस्तक हो गए और अणगार प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। उनके शिष्यों ने भी उन्हीं का अनुकरण किया। इन्द्रभूति, भगवान महावीर के प्रथम गणधर बने।

मन आनन्द पाए, गणधर गौतम की जय-जय बोलिए
वीर प्रभु के गणधर पहले, इंद्रभूति शुभ नाम

गौतम नाम से ख्यापित होते, विनय भाव प्रमाण जी...
लब्धि का अनूठा खजाना, पर न करना मन में मान
मान हरण की दिव्य औषधि, पूरे मन अरमान जी...
मन आनन्द पाए, गणधर गौतम की जय-जय बोलिए

इंद्रभूति गौतम के लिए हम कहते हैं कि 'अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भंडार।' यानी लब्धियों से जिनका भंडार भरा हुआ है। यह इन दिनों में इसलिए बोला जाता है कि लोग लिखते हैं कि 'गणधर गौतम जैसी लब्धि।' गणधर गौतम जैसी लब्धि या लब्धियां, हमें प्राप्त हों। वैसे जो लिखते हैं, वे एक ही लब्धि के आधार पर लिखते हैं कि 'अंगूठे अमृत बसे', अंगूठा डुबाओ और अंत ही नहीं। एक बात ध्यान में रखना कि लोभ और लालच हमारे भीतर होगा तो लब्धियां मिलने वाली नहीं हैं। लोभ और लालच को पहले तिलांजलि देनी होगी। उससे ऊपर उठना पड़ेगा।

लोभ ही खत्म हो गया, लालच ही नहीं रहा तो अब लब्धि मिलने से क्या फायदा हुआ? अब उसका आनन्द या मजा हम कैसे उठा पाएंगे? लब्धि मजा उठाने के लिए नहीं होती है। आगम यह बताता है कि गौतम स्वामी को इतनी लब्धियां प्राप्त थीं। वे उन सारी लब्धियों का गोपन करके चल रहे थे। संक्षिप्त करके चल रहे थे। उन सबको अपने भीतर समाहित करके चल रहे थे। बाजार में प्रदर्शन करते हुए नहीं चल रहे थे। हालांकि कई कहानियों में इस प्रकार की बातें झलकाई गई हैं कि गौतम स्वामी ने ऐसा किया, वैसा किया। अंगूठा डाल दिया फिर तापसों से जैनेश्वरी दीक्षा लेने वाले मुनियों को पारणा कराया। किंतु ऐसा लगता नहीं है कि गौतम स्वामी ने लोगों को प्रभावित करने के लिए लब्धियों का प्रयोग किया हो। चमत्कृत करने के लिए उनका प्रयोग किया हो। चमत्कार साधु जीवन का अंग नहीं है।

चमत्कार दिखाने वाले कौन होते हैं? रोजी-रोटी जिसको चलानी है, वह लोगों को चमत्कार दिखाकर आकर्षित करेगा, प्रभावित करेगा। साधु रोजी-रोटी के लिए साधु नहीं बना है। इसलिए साधु नहीं बना है कि रोजी-रोटी मिल जाएगी अच्छी तरह से। इसलिए बनते हैं क्या महाराज? संत का सबसे पहला लक्ष्य है आत्मकल्याण। आत्मा पर लगे हुए कर्मों को दूर करना। अपनी आत्मा को परिष्कृत करना। अपनी आत्मा की धुलाई करना। उसके बाद दूसरे कार्य या दूसरे लक्ष्य, दूसरे ध्येय आदि आ गए। भव्य आत्मा है और धर्म की

ओर अभिमुख होने वाली है, उसे उपदेश देना ताकि उपदेश लगे और आत्मकल्याण की दिशा में वह भी आगे बढ़े और अपना आत्मकल्याण करे तो धन्य हुए। किंतु वह यदि आगे नहीं बढ़ता है तो मन में संताप भी नहीं होना, मन में यह विचार भी नहीं आना कि मैंने उपदेश दिया और यह आगे नहीं बढ़ रहा है। मैंने उपदेश दिया और यह त्याग नहीं कर रहा है। त्याग करना या नहीं करना उसकी शक्ति पर निर्भर है। मनोबल के आधार पर वह त्याग करेगा।

भगवान महावीर ने इंद्रभूति गौतम को अपना शिष्य बनाने के लिए उपदेश नहीं दिया। भगवान ने किसी को इसलिए उपदेश नहीं दिया कि मेरा उपदेश सुनकर साधु बन जाए, श्रावक बन जाए और हमारा एक विशाल संघ बन जाए। ऐसा कोई लक्ष्य भगवान का नहीं था। ये हम कह सकते हैं और बहुत स्पष्ट कह सकते हैं। उनका लक्ष्य क्या करना था? उनका लक्ष्य था संसार के अज्ञान में पड़ी दु:खी आत्मा, अज्ञान के कारण अपने-आप को नहीं पहचान पा रही आत्मा, सम्यक् दिशा को नहीं जान पा रही आत्मा को सम्यक् बोध देना। उसको सही रास्ता दिखाना। कोई गलत रास्ते पर जा रहा है तो उसे सही रास्ता दिखा दिया, फिर उसकी जैसी मर्जी हो वैसा वह करे। वैसा ही उपदेश गौतम स्वामी को दिया। वैसे तो कहते हैं कि उनको 'चिंतामणि रत्न' मिल गया।

क्या होता है चिंतामणि रत्न? नाम है, 'चिंतामणि रत्न' यानी चिंता को पूरा करने वाला। चिंता का मतलब? चिंता का मतलब हम सोचते हैं कि जो टेंशन या चिंता हो जाती है, वह चिंता। नहीं? चिंता का अर्थ होता है, चिंतन। वह चाहे गलत हो, चाहे अच्छा हो। चिंता आदमी को भुलाने वाली है, किंतु है दोनों का नाम एक ही। चिंतन कहे या चिंता कहे, है तो एक ही अर्थ। मन में व्यक्ति जो सोचे, वह जिससे पूरा हो जाए, उसे कहते हैं चिंतामणि। थोड़ी देर के लिए समझ लो कि हमें चिंतामणि रत्न मिल जाए तो हम क्या सोचेंगे?

गुरुदेव एक कहानी फरमाया करते थे कि दो मित्र थे। वे दोनों मित्र व्यापार, धंधा या रोजगार के लिए चले थे। एक कोई महात्मा मिल गए। महात्मा ने कहा कि देखो भाई। मेरे पास एक कुंभकलश है। इसको सामने रखकर जो भी मांगोगे, वह मिलेगा। कुंभकलश मतलब मिट्टी का एक बरतन, जिसको सामने रखकर जो भी मांगोगे, वह चीज मिलेगी। वह

कुंभकलश यदि मिल जाए थोड़ी देर के लिए, एक घंटे के लिए, दो घंटे के लिए तो क्या उपयोग होगा? नहीं होगा उपयोग? मान लो, आपको वह कुंभकलश मिल गया तो आप क्या उपयोग करोगे? आप लोग कहेंगे कि मिलेगा तब सोचेंगे। अभी मिला ही नहीं तो सोचने से मतलब क्या है? जब वह चीज मिलेगी तब सोचेंगे कि क्या करना है? ऐसा नहीं होता है। लोग पहले ही प्लान बनाते हैं कि यदि ऐसा हो गया तो उसका उपयोग कैसे करेंगे? बाद में प्लान बनाने में रह गए तो हाथ से वह चीज निकल जाएगी। फिर वह प्लान बनाना किस काम आएगा?

ध्यान रखना, यदि कुंभकलश मिल गया या चिंतामणि रत्न मिल गया, किंतु हमारे विचार सही नहीं होंगे तो चिंतामणि रत्न से भी हम अपने पैरों को कटवा लेंगे। अपने ही पैरों को हम तोड़ देंगे। हम बुरा ही बुरा सोचेंगे। अच्छा सोच ही नहीं पाएंगे। उस महात्मा ने कहा कि मेरे पास एक कुंभकलश है और एक विधि है। दोनों में से क्या चाहिए? एक मित्र थोड़ा जल्दी में था, हड़बड़ी में था। उसका स्वभाव ही हड़बड़ी वाला था। उसने महात्मा से कहा कि मुझे तो बना-बनाया कुंभकलश ही दे दो। दूसरे मित्र ने कहा कि मैं विधि लेने के लिए तैयार हूं। दूसरे ने विधि ले ली। पहला आदमी खुश हो गया। उसने पहला प्रयोग किया कि बढ़िया खाना मिल जाए तो झट से खाना तैयार। कहा कि थाली भी चाहिए तो थाली भी तैयार। पानी चाहिए तो पानी भी तैयार। उसने कहा कि बस अब अपने को कुछ नहीं करना है।

ये सब चीजें क्या आलसी बनने के लिए मिलती हैं? ये चीजें मिल गईं, तो अब और कुछ करना ही क्यों? बन जाओ आलसी। जो आलसी बन जाएगा, उसके पास चीजें टिकेंगी नहीं, ठहरेंगी नहीं। वह आदमी भी आलसी बन गया। मौज मनाने लगा। धीरे-धीरे अपने गांव पहुंच गया। गांव में अपना चमत्कार दिखाने के लिए उसने गांव की सारी बिरादरी को आमंत्रित किया। लोगों ने कहा कि ये कितना कमाकर आ गया कि सब लोगों को जीमने के लिए बुलाया है? लोग चले गए। लोगों को वह दिखा-दिखा कर कहने लगा कि हे कलश, लड्डू दो, थाल दो, जलेबी दो, नमकीन, साग-पूड़ी, दाल-चावल, पापड़ आदि। कलश से वे चीजें मिलती गईं। लोग आश्चर्य करते हैं। लोगों ने कहा-जबरदस्त काम है भाई कि ऐसा कुंभकलश हाथ लग गया। उसने खुश होते हुए सबसे कहा कि बोलो और क्या-क्या खाना है, वे सब चीजें आएंगी।

सबके लिए उनके पसंद के खाने की व्यवस्था की गई। सभी के लिए नए वस्त्र, आभूषण की व्यवस्था की। आदत थोड़ी खराब की थी तो शराब भी मंगवा ली। शराब पी। लोगों ने शराब पी और कुंभकलश को सिर पर उठाकर नाचने लगे कि हो गया काम पूरा! कुंभकलश गिरा और फूट गया। कुंभकलश जैसे ही फूटा, अब हाथ में क्या रहना था?

कुंभकलश मिल जाए, चिंतामणि मिल जाए किंतु सोच तो जो मिली होगी, वह काम आएगी। सोच सही नहीं हुई तो ये चिंतामणि रत्न और कुंभकलश क्या काम आएंगे? उस भाई की सोच सही नहीं थी तो कुंभकलश से फायदा उठा नहीं सका। दूसरे ने विधि सीखी। वह जहां मौका होता, जहां जरूरत होती है, उसका उपयोग करता है। हर समय उसको बाजार में दिखा-दिखाकर लोगों को चमत्कार नहीं दिखा रहा है। वह घाटे में रहेगा या मुनाफे में रहेगा? (प्रतिध्वनि-मुनाफे में रहेगा) वह मुनाफे में रहेगा। लब्धियां मिल जाएं, इसका मतलब यह नहीं कि चंचल बन जाऊं। चंचल बन गया तो लब्धियां जो मिली हुई हैं, वह टिक पाना मुश्किल हो जाएगा। अपनी गंभीरता बनी रहेगी और जहां बहुत आवश्यकता रहे, वहां लब्धियों का उपयोग करना पड़े तो बात अलग है अन्यथा हर जगह उन लब्धियों का प्रयोग नहीं करना।

वैसे तो एक भी बहुत है किंतु 'गौतम' नाम में तीन अक्षर हैं। तीनों मनोरथ पूरक पदार्थों के प्रथम अक्षरों का संग्रह है। इसका एक दोहा भी है। यथा-

'कामधेनु गौ शब्द थी, तटे तरु सुर वृक्ष,
भजो मणि चिंतामणि, गौतम नाम प्रत्यक्ष।'

गौतम। गौ यानी गाय। कहते हैं कि राजा दिलीप के पास कामधेनु गाय थी जो मनोकामना पूर्ण करने वाली थी। पहले वह वशिष्ठ जी के पास थी फिर दिलीप राजा ने याचना की तो वह उसे मिली। मनोकामना पूर्ण करने वाले को कामधेनु कहा जाता है। आज भी यदि व्यक्ति घर में गाय पाले तो एक परिवार का खर्चा गाय निकाल ही देती है। आप यदि उसकी सेवा-शुश्रूषा करोगे तो एक परिवार का खर्चा वह निकाल देगी। दूध, दही, घी, मक्खन, छाछ आदि बातों से विचार करें तो एक छोटे परिवार का खर्चा एक गाय से निकल सकता है।

दूसरा गौतम में 'त'। 'त' यानी तरु। तरु यानी कल्पवृक्ष। कहते हैं कि

कल्पवृक्ष से जो मांगते हैं, वह मिलता है। 'म' यानी मणि, चिंतामणि। उससे जो मांगो, वह मिलता है। कहते हैं, ये तीनों अलग-अलग हैं किंतु गौतम नाम में तीनों समाविष्ट हो गई। उनका आश्रय ले लें, उनकी शरण प्राप्त कर लें फिर क्या कमी रह जाए?

एक बार की बात है। मैं कल्पना में विहार कर रहा था। अकस्मात् आंख लगी कि गणधर गौतम स्वामी मेरे सामने। बड़ा आह्लाद हुआ, बड़ा प्रमोद हुआ। मेरे मुंह से निकला-भगवन् आप! आपके दर्शन पाकर मैं धन्य-धन्य हो गया। निवेदन किया कि भगवन् आपने भगवान महावीर का निकट सान्निध्य प्राप्त किया है। निकट सान्निध्य से आपने अध्यात्म की गहराइयों को प्राप्त किया है। साधना की ऊंचाइयों को प्राप्त किया है। आगम हमारे सामने हैं किंतु हमारी ओछी बुद्धि, मंद बुद्धि से हम इतना समझ नहीं पाते हैं। आप सार-संक्षिप्त में हमें साधना का रहस्य बताइए, साधना का मार्ग बताइए और उनकी पर्युपासना में लग गया।

इतने में दिव्य ध्वनि उच्चरित होती है। 'ज्ञान का गर्व नहीं, भक्ति में खोट नहीं और क्रिया का प्रदर्शन नहीं।' मैंने सोचा कि ये तीन सूत्र मिले। और भी कुछ मिले। इतने में नजर खुली तो वहां गौतम स्वामी हैं ही नहीं। विचार किया कि ये तीन सूत्र यदि जीवन में उतर जाए...। विचार हुआ कि कितना महत्वपूर्ण साधना का सार संक्षिप्त और पूरा रहस्य बता दिया कि ज्ञान का गर्व नहीं करना। प्रतिक्रमण, 25 बोल और 5-7 थोकड़े आ जाए तो कहने लगते हैं कि बावजी, मुझे सब याद है। मैं सब जानता हूं। मैं सर्वज्ञ बन गया। अब बाकी कुछ रहा ही नहीं। पुराने लोग कहा करते हैं कि 100 कौडियां मिलना मानो कि मैं बहुत बड़ा व्यापारी बन गया। मेरे पास बहुत माल है।

हमारा ज्ञान है कितना? एक तिल, एक तुस जितना ज्ञान नहीं है। एक रज-कण जितना ज्ञान नहीं है। चौदह पूर्वों के ज्ञान से एक कण उठाओ, उतना भी हमारा ज्ञान हो जाएगा क्या? (प्रतिध्वनि-नहीं होगा) फिर हम गर्व करते हैं कि मैं यह जानता हूं, मैं वह जानता हूं। मैं ऐसा जानता हूं, मैं वैसा जानता हूं। 'ज्ञान का गर्व नहीं।' साधना करना चाहते हो तो गर्व से बचो। ज्ञान को फेंकना नहीं। ज्ञान का प्रदर्शन नहीं करना। आज तक हमने जितना भी जाना है, वह भरा हुआ है। ऐसा समझ लो कि तालाब या भरी हुई टंकी है। उसमें अंगुली डाली और उस अंगुली को ऊपर उठाया तो वैसे झर गया जैसे अंगुली पर लगी

पानी की बूंद या टपका वगैरह झर जाता है। अब अंगुली में जरा सा लेप लगा हुआ है पानी का, इतना भी ज्ञान नहीं है। यदि ग्यारह अंगों का ज्ञान कर लिया, 32 आगमों का ज्ञान कर लिया तो भी इस अंगुली पर लगे पानी के लेप के बराबर नहीं होगा। फिर क्या घमंड ? फिर किसका घमंड ?

32 शास्त्रों को पढ़ा हुआ है। 32 शास्त्रों की जानकारी है। 6 दर्शन हैं। 6 दर्शन का ज्ञान मैंने कर लिया। व्याकरण का ज्ञान मैंने कर लिया। सब ज्ञान मैंने कर लिया किंतु कितना ? इस अंगुली पर जो पानी का लेप है, बूंद टपकने के बाद अब उसमें से बूंद टपकने वाली नहीं है। इसलिए कहा कि ज्ञान का गर्व नहीं। भक्ति में खोट नहीं। 'भक्ति में खोट नहीं' का क्या मतलब हुआ ? भक्ति में खोट नहीं का मतलब है कि इधर तो भक्ति का गीत गा रहे हैं और ध्यान उधर बाहर है कि कौन आ गया ? इधर भक्ति को जता रहे हैं और उधर चढ़ रहे हैं छत पर देखने कि मैंने इतनी भक्ति की है तो मेरे लिए देव विमान आते हैं क्या ? मतलब है कि भक्ति हमारी निष्काम होनी चाहिए। भक्ति में किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं होनी चाहिए।

देखा, एक बार वर्षा हुई। पक्षी, कबूतर आदि के पंख गीले हो गए। अब उड़ना चाहें तो उड़ नहीं पा रहे हैं। उन्होंने पंखों को हिलाया, पंखों को झटका। पंखों को झटकने से पंखों का पानी निकल गया और वे उड़ान भर लिए। कितनी सुंदर बात बताई ? कितनी सुंदर शिक्षा दे दी ? कुछ भी लाग-लपेट रखोगे तो ऊंचाई तक उड़ नहीं पाओगे। ऊंचा उड़ना है तो इनको झटको। जो भी राग, लगाव बनाए रखा है, आसक्ति बनाए रखी है किसी के प्रति भी। चाहे पुद्गल हो चाहे व्यक्ति हो, किसी के प्रति भी आसक्ति बनी रहेगी तो यह पंख ऊंचाइयां दिलाने वाले नहीं बनेंगे। ये उड़ा नहीं पाएंगे। भारी पंख आपको आकाश की ऊंचाइयां मपवाने में समर्थ नहीं हो पाएंगे। जरूरी है कि उस पानी को छोड़ो, जो पकड़ा है। लगाव को छोड़ो। भक्ति भी स्थिर होनी चाहिए। इधर मांग रहा हूं उधर मिल जाने वाली भक्ति सही नहीं है। वैसे ही पक्षी के पंख भारी हो गए। मांगने से वह भक्ति भारी हो गई, वह भक्ति ऊंचाइयां दिलाने वाली नहीं बनेगी।

क्रिया में प्रदर्शन नहीं। दिखावा नहीं। लोग देख रहे हैं तो ओगा जमीन पर रगड़ लो। लोग सोचें कि ओहो ! इसके जैसा तो कोई यतना से चलता ही नहीं है। इसके जैसी तो कोई भक्ति करता ही नहीं है। कोई नहीं देखता हो तो ?

भले आदमी को मालूम नहीं है कि उसकी आंखें देख रही हैं। भले आदमी को मालूम नहीं है कि सेटेलाइट, सी.सी.टी.वी. कैमरा लगा हुआ है, वह देख रहा है। सिद्ध भगवान का कैमरा लगा हुआ है। उनके केवलज्ञान से क्या छिपा हुआ है? यहां की सेटेलाइट तो सीमित देख पाती है। सी.सी.टी.वी कैमरा कितना देख पाता है? वह कितना भी देखता हो, किंतु सिद्ध भगवान के केवलज्ञान रूपी सी.सी.टी.वी. कैमरे से तो कुछ छिपा हुआ नहीं है? उनके ज्ञान में सब झलक रहे हैं या नहीं झलक रहे हैं? वे सब देख रहे हैं या नहीं देख रहे हैं? किसी को देखकर हम ओगा रगड़ेंगे, किसी को देखकर क्रिया करते हैं, इसका मतलब हम यह नहीं देख रहे हैं कि वे ऊपर सब कुछ देख रहे हैं।

हमें उनकी चिंता नहीं होती है। हम भूल ही जाते हैं कि वे देख रहे हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि आदमी जब छल करता है, माया करता है, कपट करता है, अपराध करता है तब उसको याद नहीं रहता है। वह भूल ही जाता है कि भगवान भी मुझे देख रहे हैं। यदि उसको यह ध्यान होता, वह याद रखता कि भगवान भी मुझे देख रहे हैं तो अपराध होता ही नहीं। कपट, छल होगा? फिर माया-कपट वह कर ही नहीं सकता। अरे भाई! किसकी माया, कपट कहां छिपी हुई रहेगी? सारी चीजें दिख रही हैं। सारे रहस्य खुले हैं। अब उनसे क्या रहस्य छुपाओगे? क्या करोगे रहस्य छुपाकर?

'क्रिया का प्रदर्शन नहीं।' साधना में तीनों चीजें रुकावट हैं। आदमी थोड़ा-सा ज्ञान करके गर्वित हो जाता है। भक्ति में दिखावा ज्यादा हो जाता है। भक्ति में आडंबर बढ़ाएंगे। भक्ति में दिखावा करेंगे, यह करेंगे, वो करेंगे, वह क्या काम आयेगी? भक्ति तो भगवान की करनी है, वह तो अन्तर् में पैदा होती है। उसके लिए बाह्य पदार्थों की क्या आवश्यकता है? तीसरा यह कि आदमी क्रिया का प्रदर्शन करता है। क्रिया प्रदर्शन के लिए नहीं है। कर्मों की निर्जरा के लिए क्रिया होती है, किंतु प्रदर्शन का जब लक्ष्य बन जाता है तो निर्जरा दूर हो जाती है। कर्म-बंधन की प्रक्रिया चालू हो जाती है।

चतुर्दशी के दिन इस बार दीवाली रही है। हालांकि घड़ियों में समावेश आ जाता है इसलिए दीवाली और महावीर निर्वाण अलग-अलग हो गए। दीवाली जब चौदस की है तो तेरस और बारस खिसककर नजदीक आ गई। कई जगहों पर मानते हैं कि आज ही धनतेरस है और कई बार बारस की घड़ियों में धनतेरस हो ही जाती है। धनतेरस के हिसाब से भी यहां यों कहें कि खाते-

बहियों में यह भी लिखा करते हैं कि 'सौभाग्य कयवन्ना जैसा'।

सेठ कयवन्ना जैसा सौभाग्य। मैं इस बार थोड़ा लेट हूं इसलिए दो-दो यात्राएं करनी पड़ रही हैं। कयवन्ना जी का सौभाग्य क्या था? कभी बुरे दिन देखे ही नहीं उन्होंने। मैंने एक दिन कहा भी था ना कि 'सदा दीवाली साधां रे, आठों याम त्योहार।' उसी प्रकार वे सदा मस्त जीवन जीये। कभी दु:ख-दर्द, तनाव, टेंशन का जीवन नहीं जीया। यह भी बताया जाता है कि उन्होंने भी सुपात्र दान दिया था और सुपात्र दान का परिणाम हुआ।

दिया दान सुपातर, पुण्य प्रकटा कयवन्ना सेठ के।

कयवन्ना सेठ के पुण्य का प्रकटीकरण हुआ। एक दोहा आप लोगों ने सुना होगा, पढ़ा होगा, बोला होगा या देखा होगा-

चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घटिया नीर,
दान दिये धन ना घटे, कह गए दास कबीर।

साधुओं को बहराया तो कितना बहराया? (प्रतिध्वनि-चोंच भर) कितना बहराया? सेर भर या दो सेर, कितना पातरा भर दिया?

किसान जमीन में जितना बीज डालता है उससे कई गुना अधिक बीज उसको वापस मिलते हैं। वैसे ही सच्चे मन से दिया गया दान कभी खाली नहीं जाता। हां, यह बात जरूर है कि बीज डालें कहां पर? कहते हैं कि ऊसर भूमि में बीज डालेंगे तो वह पैदा हो, कोई जरूरी नहीं है, किंतु बढ़िया भूमि में यदि बीज डाला गया तो उसका फल मिलेगा।

हमने शालिभद्र को सुना, धन्ना जी को सुना। इन सबके पीछे देखें तो मूल बात सुपात्र दान की है। सुपात्र दान का परिणाम भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है? शालिभद्र जैसी रिद्धि, उसी का परिणाम था। धन्ना जी की साहिबी या सिद्धि भी उसी का परिणाम है। अभय कुमार की बुद्धि और बाहुबलि का बल में संतों से जुड़ा हुआ प्रसंग है। बाहुबलि का बल, भरत चक्रवर्ती का चक्रवर्तित्व, साधुओं की सेवा, साधुओं की भक्ति का परिणाम है। बाहुबलि की भुजाओं एवं काया का बल भी साधुओं की सेवा का परिणाम है। 12 महीने एक जगह खड़े रहे। शरीर में कोई दर्द नहीं। 12 महीने छोड़ 12 घंटे खड़े रहना कठिन काम है।

बाहुबलि जी का बल साधुओं की संगत का परिणाम था। आज लोग सोचते हैं कि साधुओं के पास जाकर क्या करें? कोई विचार करता है कि वहां

जाते हैं बात तो समझ में आती नहीं है। कोई कहता है कि वही घिसा-पिटा व्याख्यान हो रहा है। घिसा-पिटा व्याख्यान हो, नहीं हो, मौन ही क्यों न हो, तुम्हारी क्षमता कितनी है? कितना लेना है, यह तुम्हारे पर निर्भर है। भगवान महावीर के दरवाजे खुले थे। खुले थे या बंद थे? (प्रतिध्वनि-खुले थे) जो जितना चाहे ले सकता था।

मृगावती ने कितना ले लिया? उसने इतना लिया कि तृप्त हो गई। कोई ले ही नहीं सके तो उसका कौन क्या करे? भगवान महावीर मृगावती को उपदेश नहीं दे रहे हैं। वह खाली दर्शन कर रही है। उसी में कितनी तृप्त हो गई? कितनी तृप्त हो गई? वैसे ही कोई केवल साधुओं के पास बैठे, खाली साधुओं के दर्शन करे तो उससे भी स्वयं को तृप्त कर सकता है।

एक शांतिलाल जी खींचा हैं। ब्यावर के पास लीडी गांव के हैं। कुछ वर्षों पहले ही मिले। नाम पूछा। मैंने कहा कि कितने साल में दर्शन किए? कहा कि म.सा. मैं तो हर साल दर्शन करता हूं। हर साल छत्तीसा सुनने के लिए आता हूं। मैंने कहा कि कभी परिचय नहीं दिया, तो उन्होंने कहा, म.सा. मैं परिचय देने के लिए नहीं आता हूं। नाना गुरु के समय से मैं हर वर्ष छत्तीसा सुनने के लिए आता हूं। हर वर्ष आता हूं, छत्तीसा सुनता हूं। सामायिक पालता हूं। संघ की सेवा ली और रवाना हो जाता हूं। न अलग से मांगलिक ली, न आकर परिचय दिया कि मैं शांतिलाल खींचा हूं। जिस समय यह बात हुई उससे लगभग 14 वर्ष पहले से छत्तीसा सुनते रहे हैं। दर्शन कर रहे है। नहीं तो 'मत्थएण वंदामि, मत्थएण वंदामि', मालूम पड़ जाता है कि वह आ गया है। इतना ही नहीं जब तक महाराज नजर ऊपर नहीं उठाएं तब तक 'मत्थएण वंदामि'।

म.स. हमारे दर्शन कर लें तो हमारा आना सार्थक हुआ। क्यों निर्मल जी? दर्शन लेने हैं या दर्शन देने हैं? मालूम पड़ना चाहिए कि निर्मल जी आ गए हैं। (प्रतिध्वनि-नहीं) नहीं? मालूम पड़ना चाहिए या नहीं पड़ना चाहिए? अरे! हाजिरी नहीं लगावे तो? हाजिरी लगानी पड़ती है नहीं तो आप अगले साल कहोगे कि कितने साल हो गए? इसलिए हाजिरी लगा लो। क्यों शालिभद्र जी? हाजिरी लगाने वाले, हाजिरी लगाने में ही रह जाते हैं। वे पाएंगे क्या? वे हाजिरी लगाने के लिए आ गए। ऑफिस में चपरासी आया और हाजिरी लगा दी। मशीन में अंगूठा लगाया, हाजिरी लग गई। वैसे ही लग गई, मेरी तो

हाजिरी।

बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने वर्षों से आ रहे हैं और परिचय तक नहीं दिया। इस आदमी ने कभी परिचय नहीं दिया कि मैं आ रहा हूं। बस, सुना छत्तीसा और रवाना हुआ। साधुओं से अलग से दर्शन, वी.आई.पी दर्शन होने चाहिए क्या? वी.आई.पी दर्शन के बिना तृप्ति नहीं होती है। म.सा. हम इतनी दूर से आते हैं तो दर्शन वी.आई.पी होने चाहिए है ना?

कुछ दिन पहले एक परिवार आया। लिखकर दिया कि इतने लोग आते हैं। हमको दर्शन नहीं होते हैं। कम से कम संतों को पूछना चाहिए कि आप कहां से आए हैं? क्या-क्या ज्ञान-ध्यान कर रहे हो? क्या हो रहा है? यह नहीं कह सकते कि उनकी मांग जायज नहीं है, किंतु इसका समाधान कैसे होगा? आने वालों को ज्यादा समय कब मिलता है? रविवार को या अधिवेशन हो उस समय। उस समय भीड़ में, हुजूम में आते हैं। उस समय यहां पर भी पूछा नहीं जा सकता कि कौन क्या है? हम एक को पूछने लगेंगे तो दूसरा धक्का लगाएगा कि आगे चलिए, आगे चलिए।

कोई है समाधान तो आप बता दो और अलग-अलग एक-एक व्यक्ति से पूछा जा सकता है क्या? यह हमने ज्यादा अनुभव किया है कि जो सपइया होते हैं, जो सदा आने वाले होते हैं, जो बार-बार आने वाले होते हैं, उनको आवश्यकताएं हैं। उनकी ख्वाहिश है कि हमारी पूछताछ की जाए। अरे भाई! तुम्हीं से परिचय करेंगे तो नए आने वाले आदमी से कब परिचय होगा?

अभी 5-10 दिन पहले की बात होगी। एक बहन ने पर्ची लिखकर दी कि हर आदमी से आपको परिचय करना चाहिए। इतना आसान है क्या परिचय करना? कैसे होगा परिचय? हम स्वयं चाहते हैं कि ऐसा हो, किंतु करें क्या? कब होगा, कैसे होगा? आपको भी फुरसत कब है? व्याख्यान के टाइम या व्याख्यान के बाद में। व्याख्यान के बाद दिन में वापस कितने लोग मिलेंगे? दिन में कितने लोग होंगे और रात्रि के समय कितने लोग मिलेंगे?

(कुछ लोग कहते हैं कि नहीं मिलेंगे, आधे भी नहीं मिलेंगे)

फिर साधु कब बात करें? या यह हो जाए कि व्याख्यान बंद करके बैठ जाते हैं कि एक-एक आ जाओ, सभी से बात कर लेते हैं। (प्रतिध्वनि-नहीं, नहीं) नहीं, नहीं तो समाधान क्या है? समाधान क्या हो सकता है? यहां व्याख्यान सुनते हैं तो सारे के सारे लोग हाजिर हों तो उस समय हाजिरी क्या

काम की? हाजिरी क्या काम आएगी? दोपहर वाचनी का समय होता है। उस समय कोई कुछ पूछे तो अपने आप ही परिचय हो जाएगा। कितने बच्चे हैं? बच्चे क्या करते हैं? ये बातें पूछकर महाराज क्या करें? ये बातें पूछ लो तो महाराज बढ़िया हैं कि एक-एक बात पूछते हैं। ये बातें पूछकर महाराज क्या करें?

हम लोग भी सोचते हैं, किंतु इसका कोई उपाय मिला नहीं। मदन मुनि जी कह रहे थे कि म.सा. एक बार जोधपुर वालों से परिचय कर लें। आपके सामने आएंगे तो उत्क्रांति की बात हो जाएगी। मैंने कहा, मेरे सामने उत्क्रांति की बात नहीं करना। किसी को दबाव देकर या प्रेशर से काम नहीं करवाना। सहज जो काम होता है, वही सही है। सामने खड़ा कोई शर्मा-शर्मी हां करेंगे तो वह ठीक नहीं होगा। आप समाधान का रास्ता बताएं कि म.सा. इस प्रकार से हो जाएगा तो उस पर विचार करें।

मेरे ध्यान में कुछ बातें समाधान के रूप में हैं। पहली बात आप स्वाध्याय-अध्ययन करें। उसमें प्रश्न उठेंगे। उनके समाधान के लिए उपस्थित होंगे तो परिचय हो सकता है। दूसरी बात आप संघ सेवा-निष्काम सेवा में लगें। उस समय कुछ कठिनाई आए तो उसके समाधान लेने की स्थिति बनेगी तो परिचय हो सकता है अथवा आप संतों से सम्पर्क कर अपनी पर्ची लिखकर देवें कि हमें अमुक कार्य हेतु सेवा-पर्युपासना करनी है। उसके लिए संत जो समय दें, उसको ध्यान में लें, उसका उपयोग करें। कई बार ऐसा बन गया कि समय लिया, संत इंतजार करते रहे, लोग आए ही नहीं। बाद में ज्ञात हुआ कि घूमने चले गये। ऐसा नहीं होना चाहिए। यदि बहनें फैमेली के साथ हों तो हमारे पास व्याख्यान के पश्चात् 11.30 तक का समय रहता है। दोपहर 1.30 से 2.30 तक भी, वह भी आहार-पानी से निवृत्त हो जाएं तो। वाचनी के समय पृच्छा का समय रहता है। 4 बजे के बाद बहनों के बैठने का समय नहीं रहता।

हमने कई बार प्रयास किए हैं कि सबसे एक बार तो परिचय हो जाए। सारे लोगों का परिचय हो जाए। उनको भी लगे कि हमने म.सा. से बात कर ली है। मैंने प्रवेश किया था, उस समय बोल दिया था कि आप लोग आओ, मना नहीं है। आप आकर खड़े रहो तो कोई बात होती नहीं है। आप खड़े न रहकर अपनी बात करें। रात्रि को ज्ञान-ध्यान के समय चर्चा में आएं तो संपर्क हो सकता है। हो सकता है या नहीं हो सकता है? (प्रतिध्वनि-हो सकता है)

निरांत का समय, आराम का समय होता है पर उस समय आप आ नहीं पाते हैं। फिर कैसे संभव हो, बताएं?

ये प्रसंग नहीं है किंतु बात आ गई तो कह दिया। धनतेरस, धन्य तेरस की भी बहुत सारी किंवदंतियां हैं। आज के दिन कोई हांडा खरीदता है, कोई बरतन खरीदता है। कोई कुछ खरीदता है तो कोई कुछ खरीदता है। कल-परसों लोग बोलने लगे कि धनतेरस है। अभी तो तेजी का सीजन है। कमाने का सीजन है। कोई न कोई हांडा खरीदता है, बरतन खरीदता है। कोई सोना खरीदता है तो कोई चांदी खरीदता है। अरे! सोना और चांदी खरीद तो लेते हैं किंतु सच्चा धन कौन-सा है? सच्चा धन कौन-सा है? सच्चा धन है, हमारा सम्यक्त्व। तीन रत्न। ज्ञान, दर्शन और चारित्र। इस धन का क्रय कर लिया, इस धन का संग्रह कर लिया, इस धन को स्वीकार कर लिया तो जन्मों-जन्मों की प्यास बुझ जाएगी। जन्मों-जन्मों का ताप, संताप हट जाएगा और हम सुखी हो जाएंगे।

कयवन्ना सेठ का पुण्य रहा, सौभाग्य रहा कि वे जीवन में कभी भी दु:खी नहीं हुए। अब सारी कहानी सुनाऊं, इतना समय नहीं है अपने पास में। संक्षिप्त कथा इस प्रकार है-ज्यादा संसार की रुचि नहीं थी उनकी। माता-पिता ने सोचा कि बच्चा हाथ से नहीं निकल जाए इसलिए कुसुम गणिका के वहां भेज दिया। वहां 12 साल रहे। फिर जब घर में तोड़ा आ गया, गणिका की मां ने देख लिया कि घर से रखड़ी-सुहाग चिह्न आ गया, अब उसे रखने में कोई मतलब नहीं है तो वहां से निकले। देशांतर जाने के लिए विचार हुआ तो रात को दूसरी सेठानी अपने घर में ले गई। दूसरी सेठानी के पुत्र का स्वर्गवास हो गया था। उसने सोचा कि कहीं ऐसा नहीं हो कि उसकी संपत्ति राजा हड़प ले। 12 साल वहां बीत गए। फिर घर पर आते हैं। यह लंबी कहानी है। किंतु सुखमय जीवन जीया। जहां भी जीये, सुख में जीये। इसलिए कहते हैं कि कयवन्ना सेठ जैसा सौभाग्य।

हम आम के पेड़ और उस पर आए हुए फल को देखते हैं। किंतु आम को देखने से पहले उसकी गुठली से पूछो कि उसने कितनी कठिनाइयों को सहन किया है? उसे कितनी पीड़ा झेलनी पड़ी है? उस पेड़ और आम के फल को देखने से पहले देखो कि उसने किस प्रकार से कठिनाइयों को झेला है? जो भी मिली है, उसके लिए पेट को चीरना पड़ा। जमीन में अंकुरित हुआ और

बहुत कठिनाइयां झेलने के बाद सफलता मिलती है। हम सीधा चीज को चाहते हैं। रेडिमेड चाहते हैं। आजकल यह प्रचलन ज्यादा ही हो गया है। पाउच की संस्कृति बन गई है। पाउच ले आओ।

गुरुदेव के समय 'धर्मयुग' नामक पत्रिका देखने में आई। उस पत्रिका में लिखा था कि पॉलिथीन की थैलियों में रखे पदार्थों का निरंतर उपयोग-सेवन करने से कैंसर की संभावनाएं बहुत ज्यादा बढ़ जाती हैं। लिखने वाले कितना ही लिख दें, कौन-से 'मियां मर गए और कौन-से रोजे घट गए?' पॉलिथीन की थैलियों का उपयोग उस जमाने से बढ़ा या घटा? (प्रतिध्वनि-बढ़ा है) बढ़ा है फिर भी हमारे कान पर जूं तक नहीं रेंगती। भले ही कइयों को कैंसर हो जाए। उस जमाने से आज के जमाने में कैंसर बढ़ा है। फिर भी हमने पॉलिथीन की थैलियों को छोड़ दिया या उपयोग कर ही रहे हैं? मैं जहां तक अनुभव करता हूं हमने पॉलिथीन की थैलियों को छोड़ा नहीं है। अब तो सरकार ने भी प्रतिबन्ध लगा दिया है। ऐसा सुना है कि उसके अनुसार उनका उपयोग अपराध माना जाने लगा है। फिर भी हम कहां छोड़ने वाले हैं। हम चला लेते हैं। मैं किसी भी प्रकार से चला ही लूंगा।

भले ही कुछ भी करो, आदमी करता अपनी मर्जी से ही है। किंतु पॉलिथीन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है, लाभकारी नहीं होता है। आज की बनी हुई ताजी चीज स्वास्थ्य को लाभ पहुंचा सकती है। भले ही गेहूं के खाखरे ही क्यों न हों। पॉलिथीन पैक कितने दिन पहले बने हुए होते हैं? उनमें पोषक तत्व कितने रह पाते हैं? इन सबसे हमको क्या मतलब? हमारी समस्या का समाधान हो गया। हमको खाने को मिल गया। हमें बनाना नहीं पड़ा। ये जो रेडिमेड चीजें खाने की आदतें बन रही हैं, ये लाभकारी नहीं हैं। संस्कृति के लिए भी लाभकारी नहीं हैं। लेकिन किसको कौन समझाए? कौन सुनाए?

पहले बहुत सारी चीजें घर में तैयार होती थीं। उससे आइटम भी अपने आप बन जाते थे। भरा-पूरा परिवार होता तो एक साथ में रसोई बनाने का हो जाता था। आज की संस्कृति में क्या हो रहा है? कोई एक बजे खा रहा है, कोई बारह बजे खा रहा है। खाने को आता है तो दो रोटी उतार ली और खा ली। पहले गैस नहीं थी। चूल्हा फूंकना पड़ता था। चूल्हा फूंकते थे तो धुआं व राख भी आंखों में चली जाती। आंखों में राख चली जाने से आखें लाल हो जाती थीं। आंखों में पानी आ जाता था। अत: उस समय एक साथ ही रसोई

कर लेते थे। खाने वाले टाइम पर खा लिया करते थे। अब कोई कभी खा रहा है, कोई कभी खा रहा है। आए, गैस ऑन किया, स्विच ऑन किया और दो रोटी तैयार कर खा ली।

घर में कितनी रोटियां बनी हुई मिलेंगी? म.सा. गोचरी के लिए आ सकते हैं इसलिए 4 रोटी कोई करके रख देता है। यदि ऐसा करते हैं तो यह दोष का कारण हो गया। यह निर्दोष नहीं है। कयवन्ना सेठ के जीव ने जैसा आहार बहराया, वैसा हो। सुपात्र दान की तीन शुद्धियां है। जो भी दिया जा रहा है, वह 106 दोषों में से किसी दोष से दूषित नहीं होना चाहिए। संक्षिप्त में कहें तो 42 दोषों में से किसी से दूषित नहीं होना चाहिए। निर्दोष होना चाहिए। निर्दोष बना हुआ होना चाहिए। न ज्यादा बना हुआ होना चाहिए और न जल्दी बना हुआ होना चाहिए। किसी प्रकार के दोष से दूषित नहीं होना चाहिए। द्रव्य रूप से दूषित नहीं होना चाहिए। भाव रूप से दूषित नहीं होना चाहिए। द्रव्य रूप से दूषित होना यानी सड़ गया हो, रस-चलित हो गया हो। भाव रूप से दूषित यानी कि साधु के लिए बनाया है। जल्दी बनाया है। चार रोटी बनाकर रख लेते हैं, म.सा. आ जाएंगे तो काम आ जाएगी, नहीं तो घर वालों के काम आ जाएगी। इसमें क्या हो जाएगा? (प्रतिध्वनि-भाव भिल-मिल गया) हां, भाव मिल जाएंगे। अत: भाव रूप से दोष लग जाएगा।

इस प्रकार का कोई दोष नहीं लगे, वैसा हमारा आहार होना चाहिए। वह कब होगा? जैसे पहले एक साथ घर में बन जाता तो घर में कभी भी संत-महात्मा आ जायें, वे सुलभता से प्रतिलाभित हो जाते थे। उस जमाने में सामूहिक परिवार में प्राय: बाल-बच्चे रहते ही थे। उन बच्चों के लिए दो-चार रोटी ज्यादा बनी हुई मिल ही जाती थी। बच्चे हैं, उनको कभी भी भूख लग जाए तो झट से रोटी दे दी। नहीं लगी भूख तो दूसरे दिन चाय-दूध के साथ खा लेते। दूध के साथ खा लेते कि नाश्ता नहीं बनाना पड़ेगा। एक पराठा, दो पराठा खा लिया और हो गया काम। आजकल लोग कहते हैं कि रात की रोटी कौन खाए! और कितने दिन के बासी बिस्किट खाते हो? लिखा हुआ रहता है ना उस पर? या आज का बना हुआ, आज ही मिल जाता है क्या? कितने दिनों पहले बना हुआ होता है? क्या लिखा हुआ होता है? (प्रतिध्वनि-6 महीने की एक्सपायरी डेट होती है) वह डेट दिखती है या नहीं दिखती है? वह डेट देखते हो या नहीं देखते हो? सच्ची-सच्ची बताना वह डेट देखते हो या नहीं देखते हो?

(प्रतिध्वनि-देखते हैं) अच्छा! चलो इसमें तो कई लोग जागरूक हैं।

यह बात तो है कि बिस्किट दिनांक देखकर खाते हैं। पर बिस्किट खा तो रहे हैं। आज डेयरी पर, बेकरी पर एक-दो नहीं कई प्रश्नचिह्न लगे हुए हैं। इससे उसका खाना कितना शुद्ध है? सबसे पहले विचार करो कि बिस्किट बनता किससे है? मैदा से बनता है। मैदा थोड़ा भी पुराना हो जाए तो उसमें बहुत जल्दी सफेद लटें पड़ जाती हैं। बिस्किट की घोल बनाएं तो? सारी लटें उसकी घोल में मिल जाती हैं। ये सारी आरंभ वाली चीजें हैं या कैसी चीजें हैं, सोचने की बात है!

धनतेरस को धन बढ़ाने की बात करते हैं किंतु संस्कार बढ़ाने की बात नहीं करते। धन बढ़ गया और कुंभकलश जैसा कलश मिल जाए, पर संस्कार सही नहीं होगा तो फिर वह क्या काम आएगा? नाच-कूद करके, उठाकर फोड़-फाड़ दोगे। ज्यादा लाभ आएगा नहीं। यदि हमारे सामने कोई चीज आए तो जीवन जीने का तरीका आना चाहिए। जीने के तरीके को सीखने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे धनतेरस सार्थक बन पाएगी।

हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि हमारे घर का चौका शुद्ध रहे। हमारे चौके में कोई भी किंतु-परंतु वाली चीजें प्रवेश नहीं करनी चाहिए। लाल और हरा निशान को भी ज्यादा विश्वास में मत लो। उसे भी तोला जाना चाहिए। इसमें भी गोलमाल है, गड़बड़ियां हैं। एक कोई किताब निकली हुई है। आपको देखना हो तो देख सकते हो, संतों के पास है। पहले भी देखी होगी। एक किताब है जिसका नाम मुझे याद नहीं आ रहा है। उसमें लिखा हुआ है कि आज लोग केमिकल के भरोसे हैं। हम यह नहीं पढ़ते हैं, मांसाहारी है या शाकाहारी है या क्या चीज है? हम यह नहीं देखते हैं किंतु केमिकल के नाम देखते हैं। अमुक-अमुक केमिकल से बनते हैं? मालूम करेंगे तो मालूम पड़ेगा कि उस पदार्थ में क्या चीज पड़ी हुई है? पता करेंगे तो उस खाद्य पदार्थ में पड़े हुए केमिकल के बारे में पता चलेगा कि उसमें क्या है? इसलिए चौका-चूल्हा शुद्ध रहेगा तो मति भी शुद्ध रहेगी। 'जैसा खाए अन्न, वैसा रहे मन।' हम ऐसा प्रयत्न करेंगे तो सच्चे मायने में धनतेरस के मौके पर धनतेरस की आराधना हो पाएगी और हम धनतेरस के आधार से अपने आत्म धन को सुरक्षित करने में समर्थ बनेंगे, धन्य बनेंगे।

महासती सुखदा श्री जी म.सा. और महासती वरदा श्री जी म.सा. के

आज कितने की तपस्या हो गई है? (प्रतिध्वनि-27 की तपस्या हो गई) 27 की तपस्या हो गई है। आप भले ही गुलाब जामुन खाओ, मावे की मिठाइयां खाओ। खा रहे हो, कुछ भी खा रहे हो। मावे की मिठाइयां ही खा रहे हो, किंतु ये कौनसी मिठाइयां खा रही हैं? जो सौभाग्यशाली होता है, उसको ये मिठाई मिलती है। हर किसी को मिल जाएगी क्या? जो तेले करेंगे वे कौनसी मिठाई खाएंगे? आध्यात्मिक मिठाई खाएंगे या मावे की मिठाई खाएंगे?

देख लो, आपको क्या करना। मावे की मिठाई खाना या आध्यात्मिक मिठाई खाना। यह तेले की मिठाई कब से शुरू हो रही है? 26, 27 और 28 तीन दिन है। 26 से शुरू हो रहा है। देख लेना, अपनी-अपनी शक्ति तौल लेना और कभी कोई ऐसा काम आ जाता है और अपने पास में पूंजी कम होती है तो इधर-उधर से करके वे चीजें खरीदने का मन हो जाता है। परिवार के लिए, व्यापार के लिए, विवाह-शादी आदि के लिए कर लेते हैं। यह समझ लो कि यह मौका आ गया है तो थोड़ी शक्ति और बटोर लेते हैं। हिम्मत होगी तो काम हो जाएगा। 'हिम्मत ए मर्दा, मददे खुदा' हिम्मत होगी तो मदद मिल ही जाएगी। जो हिम्मत करता है, वो खाता है। हिम्मत होती तो करते हैं। अत: अपनी बनाएं और जुड़ जाएं तप से। इतना ही कहते हुए विराम।

25 अक्टूबर, 2019

4

अपना रूप पिछावन

वीर जी रे चरण लागूं, वीरपणुं ते मांगू रे,
मिथ्या मोह तिमिर भय भाग्युं,
जीत नगारुं वाग्युं रे। वीर जी...
छउमत्थ वीर्य लेश्या संगे, अभिसंधिज मति अंगे रे
सूक्षम थूल क्रिया ने रंगे,
योगी थयो उमंगे रे। वीर जी...

वीर जी रे चरण लागूं, वीरपणुं ते मांगू रे। क्या मांगने से वीरता प्राप्त हो जाएगी? मांगने वाला कभी वीर बन जाए, बहुत कठिन है। किंतु कोई अपने अन्तर् को जगा ले और यह भावना संजो ले कि मुझे भी प्रभु भगवान जैसा वीर बनना है तो वह वीर बन सकता है। याचना हमारी आराधना का अंग नहीं है। याचना हमारी साधना, आराधना का अंग नहीं है।

हम याचक होंगे जरूर, किंतु हमारी याचना केवल शरीर के संपोषण के लिए है। संयम और आराधना के सहयोगी के रूप में है। हम भिक्षा की याचना करते हैं, मकान की याचना करते हैं, वस्त्र की याचना करते हैं किंतु आत्मिक भावों की याचना करना कि मुझे सुखी बना दो, मुझे वीर बना दो, हमारी आराधना का अंग नहीं है क्योंकि बहुत स्पष्ट है कि ये चीजें मांगने से नहीं मिला करती हैं। ये चीजें अपने पुरुषार्थ से प्राप्त होती हैं। इसलिए हमारे भीतर के पुरुषार्थ को जागृत करने की आवश्यकता है।

वैसे आज तेरस है किंतु घड़ियों के हिसाब से रूपचौदस के रूप में माने गये है। रूपचौदस को लोग नरक चतुर्दशी भी बोलते हैं। बहुत सारी किंवदंतियां चलती हैं। ऐसा हुआ होगा, वैसा हुआ होगा। हुआ या नहीं हुआ, यह निश्चय नहीं है। पर जो किंवदंतियां है उनके आधार पर आज रूपचौदस हो

गई। उनके आधार पर नरक चतुर्दशी नाम पड़ गया। किसी भी कारण से नाम पड़ा हो, उतना मुख्य नहीं है। मुख्य है कि उससे हम प्रेरणा क्या लें? इस चातुर्मास में हम परदेशी राजा की बात पहले सुने थे कि केशी श्रमण के माध्यम से वे आत्मदर्शन कर पाए - उन्होंने स्वरूप बोध को प्राप्त किया। उन्हें जीव, अजीव का बोध मिला। उस बोध के आधार पर वे आध्यात्मिक साधना में अग्रसर हो गए।

आचार्य पूज्य गुरुदेव मुनि अवस्था में हिंडौन, करौली की तरफ विचरण कर रहे थे। एक स्थान पर पहुंचे। शाम का समय था। ग्राम पंचायत का भवन था। एक भाई वहां मौजूद था। गुरुदेव ने कहा कि भाई, क्या हम यहां पर रुक सकते हैं? उसने कहा कि नहीं महाराज, नहीं रुक सकते। कहा, क्यों भाई, क्या बात है? उसने कहा कि मैं हरिजन हूं। आचार्य श्री ने कहा कि तुम हरिजन हो, इससे क्या लेना-देना? उसने कहा कि क्या हरिजन से अनुमति लेकर आप रुक सकते हैं? गुरुदेव ने कहा, हां रुक सकते हैं, तभी तुमसे अनुमति ले रहा हूं। संवाद चला, वार्ता चली फिर उसने अनुमति दी। उसने कहा कि क्या हम आपके चरण स्पर्श कर सकते हैं? तो आचार्यदेव ने फरमाया कि हम हमारे चरणों को स्पर्श करने के लिए कोई ऐसी बात नहीं कहते हैं कि तुम चरण स्पर्श करो। किंतु यदि कोई कर रहा है या कोई करता है तो उसे निषेध भी नहीं करते हैं।

उसने चरण स्पर्श किया। उसकी अभिमुखता देखी तो गुरुदेव ने कहा कि हम थोड़ी देर प्रतिक्रमण करेंगे। संध्या का कार्यक्रम करेंगे। उसके बाद आपकी इच्छा हो तो आप जिज्ञासाओं का समाधान ले सकते हो। रात्रि के समय प्रश्नोत्तरी, ज्ञान-ध्यान चर्चा के संदर्भ में उसने बताया कि महाराज मैं वैद्य हूं। मेरा काफी जैनियों के घरों में जाने का प्रसंग रहता है, किंतु आज जिस प्रकार की विडंबना बनी हुई है, छुआछूत की बातें चल रही है, उसे देखते हुए मैंने आपसे कह दिया कि आप नहीं रुक सकते हो। उसने आचार्य श्री का उद्‌बोधन सुना। उद्‌बोधन सुनने के बाद उसने कहा, मैं तो कोई खोटा खाना लेता नहीं हूं और न कोई मेरे में नशा-पत्ता है। हमने आपके प्रवचन सुने। मुझे बड़ा अच्छा लगा। मैं चाहता हूं कि आप इस क्षेत्र में विचरण करें। हमारे समाज के बहुत-से लोग यहां रहते हैं। बहुत-से समाज के लोग जिनके घर इधर हैं, उनमें खोटा खाना खाने का प्रचलन है। यदि आपका सहयोग मिल जाए तो

उद्धार हो जाए।

उस समय आचार्य श्री विचार करने लगे कि मैं इनको क्या आश्वासन दूं? उस समय वे मुनि अवस्था में थे। उनके मन में यह बात बैठ गई। उसका परिणाम रतलाम चातुर्मास के बाद बना। आचार्य श्री ने बलाई जाति के लोगों को उपदेश किया। उस समय सात सौ गांवों के लोग इकट्ठा थे। गुरुदेव ने जैसे ही उद्‌बोधन किया, आधा व्याख्यान हुआ होगा कि लोग खड़े हो गए और कहने लगे कि हमें हमारे ललाट पर काला तिलक नहीं रखना। हम खोटा खाना नहीं खाएंगे। शराब का उपयोग नहीं करेंगे। उपस्थित सारे लोगों ने प्रतिज्ञा ले ली, पच्चक्खाण ले लिए। यह आत्मदर्शन का रूप, आत्मबोध का रूप कब, किसमें, किस प्रकार से सजग हो जाता है, कहा नहीं जा सकता है।

गौतम स्वामी की बात हम सुनते आ रहे हैं। कल भी मैंने बोला था। बहुत क्रिया-कांड कर रहे थे, यज्ञ आदि करवा रहे थे। पांच-पांच सौ शिष्यों को आत्मा का बोध दे रहे थे, किंतु आत्मा के स्वरूप को लेकर स्वयं संशयशील थे। आज भी बहुत-से लोग अपने आपको आस्तिक मानते हैं, वे आत्मा को स्वीकार भी करते हैं किंतु आत्मा के विषय में उनका ज्ञान बहुत स्पष्ट नहीं है। आत्मा कहां रहती है? उसका स्वरूप क्या है? किस प्रकार से हमारे शरीर में वह विद्यमान रहती है? ऐसी बहुत सारी बातें उनके लिए प्रश्नवाचक चिह्न बनी रहती हैं। कई लोग उस ओर सोचते नहीं हैं। बस, है, तो है। कुछ लोग यह भय भी खाते हैं कि यदि हमने कुछ सोचा और हमारा कुछ चिंतन विपरीत चला गया, कुछ तर्क खड़े हो गए और उनका समाधान नहीं हुआ तो कहीं ऐसा न हो कि हम भगवान की आसातना करने वाले बन जाएं। हमारे मन में विपरीतता आ जाए। हम अज्ञानी बन जाएं, मिथ्यात्वी बन जाएं। इसलिए ज्यादा उस ओर गहराई में जाना नहीं चाहते हैं।

कई लोग मानते हैं कि केवल हृदय में आत्मा होती है। कुछ लोग अंगूठे के समान आत्मा का स्वरूप मानते हैं कि जितना अंगूठा है, उतना ही आत्मा का रूप है। ऐसी बहुत सारी कल्पनाएं, बहुत सारी विचारणाएं आज के युग में चल रही हैं। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि मनुष्य मरकर मनुष्य बनेगा। वह पशु नहीं बन सकता है। नरक में नहीं जा सकता। देव में नहीं जा सकता है। वे अपना बहुत बड़ा, सशक्त तर्क यह देते हैं कि जैसा बीज होता है, वैसा ही वृक्ष होता है, वैसा ही फल होता है। मनुष्य का बीज होगा तो मनुष्य ही होगा। मनुष्य के बीज

से पशु कैसे हो जाएगा? यह तर्क सशक्त भी लगता है किंतु यह तर्क सशक्त तभी तक लगता है जब तक हम ज्ञान के द्वार खोल नहीं लेते हैं। जब तक हमारे ज्ञान चक्षु उद्घाटित नहीं हो जाते हैं तब तक यह तर्क बड़ा सशक्त लगता है पर ज्ञान की आंखें खुलने के बाद ये बड़े ओछे और हलके हो जाते हैं।

यही तर्क हलके लगने लगते हैं। भगवान कहते हैं कि मनुष्य मरकर मनुष्य में नहीं जा रहे हैं। मनुष्य मरकर मनुष्य ही नहीं बन रहा है। जो जीव जहां का आयु बंध करता है, वहां जाता है। सारे कर्म बंध के कारण-हेतु राग और द्वेष हैं। बीज न मनुष्य है, न पशु है। बीज है राग और द्वेष। राग-द्वेष से जीव कर्म करता है। उन कर्मों के अनुसार वह जहां का आयुष बंध करता है, वहां जन्म लेता है। जब राग-द्वेष कर्मों के बीज रूप में स्वीकृत हो जाते हैं, मान्य हो जाते हैं तो फिर ये बात रह नहीं जाती है कि मनुष्य मरकर मनुष्य ही बनेगा और पशु मरकर पशु ही बनेगा।

दूसरा समाधान, भारत को आजाद हुए कितने वर्ष हो गए? लगभग 73 वर्ष हो गए। जिस समय भारत आजाद हुआ 1947 में, उस समय भारत की जनसंख्या कितनी थी? कितनी थी? लगभग 35 करोड़ और 73 साल में कितनी हो गई? तिगुनी हो गई है ना? (प्रतिध्वनि- 4 गुनी हो गई) हां, चार गुना हो गई। लगभग 140 करोड़ हो गई है। चार गुना हो गई है। मनुष्य मरकर मनुष्य बनेगा तो यह जनसंख्या कैसे बढ़ गई? यह संख्या बढ़ी कैसे? क्या यह मान लें कि पाकिस्तान के लोग भारत में आ गए या यह मान लें कि चीन के लोग भारत में आ गए? अच्छा यह बताओ कि 73 साल पहले जिन देशों की जितनी जनसंख्या थी, कहीं पर भी कमी आई क्या? यदि खूब विस्तार से नहीं बढ़ी तो भी बढ़ने की ओर है। घटने की ओर नहीं है। फिर मनुष्यों की संख्या में बढ़त कैसे हो गई? मनुष्य मरकर मनुष्य होते तो संख्या निश्चित होती। उसमें गड़बड़ नहीं होती। किंतु हम देख रहे हैं कि हमारे सामने 73 वर्षों में जनसंख्या कहां-से-कहां चली आई है।

यह बात, यह तर्क प्रत्यक्ष से भी विरोध में जाता है कि मनुष्य मरकर मनुष्य बनेगा। 2000 के दशक में लगभग 44 हजार करोड़ पशु-पक्षी काटे गए। आप विचार करो! 44 हजार करोड़ पशु-पक्षी काटे गए। उनकी संख्या हम गिने कहां से? सरकारी आंकड़ों से मालूम पड़ जाए तो वह अलग बात है किंतु स्पष्ट है कि मनुष्य ही मरकर मनुष्य नहीं होता है। पशु मरकर मनुष्य हो सकता

है और मनुष्य मरकर पशु हो सकता है। मनुष्य मरकर देव गति में जा सकता है। मनुष्य मरकर नरक गति में भी जा सकता है। यह बात बहुत स्पष्ट समझ में आ सकती है। यह आत्मज्ञान, आत्मबोध यदि प्राप्त हो जाता है तो रूपचौदस कहें, चाहे जो भी कहें, हमारे लिए लाभदायी हो सकती है।

माना ऐसा भी जाता है कि वर्षों पहले प्राग ज्योतिषपुर नाम का नगर था। जहां पर नरकासुर नाम का राजा राज कर रहा था। वह रूप का बड़ा लोभी था। जहां कहीं रूपवान स्त्री को देखता, उसको कैद कर लेता, अपने अधीन ले लेता। ऐसा कर-करके उसने 16 हजार युवतियों को कैद कर लिया। वह इन युवतियों के साथ शादी करना चाहता था। युवतियां उसके साथ शादी करने की इच्छुक नही थीं। किंतु बोले कौन?

पाप का घड़ा एक-न-एक रोज फूटता ही है। जब 16 हजार कुमारियों का अपहरण कर लिया गया, संग्रहण किया गया, जगह-जगह से हथिया ली गई तो जनता में आक्रोश फूटा। जनता बेबस थी। क्या करे? उसके वश में कुछ नहीं था। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। ऐसे में बहुत-से लोग एक साथ सत्यभामा के पास गए। उन्होंने अपने दुखड़े को सत्यभामा के सामने रखकर उससे विनती की। सत्यभामा ने कृष्ण वासुदेव से अपील की और कहा कि इन दुखियों का दु:ख दूर किया जाये।

उस समय कृष्ण वासुदेव ने नरकासुर पर चढ़ाई की, युद्ध किया, उसको समाप्त किया और उन 16 हजार कुमारियों को मुक्ति दिलाई। रूप की कुमारियां मुक्त हुईं। ऐसा बताया जाता है कि वह आज का ही दिन था, इसलिए आज के दिन को रूपचतुर्दशी कह दिया। ऐसी किंवदंती है। किंवदंती का अर्थ है कि ऐसा कथन प्रचलन में है। कौन-से आगम में है? कौन-से ग्रंथ में है? इसका अता-पता नहीं है। किन्हीं ग्रंथों में रहा होगा, किंतु आगमों में नहीं है। परदेशी राजा का कथन अवश्य मिलता है कि केशी श्रमण ने उनको आत्मा का बोध कराया। पर वह आज का ही दिन था, ऐसा कोई उल्लेख वहां पर नहीं है।

किसी भी प्रसंग से कुछ रहा हो, हमें प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। आत्मबोध को जागृत करने का हमारा लक्ष्य बनना चाहिए। ऐसा भी कथानकों में आता है कि भगवान महावीर के युग में हस्तीपाल सम्राट को भी आज के दिन आत्मबोध जगा। उनको 8 स्वप्न आए थे। उन स्वप्नों का प्रभु महावीर से

समाधान लिया और उनके भीतर आत्मबोध जगा। आगमों में यह उल्लेख भी नहीं मिलेगा। कथाभाग में जरूर आता है। कथाओं में जरूर बताया गया है कि भगवान महावीर के अंतिम समवसरण में 18 गणराज्यों के राजा लोग वहां मौजूद थे और बेले की तपस्या करके परिपूर्ण पौषध के साथ प्रभु महावीर की उपासना कर रहे थे। नवलच्छी नरेश, नवमल्ली नरेश। 18 गणराज्यों के राजा भगवान के चरणों में उपस्थित थे। भगवान महावीर ने 55 अध्ययन दु:खविपाक और 55 अध्ययन सुखविपाक के इस प्रकार से 110 अध्ययन विपाक सूत्र के कहे। विपाक सूत्र के कहने का अर्थ है कि जीव किस प्रकार से दु:ख पाता है और वह सुख की प्राप्ति कैसे करता है।

वर्तमान में हमारे सामने दु:खविपाक, सुखविपाक सूत्र हैं, जिसमें 10-10 अध्ययन हैं। उससे बहुत अच्छी तरह से समझा जा सकता है कि किन कारणों से जीव दु:ख को प्राप्त हुआ? दु:खविपाक उसका प्रमाण है। सुबाहु कुमार आदि राजकुमार किस प्रकार से सुख को प्राप्त हुए, पुण्य का उपार्जन किया, ये उल्लेख हमें सुखविपाक सूत्र में मिलता है। ऐसे 110 अध्ययन कहने के बाद 36 अध्ययन उत्तराध्ययन सूत्र के कहे और उत्तराध्ययन सूत्र की अंतिम गाथा में 'इह पाऊ करे' का उद्बोधन देकर, उपदेश देकर भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए।

आत्मबोध प्राप्त होता है अनादिकालीन मिथ्यात्व दूर होने से। अनादिकाल से हमारी आत्मा मिथ्यात्व में जकड़ी रही है। आत्मबोध प्राप्त हो गया तो बड़ी खुशी की बात है। यदि हमें कहीं भी आत्मा के विषय में संशय हो, डाउट हो, शंकाशील अवस्था रही हो, संदेह हो तो हमें उस संदेह से अपने आपको उपरत कर नि:शंक हो जाना चाहिए। सम्यक् दृष्टि के आठ आचारों में पहला आचार है 'निसंक्रिय' यानी शंका रहित होना। संशय रहित होना। जीव, अजीव के विषय में कोई संशय नहीं रहना, कोई शंका नहीं रहना।

यहां हमारी एक जिज्ञासा हो सकती है, एक प्रश्न हो सकता है कि भगवती सूत्र में जगह-जगह पर यह बात आई है कि गौतम स्वामी, इंद्रभूति गौतम, गणधर गौतम भगवान महावीर के पास पहुंचते हैं और उनसे प्रश्न करते हैं। जब शंका ही नहीं रह जाती है तो फिर गौतम स्वामी ने प्रश्न क्यों किए? जिज्ञासा और संशय दोनों में फर्क है। जिज्ञासा हमें आगे ले जाने वाली होती है। संशय हमें ठहराने वाला होता है। संशय वहीं पर हमको घुमाएगा। एक

कदम आगे, एक कदम पीछे। यदि हम इसका प्रैक्टिकल अनुभव करना चाहें तो किसी चौराहे पर पहुंचें। हम किसी रोड पर आगे बढ़ें। जैसे ही कदम आगे बढ़ने लगे हमारे मन में डाउट हुआ कि शायद यह रोड नहीं होनी चाहिए। दूसरी रोड होनी चाहिए। हम उसी सड़क पर आगे बढ़ेंगे या पीछे मुड़कर दूसरी तरफ जाएंगे? क्या करेंगे? (प्रतिध्वनि- पीछे मुड़कर दूसरी तरफ जाएंगे) जैसे ही दूसरी तरफ गए तो लगा कि नहीं-नहीं, ये रोड नहीं होनी चाहिए। दिशा के अनुसार यही रोड होनी चाहिए। फिर क्या होगा? फिर लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट। इधर से उधर, उधर से इधर। हमारे कदम चहलकदमी करने लगेंगे।

जब तक हम निर्णायक नहीं बनेंगे तब तक हमारे कदम आगे नहीं बढ़ेंगे। हो सकता है कि कोई आदमी मिल जाए, उससे पूछकर हम आगे बढ़ जाएं किंतु जब तक हमें डाउट होता है, संशय रहता है, संदेह रहता है, तब तक हम आगे नहीं बढ़ पाते हैं। वहीं पर चहलकदमी करते हैं। वहीं पर आगे-पीछे कदम बढ़ाते रहते हैं। आगे-पीछे कदम होते रहते हैं। यह हमारे मन की बात को भी स्पष्ट करता है कि यदि हमारे मन में डाउट है तो हम उसके इर्द-गिर्द ही घूमेंगे। आगे नहीं बढ़ पाएंगे। जिज्ञासा के साथ हमारे भीतर एक विश्वास होता है कि मुझे इसका समाधान मिलेगा। जैसे ही उसका समाधान मिलता है, हम उसको स्वीकार करते हैं। किंतु संशयशील अवस्था में व्यक्ति न पूछ पाता है और न कोई समाधान ले पाता है। उसमें कुछ अहंकार का भाव रह जाता है। मैं इतना बड़ा हूं, मैं इतना जानकार हूं। लोगों में मेरी इतनी छाप है। अब यदि मैंने पूछ लिया तो लोग कहेंगे कि अरे! इतना ज्ञानी, इतनी बड़ी बातें करने वाला स्वयं इतना अज्ञान में रह रहा है, स्वयं ऐसा प्रश्न पूछ रहा है। उस अहंकार के कारण व्यक्ति पूछ नहीं पाता है। व्यक्ति मुंह नहीं खोल पाता। मन में तो आता है कि पूछ लूं किंतु हिम्मत नहीं कर पाता है। वह अपने अहंकार के पर्दे को हटा नहीं पाता है। इस कारण वह दुविधा में बना रह जाता है। वह संशय में बना रह जाता है। वह संशय आत्मा के लिए घातक होता है।

नीतिकारों ने कहा है कि 'संशयात्मा विनश्यति' अर्थात् संशयशील आत्मा का विनाश होता है। वह आत्मा विकास की ओर नहीं बढ़ सकती किंतु जिज्ञासा और समाधान व्यक्ति का आत्मविकास, आध्यात्मिक विकास कराने वाला होता है और विकास कराने में सहयोगी बनता है। दूसरी बात, गौतम स्वामी को सारी जिज्ञासाएं बनी हों, ऐसा एकांत रूप से हम नहीं कह

सकते क्योंकि ऐसा माना जाता है कि तीर्थंकरों के द्वारा त्रिपदी यानी तीन पद 'उप्पेइवा विगईइवा धुवेइवा' दिए जाने पर जिनका ज्ञान 14 पूर्वों में परिणत हो जाता है, वे गणधर होते हैं। उनकी गणधर लब्धि होती है जिससे इन तीन पदों से वे सम्पूर्ण ज्ञाता बन जाते हैं। इन तीन पदों का सामान्य अर्थ यह है कि प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय उत्पन्न होता है। प्रत्येक पदार्थ विनाश को प्राप्त होता है। प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय स्थिर रहता है।

जब तीन पदों से ही सारा ज्ञान हो गया तो फिर क्या पूछना? और मान्यता ऐसी रही है कि गणधर, भगवान की वाणी के आधार पर द्वादशांगी की रचना करते हैं। 12 अंग जो मूलभूत हैं, उस ज्ञान की रचना गणधरों के द्वारा की जाती है। जो रचना की जाती है, वह सर्व सुगमता के लिए है। कुछ कहानी के साथ में कहना हो जाता है। कुछ तत्त्व का ज्ञान होता है तो उसे अपने उत्तर की शैली में दे दिया जाता है। जैसे आज भी कई लेखक ये विचार करते हैं कि आज के युग की मांग कैसी है? लोग किससे जल्दी समझ सकते हैं? वैसे ही गणधर भगवान की बुद्धि में जैसा आया, उन्होंने वैसी रचना की तो इन शास्त्रों की रचना भी उसी का ही एक अंग है। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि हर बात भगवान से जाकर गौतम स्वामी ने चर्चा की हो।

दूसरी बात हो सकती है कि उन्होंने पूछा भी हो तो उसमें भी ऐसा नहीं है कि क्यों पूछा गया? गणधरों का ज्ञान भी क्षायोपशमिक ज्ञान होता है। मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन: पर्यव ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान हैं। अपूर्ण ज्ञान हैं। जब तक अपूर्ण ज्ञान रहता है, तब तक कोई भी संशय हो सकता है। निवारण के लिए उन्होंने सबसे उत्तम उपाय सोचा कि तीर्थंकर भगवान से निर्णय किया जाए ताकि उनके क्षायिक ज्ञान की, केवलज्ञान की मुद्रा लग जाएगी, छाप लग जाएगी कि भगवान ने ये समाधान दिया है। हर किसी को विश्वास करने में सुविधा होगी। बहुत-से लोगों के मन में विश्वास पैदा करने के लिए और बहुत-से लोगों के मन के संशयों को दूर करने के लिए भी गौतम स्वामी के द्वारा ये प्रश्न पूछे हुए हो सकते हैं।

जो कुछ भी रहा हो पर इतना निश्चित है कि गणधर गौतम स्वामी ने यदि प्रश्न पूछे हैं तो ये उनके जीवन की बहुत बड़ी विशेषता है और हमारे लिए प्रेरणाप्रद है कि वे अपने ज्ञान के मद में चूर नहीं रहे कि मैं इतना ज्ञानी हो गया। मैं पूछूं तो लोग क्या कहेंगे कि गौतम पूछ रहा है भगवान से? इसकी बुद्धि कैसी

है कि ये ऐसे छोटे-छोटे प्रश्न भी उनकी समझ में नहीं आ रहे हैं। निश्चित रूप से जब हमारा अहंकार गलता है तब हमारे भीतर जिज्ञासा पैदा होती है। अहंकार के साथ होने पर जिज्ञासा संशय का रूप ले लेगी। जब जिज्ञासा के लिए व्यक्ति मुंह खोलता है तो वह अपने अहंकार को नमाने वाला होता है।

हम देखते हैं कि प्रत्येक प्रश्न के पहले गौतम स्वामी 'तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं' करते हैं। भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करते हैं। वंदन-नमस्कार करते हुए कहते हैं कि भगवान, ये प्रश्न ऐसा है, जिसका समाधान ऐसा है? भगवान कहते हैं कि 'इणट्ठे, समट्ठे' कि हां गौतम, जैसा तुम कह रहे हो वैसा ही है। भगवान यदि कहते हैं कि तुम जो कह रहे हो, वह ठीक नहीं है, इसका समाधान इस प्रकार है और उससे गौतम स्वामी पूर्णतया समाहित नहीं होते तो पुन: पृच्छा करते हैं- 'केणट्ठेणं भंते!' भगवान ये कैसे? भगवान उसका समाधान देते हैं कि इस कारण से ये ऐसा है। पुन: भगवान को वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं। यह अपने अहंकार को गलाने का एक रूप है और अपने भीतर के आत्मदर्शन को प्रकट करने का एक माध्यम है। हम इसको समझें या नहीं समझें। 'जे नमे, ते गमे' जो नमता है, वह पाता है और जो नहीं नमेगा, वह प्राप्त नहीं कर पाएगा। बिना नमे आत्मबोध भी नहीं हो पाएगा। नमना तो पड़ेगा ही।

बहुत सारी जीवनियां, कथाएं हमें दर्शाती हैं, हमें बोध कराती हैं कि आत्मज्ञानी विकट परिस्थितियों में भी डांवांडोल नहीं होते। बहुत सारी जीवनियों को आप देखें, चाहे कामदेव श्रावक हो, चाहे सेठ सुदर्शन हो, चाहे अरणक श्रावक हो या गजसुकुमाल मुनि हो। कठिनाइयों के क्षणों में सभी अडोल रहे, अप्रकंप रहे। बाहुबलि जी कितने समय तक खड़े रहे? कितने महीनों तक खड़े रहे? (प्रतिध्वनि- 12 महीनों तक) थोड़ा-सा अहंकार बाधक बना हुआ था। वह अहंकार हटा तो केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

बंधुओ, हम विचार करें। पर्व के दिन हमें कौन-सी प्रेरणा देते हैं? आप सभी पुण्यवान् हैं कि बाहर की चकाचौंध से हटकर धर्मस्थान पर उपस्थित हैं अन्यथा कोई पटाखे छोड़ने में रहेगा, कोई कुछ देखने में रहेगा, कोई कुछ देखने में। कुछ नहीं हो तो टी.वी. और मोबाइल पर गेम भी चलते रहेंगे। वहां की झांकियां देखते रहेंगे। हमारे भीतर धर्म भाव, अध्यात्म का भाव हमें प्रेरित करने वाला बना। हमें प्रेरित किया और हमें धर्मस्थान में लाकर छोड़

दिया। धर्मस्थान में लाकर बिठा दिया और हम सुन रहे हैं। भले ही ये बातें हमने हर साल सुनी होंगी, फिर भी हम इनसे प्रेरित होते हैं। हमें इनसे प्रेरणा मिलती है। इन सब स्वरूपों से हम प्रेरित होते हुए अपनी आत्मा को, अपने आत्मस्वरूप को, अपने आत्मबोध को जाग्रत करने का लक्ष्य बनावें। आत्मा के अस्तित्व की खोज करें। अपने स्वरूप की खोज करें और अनुभव करें कि मेरा स्वरूप कैसा है?

अभी बलाई जाति की बात हुई थी। कभी इस जाति के लोगों के हाथ में हिंसक शस्त्र हुआ करते थे। उन लोगों ने आचार्य पूज्य गुरुदेव के उपदेश को सुना। उसके बाद लगभग साढ़े तीन महीने तक गुरुदेव का उस एरिया में विचरण हुआ। उस समय तक गुरुदेव के मुखारविंद से साढ़े 17 हजार लोगों ने मांस, मछली, अंडा, शराब के पच्चक्खाण किए। एक व्यक्ति को त्याग कराने में भी कितना लाभ होता है? गुरुदेव ने परीषहों का विचार नहीं किया, कठिनाइयों का विचार नहीं किया, गोचरी-पानी की दिक्कत का विचार नहीं किया। कभी एक साधु को, कभी दो साधु को साथ लेकर उन क्षेत्रों में विचरण करते थे। बाकी साधुओं को बड़े क्षेत्रों में रोक देते कि तुम अपना अध्ययन करो और अनेक परीषहों को उठाते हुए आचार्य गुरुदेव ने उन लोगों को धर्म से अभिभूत किया। उन लोगों को धर्म के अभिमुख किया। लगभग साढ़े 17 हजार लोग उस समय तक प्रतिज्ञा से संपन्न हुए।

उस समय साथ में रहने वाले श्री कंवरचंद जी म.सा. ने उन सबकी सूची बनायी जो त्याग, पच्चक्खाण ले रहे थे, सम्यक्त्व ले रहे थे। उनके नाम लिखने में उनकी ज्यादा रुचि और तत्परता रहती थी। उनका काम बड़े सिस्टमेटिक ढंग का काम था। उनके प्रयत्न के आधार पर हम जान पाए कि साढ़े 17 हजार लोगों ने उस समय मांस, मदिरा, अंडा, शराब के पच्चक्खाण किए।

अभी आचार्य पूज्य गुरुदेव का अनन्य महोत्सव, जन्म शताब्दी वर्ष चल रहा है। संघ ने जो कुछ बिंदु हाथ में लिए हैं, उसमें एक बिंदु यह भी है कि सौ लोगों को, सौ कसाइयों को कत्लखाने से मुक्त कराना। उस दिशा में कई भाई प्रयत्नशील हैं। कइयों ने कसाइयों को समझाइश दी है। उन्होंने उस धंधे को छोड़ा भी है। हम भी कुछ अपने आप में प्रेरणा लें कि हमारे ज्ञान का परिणाम भी सही रूप में आवे? हमारी आत्मा का कल्याण करे। हमारा चिंतन, मनन इस पर भी होना चाहिए, विचार होना चाहिए कि जिस समाज में हम रह रहे हैं,

जिस धर्म के झंडे को लेकर चल रहे हैं, उसके उत्थान के लिए, उसके अभ्युत्थान के लिए, उसमें ऊंचाइयों के लिए हम क्या कर सकते हैं? क्या योगदान दे सकते हैं? इस पर हमारे से जैसा भी बन पड़े, जो भी बन पड़े, वह करें। ऐसा नहीं है कि हम जबरदस्ती कुछ करें किंतु कुछ-न-कुछ तो व्यक्ति कर ही सकता है।

पूरा मकान बनाने का सामर्थ्य नहीं भी हो तो एक ईंट लगाने की हिम्मत तो हो ही सकती है। एक ईंट तो लगाई ही जा सकती है। संघ विकास में हमारे ज्ञान का उपयोग, हमारी शक्ति का उपयोग, हमारे विचारों का उपयोग करते हुए हम अनेक लोगों को रूप दर्शन, आत्मदर्शन की दिशा में प्रेरित करेंगे तो अपने आपको लाभान्वित करेंगे और धन्य बना पाएंगे। पर्व प्रवचन या पर्वों के दिन को सम्यक् प्रकार से आराधित कर पाएंगे। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

26 अक्टूबर, 2019

5

मोह रात बने मोह जीत रात

पुराण के अंतर्गत दुर्गा सप्तशती में तीन रात्रियों का वर्णन आया है। कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि। जिसमें होलिका का दहन होता है, उसको काल रात्रि कहा गया है। दूसरी रात्रि, महारात्रि को शिवरात्रि भी कहा जाता है। तीसरी रात्रि, मोहरात्रि कही गई है। दीपावली को मोहरात्रि कहा गया है। मोह को जगाने वाली, मोह को बढ़ाने वाली रात को मोहरात्रि माना गया है। बहुत सारे लोग मोह से मुग्ध बन जाते हैं और सत्य धर्म की पहचान नहीं कर पाते हैं। अज्ञान उनके सिर पर आरूढ़ होता है और वे अज्ञान में डूबे रहते हैं।

महालक्ष्मी जी से पूछा गया कि इतने सारे वाहन हैं पर आपने उल्लू का ही चयन क्यों किया? महालक्ष्मी जी ने कहा कि जो मुझे सिर पर बिठा लेता है, उसकी बुद्धि उल्लू के समान हो जाती है। वह प्रकाशद्रष्टा नहीं रह पाता। अंधकार उसे बड़ा प्रिय लगता है। अंधकार में ही उसकी रुचि होती है। वह प्रकाश पाना नहीं चाहेगा। हम विचार करें तो यह हकीकत है कि मोह में पागल बना हुआ व्यक्ति ज्ञान प्रकाश की अपेक्षा नहीं करता है। उसके लिए तो 'पइसो म्हारो परमेश्वर, लुगाई म्हारी गुरु, छोरा-छोरी सालगराम, सेवा यारी करूं' ही आराध्य है, वही पूज्य है, वही उसका संसार है। वही उसकी जिंदगी है। वही उसका जीवन है। वह उसी में जन्मा और उसी में मरेगा। वह अपना उद्धार नहीं कर पाएगा।

प्रभु महावीर का निर्वाण मोहरात्रि में हुआ। घड़ियों की अपेक्षा से इस बार अलग-अलग हो गया। उन्होंने मोह पर विजय प्राप्त की। उन्होंने इनसान को ये संदेश दिया कि तुम्हारे भीतर क्षमता है, तुम्हारे भीतर सामर्थ्य है कि तुम मोह रात को, मोह जीत रात भी बना सकते हो। मोह पर विजय प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारे भीतर शक्ति भरी हुई है। बस, तुम अपनी शक्ति को पहचान नहीं पा रहे हो। तुम मोह के दास बनकर, मोह के गुलाम बनकर गर्वित हो रहे हो कि मैं

ऊंचाइयों को प्राप्त किए हुए हूं।

हम बादशाह के युग में चलें। अनेक राजाओं को उन्होंने गुलाम बनाया और ऊंचे ओहदों पर बिठा दिया। वे राजा गर्वित होते हैं कि हम इतने ऊंचे ओहदे पर हैं। बादशाह ने हमको इतना ऊंचा ओहदा दिया है। हमारा इतना सम्मान किया है। भले ही वे अपने आप में स्वयं को सम्मानित समझें, किंतु हैं तो गुलाम ही। उनको गर्व हो रहा है, उनको लग रहा है कि हम बहुत सम्मानित हो रहे हैं, बादशाह हमारा सम्मान कर रहे हैं। बादशाह तुम्हारा सम्मान नहीं कर रहे हैं। बादशाह अपनी कोड़ियां खेल रहे हैं। अपनी गोटियां चला रहे हैं। अपने स्वार्थ का पोषण कर रहे हैं। वे जान रहे हैं कि इसको सत्ता दूंगा, इसको ओहदा दूंगा तो ये मेरा बना रह जाएगा, मेरा गुलाम बना रह जाएगा। जैसे पुरुष की नसबंदी कर दी जाती है, वैसे ही ये तुम्हारी वीरता की नसबंदी किए हुए है। तुम्हारी वीरता उनके अंकुश में है। उनके अधीन है। उनसे अनुमति मिलने पर ही तुम्हारी वीरता कारगर हो सकती है अन्यथा तुम्हें नपुंसक बनकर उन्हीं के अधीन रहना पड़ेगा।

जैसे वहां ओहदे प्राप्त करके वे गर्वित होते हैं वैसे ही मोह के चंगुल में फंसे हुए जीव को मोह द्वारा कई प्रकार के ओहदे प्राप्त होते रहते हैं। वे और गर्वित हो जाते हैं कि हमारी बातें हो रही हैं। हम ऐसे हैं, हम वैसे हैं, हम इतने बड़े हैं। किंतु हकीकत में मोह के गुलाम हैं। अपने स्वयं के नाथ नहीं बन पाए हैं।

लक्ष्मी जी कहां ठहरती हैं? लक्ष्मी जी कहां रहती हैं? इसकी बहुत बड़ी व्याख्या है। पुराणों में व्याख्या की गई है। नीतिकारों ने उसकी व्याख्या की है। लोग लक्ष्मी पूजा करते हैं लेकिन लक्ष्मी पूजने से नहीं आती हैं। उलटे तुम ऐसा कार्य करो कि लक्ष्मी तुम्हारी पूजा करे। कार्य उलटा हो रहा है। लक्ष्मी तुम्हारी पूजा करने वाली होनी चाहिए किंतु तुम लक्ष्मी की पूजा करने वाले बन गए। तीर्थंकर देवों के चरणों में लक्ष्मी लोट-पोट हो रही है। देव इंद्र, वे उनके चरणों में नत हैं। चक्रवर्ती सम्राट, वे उनके चरणों में नत हैं। बड़े-बड़े राजा, सेठ-साहूकार उनके चरणों में नत हैं। जिसके चरणों में त्याग होता है, लक्ष्मी वहां नत होती है। नैतिकता जहां होती है, वहां लक्ष्मी अपना वास करती है। लक्ष्मी कहती है कि जहां रोज मार-काट होती है, जिस घर में रोज लड़ाई-झगड़े, क्लेश होते रहते हैं, मैं वहां पर नहीं रहती। वह घर मुझे नहीं सुहाता। जहां पिता-पुत्र परस्पर विवाद करते रहते हैं, पुत्र, पिता का विनय नहीं करता, पत्नी, पति से उखड़ी-उखड़ी रहती है, पतिव्रता धर्म का पालन नहीं करती, ऐसे घर मुझे नहीं सुहाते।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते', अर्थात् जहां नारियों की पूजा होती है, जहां पुरुषों के प्रति नारियों का सम्मान होता है, ऐसे घरों का मैं चयन करती हूं और बिना बुलाए वहां पहुंच जाती हूं। 'सत मत छोड़ो हे नरां! लिछमी चौगुन होय' सत्य यदि तुम्हारे साथ रहेगा, ईमान तुम्हारे साथ रहेगा तो लक्ष्मी दौड़ी-दौड़ी आएगी। तुमने यदि सत्य को छोड़ दिया और लक्ष्मी को बांधकर रखना चाहते हो तो वह आने वाली नहीं है।

आप स्वयं विचार करें कि क्या पूजा करने से लक्ष्मी आ जाएगी? अब तक लक्ष्मी आई या नहीं आई, मैं नहीं कह सकता हूं किंतु पूजा करने वालों ने अपने गांठ के पैसे जरूर खर्च कर दिए। अगरबत्ती के पैसे दिए, दीये के पैसे दिए, तेल के पैसे दिए, घी के पैसे दिए। एक तसवीर खरीदी लक्ष्मी जी की, उसमें भी पैसा लगा। लाभ कितना होगा, कब होगा, नहीं कह सकते हैं।

पूजा करने से यदि लक्ष्मी आती तो भारत की गरीबी कभी दूर हो गई होती। किंतु आज तक भारत की गरीबी का रोना छूटा नहीं है। इससे भली-भांति जाना जा सकता है कि पूजा करने से लक्ष्मी नहीं आती हैं। परिश्रम करने से आती हैं। हम पुरुषार्थ करेंगे, परिश्रम करेंगे, सत्य और ईमान को बरकरार रखेंगे तो लक्ष्मी को बुलाना नहीं पड़ेगा। लक्ष्मी को आमंत्रण नहीं देना पड़ेगा। लक्ष्मी हमें प्राप्त हो जाएगी। जिस समय आदमी लक्ष्मी की चाहना करता है, उस समय लक्ष्मी उससे दूर रहती है किंतु जब उसको सत्य की प्राप्ति हो जाती है, उस समय लक्ष्मी आना चाहती है पर व्यक्ति को लक्ष्मी की चाहना नहीं रहती। जो सत्य और ईमान में रहने वाला होता है, उसको लक्ष्मी से कोई मतलब नहीं होता। रहे तो तुम्हारी मरजी और नहीं रहे तो तुम्हारी मरजी है। मुझे कोई आकांक्षा नहीं है, कोई अपेक्षा नहीं है। जब तक व्यक्ति लक्ष्मी की अपेक्षा लेकर चलता है, लक्ष्मी उससे दूर-दूर भागती है।

छाया को पकड़ने के लिए दौड़ो तो छाया भागती रहेगी और छाया की तरफ पीठ कर दो तो छाया हमारे पीछे-पीछे आने वाली हो जाएगी। इसलिए सच्चे मायने में यदि हम सत्य को स्वीकार करते हैं, धर्म को स्वीकार करते हैं, ईमान को स्वीकार करते हैं, नैतिकता और प्रामाणिकता को जीवन में स्थान देते हैं तो फिर हमें लक्ष्मी की कोई आकांक्षा नहीं रहेगी। कोई अपेक्षा नहीं रहेगी क्योंकि हमें वैसे ही तृप्ति मिल जाएगी और तृप्ति ही जीवन का आधार है। तृप्ति जीवन का एक अंग है। इसलिए हमें वैसा प्रयत्न करना चाहिए।

हस्तीपाल सम्राट के स्वप्न का अर्थ प्रभु वीर ने बताया। उन अर्थों को जानकर हस्तीपाल सम्राट की मोह नींद खुल गई। मोहरात्रि से वे बाहर आ गए। उन्होंने मोह पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने साधु जीवन स्वीकार किया। कर्मों के तारों को काटा और निर्वाण को प्राप्त किया। जो मोह को जीतेगा, वह मोक्ष को पाएगा। जो मोह में उलझा रहेगा, वह मोक्ष को भूलेगा। मोक्ष उसकी आंखों के सामने नजर नहीं आएगा। इसलिए हम मोह को जीतने वाले बनें और मोक्ष को स्वीकार करने वाले बनें। ऐसा हमारा पुरुषार्थ होगा तो हम मोह की रात को, मोह को जीतने वाला दिवस बना लेंगे। ये मोहरात्रि महारात्रि के रूप में बदल जाएगी। ऐसा हमारा प्रयत्न होगा तो हम धन्य बनेंगे।

नवदीक्षिता महासती सुखदा श्री जी म.सा. और महासती वरदा श्री जी म.सा. के आज कितने की तपस्या है? (प्रतिध्वनि- 29 की) 29 की तपस्या है। और भी संत-महासतियां तपस्या के क्षेत्र में गतिशील हैं। समय पर ज्ञात हो पाएगा कि क्या स्थिति उनकी है? कई तेले की तपस्या है, कई इसके ऊपर की तपस्या है। जैसे-जैसे उनका अपना-अपना अध्यवसाय, अपना-अपना विचार, अपनी-अपनी शक्ति है, उसके अनुसार वे लगे हुए हैं। हम भी अपना पुरुषार्थ करें। प्रभु महावीर के निर्वाण दिवस के रूप में वह दिवस कल आने वाला है। उनकी भी हम प्रतीक्षा करते हैं। किस प्रकार से दिवस को हम आराधते हैं और कैसे प्रभु महावीर के निकटवर्ती बनते हैं, इस ओर हमारा चिंतन बने, हमारा मनन बने। महावीर से दूरी अब बनी नहीं रहनी चाहिए। अब उनकी समीपता हमें प्राप्त करनी है। वह समीपता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बनें।

कल पक्खी भी है और चातुर्मास की अंतिम पक्खी है। उसके बाद आपको पक्खी मिलने वाली नहीं है।

इतना ही कहते हुए विराम।

27 अक्टूबर, 2019

6

मैं महावीर की दिशा में

वीर जी रे चरण लागूं,
वीरपणुं ते मांगू रे,
मिथ्या मोह तिमिर भय भाग्युं,
जीत नगारुं वाग्युं रे - वीर... ।। 1 ।।

'वीर जी रे चरण लागूं, वीरपणुं ते मांगू रे।' हम विचार करें कि परमात्मा प्रभु महावीर ने वीरता कैसे प्रकट की? इस सम्बंध में एक सूत्र मिलता है, 'एस वीरे पसंसिये जे बद्धे पडिमोसए।' अर्थात् जो बद्ध आत्माओं को मुक्त करता है या कराता है, वह वीर है। किससे बंधी हुई है आत्मा? आत्मा किसी रस्सी से बंधी हुई नहीं है। वह डोरी से बंधी हुई नहीं है। वह सांकल से भी बंधी हुई नहीं है। फिर भी उनका बंधन बहुत संगीन है, बहुत जटिल है।

'मिथ्या मोह तिमिर भय भाग्युं' यानी मिथ्या, मोह, तिमिर-अज्ञान और भय से हमारी चेतना बंधी हुई है। मिथ्यात्व हमारी आत्मा पर प्रभावी हो जाता है। मोह हमारी आत्मा पर प्रभावी हो जाता है। उसने हमको बांध रखा है। उसने अपने लपेटे में हमको ले रखा है। हम उसके बंधन को नहीं जान रहे होते हैं किंतु बहुत गहरा बंधन उसका बंधा हुआ है। उस बंधन को तोड़ना है, उस बंधन को काटना है। उस बंधन को तोड़ने में जो समर्थ हो जाता है, जो काटने में कुशल हो जाता है, वह वीर बन जाता है। वीर बनने में कोई रुकावट नहीं है। हर कोई वीर बन सकता है। उसके भीतर वीरता जगनी चाहिए। जब वीरता जगती है, शौर्य जागृत होता है तो वह अपने मोह, अपने मिथ्यात्व और अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न करता है। अज्ञान को हम जल्दी से नहीं पहचानते हैं कि वह क्या है? सच्चा ज्ञान प्राप्त होने से पहले जितना भी ज्ञान प्राप्त है, सारा अज्ञान है। सच्चे ज्ञान की पहचान है- 'मैं कौन हूं' का उत्तर मिल जाना।

श्रीमद् आचारांग सूत्र का यह ज्ञान, यह बोध कि 'मैं कौन हूं और कहां से आया हूं' जब हमें हो जाएगा तो हमारा ज्ञान सच्चा होगा। हमने दुनिया की पहचान तो की पर स्वयं अपने आप से अनजान बने रह गए तो हमने कितना भी ज्ञान इकट्ठा कर लिया, वह सम्यक् ज्ञान नहीं होगा। वह सही ज्ञान नहीं होगा। वह कहीं-न-कहीं हमारे मोक्ष के लिए बाधक बना रहेगा।

भगवान महावीर ने मिथ्यात्व को हटाया, मोह को हटाया। हम कह सकते हैं कि भगवान महावीर ने भी तो मोह का बंधन रखा कि जब तक माता-पिता रहेंगे, मैं दीक्षित नहीं होऊंगा। माता-पिता के काल कवलित होने के बाद जब दीक्षा के लिए तैयार हुए तो भाई ने कह दिया कि अभी दो साल तो तुम्हें रुकना पड़ेगा। भगवान रुक भी गए। हम यह बात भी कह सकते हैं कि माता-पिता के रहते हुए संतान को उनकी सेवा, चाकरी करनी चाहिए। उसके बाद वह दीक्षा ले ले। भगवान महावीर अपनी स्थिति को जानते थे। वे ज्ञानी थे। उनको जन्म से अवधि ज्ञान प्राप्त था किंतु ये बताइए कि भगवान महावीर ने माता-पिता के रहते हुए उनकी संतानों को दीक्षा दी या नहीं दी?

मेघ कुमार का नाम सुना होगा! कौन था मेघ कुमार? मेघ कुमार एक राजकुमार था। उनके पिता थे, मगध सम्राट श्रेणिक। मगध सम्राट श्रेणिक और धारिणी माता के रहते भी भगवान ने मेघ कुमार को दीक्षा दी या नहीं दी? अरिष्टनेमि भगवान ने कृष्ण वासुदेव के कितने राजकुमारों को, कितने पोतों को, कितने पड़पोतों को दीक्षित किया? इसलिए ये कोई तथ्य नहीं है कि माता-पिता के होते हुए संतान को दीक्षा नहीं लेनी चाहिए। दूसरी बात क्या भरोसा कि माता-पिता पहले मरेंगे या संतान! किसी के पास निर्णायक कथन है? हमारे पास निर्णायक कथन है? प्रामाणिक जानकारी है कि हम माता-पिता से पहले मृत्यु को प्राप्त नहीं करेंगे। बहुत बार देखते हैं कि बड़े-बुजुर्ग बने रह जाते हैं और बेटे, पोते चले जाते हैं। एक्सीडेंट हो गया कि खत्म। गिरे, चोट लगी और खत्म। अचानक हार्ट अटैक हो गया कि खत्म। किडनी फेल हो गई कि खत्म। कुछ भी पता नहीं पड़ता है क्योंकि आयु का बंध कितने समय का हुआ है, हम नहीं जानते। हम नहीं जानते कि हम कितने वर्षों तक जीयेंगे।

भगवान महावीर का फाइनल था कि वे साढ़े बहत्तर वर्षों तक जीयेंगे। उनका फाइनल था। हमारा फाइनल है क्या? (प्रतिध्वनि- फाइनल नहीं है) कुछ तो होगा फाइनल? भगवान महावीर ने कितने लोगों को दीक्षित किया?

'चौदह हजार संत, तार दिया भगवंत।'

14 हजार संत और 36 हजार साध्वियों को उन्होंने दीक्षित किया। दीक्षा में यह नहीं कि केवल परायों की दीक्षा होना। उनकी बेटी ने दीक्षा ली तो उनको भी दीक्षा दी। उनके जंवाई ने दीक्षा ली, उसको भी दीक्षा दी गई क्योंकि वे सभी का कल्याण चाहते थे। सभी का उद्धार चाहते थे। आज भी ऐसे श्रावक मिलेंगे, ऐसे श्रावक हैं जो संतान को बोलते हैं कि तुमको क्या करना है, तुम सोच लो। तुम अपना निर्णय मुझे बताओ। तुम दीक्षा लेना चाहते हो या संसार में रहना चाहते हो? मैं कई बार कहता हूं कि श्रावक को इसी रास्ते पर चलना चाहिए। उसको संतान को बताना चाहिए कि बेटा, ये रास्ता सही है। तुम यदि इस रास्ते पर बढ़ सको तो सबसे उत्तम मार्ग है। यदि इस मार्ग पर तुम नहीं बढ़ पाते हो तो फिर तो जो काम हमको करना है, वह काम हम करेंगे। हम नहीं बढ़ पा रहे हैं, यह हमारे लिए....। किन शब्दों का प्रयोग करूं कि हमारे लिए क्या है?

हम कीचड़ में धंसे हुए हैं। हम मोह में फंसे हुए हैं। हम साधु जीवन स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं किंतु यदि तुम्हारी भावना बन रही है तो अवश्यमेव तुमको आगे बढ़ना चाहिए। बहुत से लोग ऐसा भी कहते हैं कि नहीं, घर बैठ जाओ चुपचाप। साधु वगैरह बनने का नाम भी मत लेना। एक बात ध्यान में ले लेना कि ऐसा करने वाले अहित नहीं हित ही कर रहे हैं क्योंकि जो जितना रोकता है उतनी ही भावनाएं प्रबल होती हैं। यदि कोई कहता है कि देख लो, तुम्हारा निर्णय तुमको करना है। तुम्हें दीक्षा लेनी है तो मेरी मनाही नहीं है और नहीं लेनी है तो भी मेरी कोई जबरदस्ती नहीं है कि तुम दीक्षा लो। तुम अपना निर्णय करो। वहां पर सोचना पड़ता है, विचार करना पड़ता है कि मैं क्या निर्णय करूं? उसके लिए कठिनाई सामने आ जाती है कि वह क्या निर्णय करे? होना यही चाहिए कि उसको फील्ड में छोड़ देना चाहिए। ये मैदान है, इसको देखो। सरदी, गरमी आदि जो परीषह हैं उनका अनुभव करो। यदि वह कच्चा होगा तो चुपचाप आकर बैठ जाएगा और मन दृढ़ होगा तो आगे बढ़ जाएगा।

श्रावक किसी को आगे बढ़ाने का लक्ष्य रखता है या उसे पीछे हटाने का! सोच-समझकर बोलना। हाथ लंबा-लंबा जोड़ने से काम नहीं चलता है। सबसे बड़ी दुविधा तब खड़ी होती है जब कोई घर से तैयार होता है। बाकी तो हम कहते ही हैं कि-

दीक्षा आप लीजिए, औरों को दिलवाइए,

जो भी लेते होवे दीक्षा, उनका साथ दीजिए।

सबसे बड़ा बिंदु है कि दीक्षा आप लीजिए। यदि आप नहीं ले सकते तो दूसरा कोई लेने को तैयार हो तो उसका सदा सपोर्ट करना है। कहना है कि मेरी तरफ से रुकावट नहीं है। मैं क्यों किसी को रुकावट दूं। पहले मैंने पता नहीं कितने अंतराय कर्म बांधे, कितनी रुकावटें दी कि आज मेरे मन में दीक्षा का भाव नहीं जग रहा है। दीक्षा का भाव जग भी रहा है तो पांव इतने कीचड़ में धंसे हुए हैं कि बाहर निकालना चाहने पर भी वहां से निकलते ही नहीं हैं।

कल आपने हस्तीपाल राजा के सपने का एक अर्थ सुना था कि हाथी कीचड़ में धंस गया। वह उसमें से निकल नहीं पा रहा है। क्यों नहीं निकल रहा है? हो सकता है कि वैसी उसकी शक्ति काम नहीं कर रही हो। वैसे ही संसार में फंस जाने के बाद उसमें से निकल पाना बहुत कठिन होता है। बहुत ही कठिन होता है। सोचना और सपने देखना आसान होता है। लगता है कि ले लूंगा किंतु जब लेने लगता है तो कितनी ही कठिनाइयां सामने आ जाती हैं - जमीन, जायदाद, दुकान, घर, धन, दौलत। इस जमीन को दूसरों के नाम कनवर्ट (ट्रांसफर) कराओ। इस दुकान को दूसरों के नाम करो। ये करो, वो करो। क्या-क्या झमेले नहीं होते। कोई आज चाहे तो आज ही दीक्षा ले सकता है क्या? (प्रतिध्वनि - नहीं) उसको कितना समय लगाना पड़ जाएगा? कागजी कार्यवाहियां और वह भी सरकारी कागजी कार्यवाही कितने दिनों तक चलती रहती है? कितने दिनों तक कागज आगे से आगे चलते रहते हैं? कितना समय लग जाता है?

इतना आसान नहीं होता है कि आज जिसकी भावना बन जाए वह आज ही दीक्षा ले ले। हां, जो अभी संसार में नहीं फंसा है, उसके लिए रुकावट नहीं है, कम है। वह चाहे तो ले सकता है। एक झटका लगता है और वह अपने आपको अलग कर सकता है। भगवान महावीर कहते हैं कि 'एस वीरे पसंसिये...', वह वीर प्रशंसित है, उस वीर की प्रशंसा करनी चाहिए जो बंधी हुई आत्मा को मुक्त कराने वाला बनता है। जो मिथ्यात्व, मोह, अज्ञान में पड़ी हुई आत्मा को सही ज्ञान देने वाला बनता है। जो सही ज्ञान देने वाला होता है, वह वस्तुत: वीर है।

हम अपनी संतान को वही सही रास्ता दे सकते हैं कि बेटा, सही रास्ता यही है, तुम इस रास्ते पर चल सकते हो तो चलो। कौन-सा रास्ता सही है?

कौन-सा रास्ता सही है? (धीमी आवाज में प्रतिध्वनि- संयम का) अरे! जोर से बोलो। (प्रतिध्वनि- संयम का) किसको-किसको अच्छा लग रहा है? अब चर्चा ठप क्यों होने लग गई भाई? देखे लो अब सब चुप हो गए।

मैंने जब पूछा कि किसको-किसको अच्छा लग रहा है, तो सब चुप हो गए। हकीकत तो हकीकत ही रहेगी। हमें सुहाये या नहीं सुहाये, सत्य सदा सत्य ही रहेगा। हकीकत सदा हकीकत ही रहेगी। संयम का पथ सबसे उत्तम पथ है। पर उस उत्तम पथ पर चलना भी आना चाहिए। हमने उत्तम पथ पर कदम बढ़ा दिया और चलना नहीं आता हो तो...। नेशनल हाई-वे और दूसरा क्या होता है? जी.टी. रोड। चार, छः, आठ लाइनें बन गईं। कौन-सी लाइन पर चलें और कौन-सी पर नहीं चलें, आदमी कन्फ्यूज हो जाए। भारत में कई जगहों पर आठ लेन के रोड भी हैं। अब आदमी सोच में पड़ जाये कि इस लाइन पर चलूं या दूसरी लाइन पर चलूं? कौन-सी वाली लाइन पर चलूं? यदि उसे नहीं मालूम है तो वह धक्का खाने वाला बन जाएगा। अत: उस पर भी उसको चलने की तरकीब आनी चाहिए।

वैसे ही साधु को चलने, बोलने, खाने आदि का तरीका आना चाहिए। वह तरीका आ गया तो उससे सुखद और कोई रास्ता नहीं है। यदि चलना नहीं आता है तो संसार में और साधु जीवन में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। यदि साधु जीवन के रास्ते पर चलना नहीं आता है तो खाली पोशाक बदलने से उस रास्ते पर चलना नहीं होगा। जब तक भीतर की वृत्तियां नहीं बदलेंगी, जब तक हमारे अंतर्भाव परिवर्तित नहीं होंगे, तब तक उस रास्ते पर हम सही रूप में नहीं चल पाएंगे।

भगवान महावीर ने कहा है कि हमें उसी पथ पर, उसी डगर पर अपने आपको आगे बढ़ाना चाहिए। कोई दीक्षा ले या नहीं ले, यह उसकी मरजी है। हमारा कहना यही हो, श्रावक का कहना यही हो कि बेटा, देख लो। हमने उसको रास्ता बता दिया कि ये दोनों रास्ते हैं। तुम कौन-सा रास्ता चयन करना चाहते हो, कौन-सा रास्ता चूज करना चाहते हो, तुम्हारे पर निर्भर है। तुम इसका निर्णय करो। वह दीक्षा लेने को तैयार न हो सका तो उसकी शादी कर दी। उसकी इच्छा से उसकी शादी कर दी और खुदा-न-खास्ता जीवन में कठिनाई आ गई तो आपको दोष नहीं दे सकेगा कि पापा आपने पहले नहीं बताया। पहले मालूम होता कि झंझट है तो मैं क्यों शादी करता? गृहस्थ जीवन अच्छा भी चल

सकता है और किसी दिन कठिनाई भी खड़ी हो सकती है। उस समय क्या करना पड़ता है? समझना पड़ता है और समझाना भी पड़ता है। उस समय यदि नहीं समझे तो किसको समझना पड़ता है? (प्रतिध्वनि- हमको) हमको? अरे वाह! इतने समझदार बन गए! फिर तो कहना ही क्या है। फिर तो दु:खी होने का कोई कारण ही नहीं है। फिर तो मस्ती ही मस्ती छायी रहनी चाहिए।

कठिनाइयां तो हर जीवन में आएंगी। कठिनाइयों से मुंह मोड़ने पर कभी भी आदमी सफल नहीं हो सकता। कठिनाइयों का मुकाबला करना पड़ेगा। कठिनाइयों के साइड से अपना मार्ग बनाना पड़ेगा। पर्वत से नहीं टकराना है। चट्टान से नहीं टकराना है किंतु साइड से रास्ता निकलता है तो रास्ता निकालकर आगे बढ़ जाना है। किसी को हार्ट की तकलीफ है तो डॉक्टर सीधा हार्ट पर अटैक नहीं करता है। वह बाइपास करता है। बाइपास करता है ना? (प्रतिध्वनि- हां) वह बाइपास करता है ताकि खून की सर्कुलेशन चलती रहे। वैसे ही मैं अपनी गति को बाइपास बना लूं। क्यों मैं उस कठिनाई से जाकर टकराऊं? क्यों उससे माथा भिड़ाऊं? मैं गति करना चाहता हूं। मुझे सही रास्ते की ओर आगे बढ़ना है। जिसके कदम आगे नहीं बढ़ते हैं, जिसके कदम एक जगह खड़े रहते हैं, वह मंजिल को कैसे पाएगा? भय के कारण यदि कोई आगे कदम नहीं बढ़ाए तो मंजिल नहीं पाएगा। मंजिल को पाने के लिए उसे निर्भय होना पड़ेगा और आने वाली समस्याओं को मैनेज करना पड़ेगा। जो मैनेज करने का तरीका जान लेता है, उसके लिए कोई मार्ग कठिन नहीं होता।

भगवान महावीर ने मिथ्यात्व को हटाया, मोह को दूर किया, भय को भगाया और निर्भय बन गए। 'कोई कुल्हाड़ी से काटे, कोई फूल बरसावे।' किसी ने भले कितना भी उपसर्ग दिया, कितना भी कष्ट दिया, पांव से रौंद दिया किंतु भगवान महावीर को कोई शिकायत नहीं। भगवान महावीर ने प्रतिज्ञा ली कि मेरे साथ कोई कैसा भी बर्ताव करेगा, मैं उसको सहूंगा। मैं उसका प्रतिकार नहीं करूंगा। मैं क्षमा धारण करूंगा। मैं शिकायत नहीं करूंगा कि तुम मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रहे हो? कैसी भी कठिनाइयां आ जाएं, मैं उनसे कभी पीछे नहीं हटूंगा, उससे कभी भी मुंह नहीं मोडूंगा। मैं पीछे कदम नहीं हटाऊंगा। भगवान महावीर अपनी प्रतिज्ञाओं पर चलते रहे, आगे बढ़ते रहे।

एक छोटी-सी प्रतिज्ञा हमारे जीवन में आ जाए तो मैं सोचता हूं कि वह हमारे जीवन का सारा ढांचा बदल सकती है। कौन-सी छोटी-सी प्रतिज्ञा?

यह प्रतिज्ञा कि मैं किसी की प्रतिक्रिया नहीं करूंगा, मैं किसी की शिकायत नहीं करूंगा। हो सकता है क्या ऐसा कि किसी की प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। न खाने की प्रतिक्रिया, न पहनने की प्रतिक्रिया, न बोलने की प्रतिक्रिया कि तुमने ऐसा क्यों बोल दिया, तुमने वैसा क्यों बोल दिया? मुझे किसी प्रकार की कोई प्रतिक्रिया नहीं करनी है। मैं किसी के प्रति कोई शिकायत मेरे मन में पैदा नहीं होने दूंगा। एक बार प्रयोग करके देख लो। 'हाथ कंगन को आरसी क्या' देख लो कि इससे क्या लाभ होता है? अपने आप मालूम पड़ जाएगा कि ये दो चीजें, ये दो सूत्र हमारे जीवन में कितना बदलाव लाने वाले हो सकते हैं? मैं जहां तक सोचता हूं जीवन की सारी टेंशन, सारे तनाव इन दो सूत्रों से हट जाएंगे। कोई तनाव नहीं रहेगा। तनाव कहां से पैदा होगा? कोई प्रतिक्रिया हो तो तनाव पैदा होता है। कोई शिकायत होती है तो तनाव पैदा होता है। तनाव की जड़ को ही हटा दिया फिर तो क्या कहना?

प्रभु महावीर के अंतिम समवसरण का दृश्य है- 18 गणराज्य के राजा नवलच्छी नरेश नवमल्ली! 18 गणराज्यों के राजा तीर्थंकर देव की आज्ञा का पालन करने वाले थे। 'नवलच्छी नवमल्ली नरेश, पालन करे तेरा उपदेश' किसके उपदेश का पालन कर रहे थे? (प्रतिध्वनि- तीर्थंकर देवों के उपदेश का पालन) वे राजा, वे सम्राट प्रभु की आज्ञा की परिपालना करने वाले थे। यह बहुत बड़ी बात है कि अनीति, अन्याय का प्रतिकार करने वाले सम्राट श्रावकत्व को स्वीकार करके चलें।

आज लोग श्रावक व्रत लेने में हिचकिचाते हैं। डरते हैं कि कहीं दोष नहीं लग जाए, व्रत टूट गया तो? ऐसा ही डर है तो शादी क्यों की भाई? शादी नहीं टूट सकती है क्या? तलाक देने की नौबत नहीं आ सकती है? ऐसा होता है क्या कि मैं तो शादी करूंगा ही नहीं। क्योंकि कहीं तलाक देने की नौबत आ गई तो? यहां पर जो भी कुंवारे हैं, सबको सौगंध करवा दूं कि इस रास्ते पर जाना ही नहीं है? आप कहोगे कि नहीं-नहीं अभी मन नहीं मान रहा है। अभी मन तैयार नहीं है। थोडा देख लेते हैं। देख लेते हैं महाराज कि भांग का नशा कैसा रहता है?

लोग शादी के लिए आगे आ जाते हैं और तलाक के लिए भी तैयार हो जाते हैं। वहां पर विचार नहीं करते हैं कि शादी करेंगे और कल तोड़नी पड़ गई तो? मकान बनाऊंगा और कल गिर जाएगा तो? भूकंप आते हैं या नहीं आते हैं? भूकंप आते हैं तो पता नहीं कौन-से भूकंप में हमारा मकान गिर जाए, ढह

जाए? छोड़ो, मैं यदि मकान में रहूंगा तो खतरा रहेगा। सिर पर गिर गया तो! अत: मैं मकान में नहीं रहता।

गाडोलिया लोहार होते हैं ना? वे किसमें रहते हैं? हम भी उसी प्रकार तंबू में रहेंगे। पर वह तंबू भी कैसे लगाएंगे? तंबू लगाने के बाद वह भी गिर गया तो माथा फोड़ देगा। तंबू नहीं, फिर तो खुले आकाश में ही ठीक है। लेकिन खुले आकाश में भी बादल फट गए तो क्या करोगे? ऐसा भय खाने वाला आदमी कहीं जी सके, यह मुश्किल है। वह नहीं जी सकेगा। रहने के लिए उसे रिस्क लेनी पड़ती है। रिस्क लेनी पड़ेगी या नहीं? साधु बनोगे तो भी रिस्क लेनी होगी और गृहस्थी में जाओगे तो भी रिस्क लेनी होगी। पर श्रावकों के व्रत को स्वीकार करने में रिस्क नहीं लेंगे। वहां रिस्क लेना ही नहीं है। यदि रिस्क लेने के लिए तैयार हैं तो फिर श्रावक व्रत स्वीकार क्यों नहीं करते? क्यों नहीं श्रावक के 12 व्रत स्वीकार किए जाएं?

कितने लोग हैं जो पूरे 12 व्रत स्वीकार किए हुए हैं? कोई नहीं है क्या? कितने लोगों के हाथ खड़े हैं? पांच व्रतधारी साधुओं का मिलना तो फिर भी आसान है किंतु 12 व्रतधारी श्रावकों का मिलना मुश्किल है। छ: पौषध करने वाले कितने हैं? महीने में छ: पौषध करने वाले कितने हैं? जोधपुर में कितने श्रावक हैं छ: पौषध करने वाले? नेमसा, कितने लोग हैं? आप हँस रहे हो। हँसने से काम थोड़ी ना चलेगा।

यहां आकर बुद्धि अटक जाती है। बुद्धि किधर चली जाती है? समझ में नहीं आता। आपको समझ में आता होगा, पर मुझे समझ में नहीं आता। मुझे लगता है कि यहां आकर हमारी बुद्धि थोड़ी अटक जाती है कि नहीं-नहीं। हमने जाना नहीं। समझा नहीं कि 12 व्रतों में है क्या चीज? यदि जानो, समझो तो रुकावट जैसी कोई बात नहीं है किंतु हम देखना ही नहीं चाहते। जानना ही नहीं चाहते। हम सुनना ही नहीं चाहते तो फिर उसे स्वीकार करने की बात कहां से पैदा हो? भगवान द्वारा निरूपित श्रावक धर्म की पालना करने वाले नवलक्षी, नवमल्ली नरेश उस समय मौजूद थे। उनके साथ और भी लोग मौजूद थे। वे बेले का तप किये हुए थे। भगवान महावीर का अंतिम समवसरण चल रहा था। ऐसे समय ही प्रभु महावीर गणधर गौतम से कहते हैं कि इंद्रभूति गौतम, तुम्हें देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देना है। इंद्रभूति गौतम कहते हैं, 'तहत्ति' और रवाना। उन्होंने एक बार भी ऐसा नहीं कहा कि कैसे जाऊं? खड़े हो जाना, तहत्ति कह

देना किंतु कदम आगे नहीं बढ़ाना। ऐसा होता है या नहीं होता है? कैसे जाऊं? भगवान का अंतिम समवसरण है। प्रतिबोध ही देना है तो बाद में दे दूंगा। किंतु ऐसा कुछ नहीं। जैसे ही प्रभु ने फरमाया, वे चल पड़े। यही तो बड़ी बात है। लोग कहते हैं कि आज मोक्ष क्यों नहीं है? फूटे भाग हों तो मोक्ष होगा कहां से? पांव तो उठते नहीं हैं। गौतम स्वामी के कदम उठे तो मोक्ष मिला ना। उनके कदम नहीं उठे होते तो मोक्ष मिलता क्या? क्या हो गया? उन्होंने एक बार भी नानुकुर नहीं की। तहत्ति बोले और चल दिये। कहना बहुत आसान है किंतु दिल प्रकंपित हो जाता है कि कैसे उन्होंने कदम बढ़ाए होंगे? वे भी जान रहे थे कि भगवान का अंतिम समवसरण है। उनके लिए तो, आज्ञा ही धर्म है।

'आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया' अर्थात् गुरु की आज्ञा अविचारणीय होती है। कुछ विचार करने की जरूरत नहीं रहती है। गौतम भी एकदम से चल पड़े। शक्रेंद्र खड़ा रहता है भगवान के पास और कहता है कि भगवान आपकी राशि पर भस्म ग्रह लगा हुआ है। इसलिए आप आयुष को थोड़ी-सी आगे खिसका लो, आयुष को बढ़ा लो तो जिनशासन की भव्य प्रभावना होगी, जिनशासन की उदय-उदय पूजा होगी, उदित रहेगा। भगवान कहते हैं कि शक्र, यह तुम्हारा शासन प्रेम है। तुम शासन के प्रति अनुरागी हो इसलिए यह बात कह रहे हो किंतु ध्यान में लो कि जितने भी तीर्थंकर हुए हैं भूतकाल में, वे अपनी आयुष को बढ़ाने में समर्थ नहीं हुए। वर्तमान में जितने हैं वे समर्थ नहीं हो सकते और भविष्य में भी जो तीर्थंकर होंगे, वे भी अपने आयुष के क्षणों को बढ़ाने में समर्थ नहीं होंगे।

एक तीर्थंकर की ताकत कितनी होती है? उनकी शक्ति कितनी होती है? उनका शारीरिक बल कितना होता है? मालूम है क्या कि कितना होता है?

ये पूरा लोक, ये चौदह रज्जु प्रमाण को एक गेंद बना लें और उस गेंद को एक टीला लगा दें, एक धक्का लगा दें तो यह चौदह रज्जु प्रमाण, लोक अलोक में कहां जाकर गिरेगा कोई पता नहीं पड़ेगा। इतनी ताकत किसमें है? इतनी ताकत तीर्थंकर देवों में है। किंतु वे भी अपने आयुष के क्षण को बढ़ाने में समर्थ नहीं हैं। आयुष का एक क्षण बढ़ाना उनके भी वश की बात नहीं है।

अंततोगत्वा प्रभु महावीर के 110 अध्ययन सूत्र विपाक अध्याय के, उत्तराध्ययन सूत्र के 36 अध्याय सहज में ही उनके बेले का तप हो गया। इस प्रकार से धर्म देशना देते हुए उन्होंने पद्मासन स्वीकार किया। फिर योग-निरोध

प्रतिक्रिया चालू हुई। स्थूल काया को रोका, स्थूल मन वचन को रोका। सूक्ष्म काया को रोका, सूक्ष्म मन वचन को रोका और शुक्ल ध्यान के पायों से अपने आप में आत्मा को घनीभूत कर सारे कर्मों को क्षय करके जैसे फली में से बीज छूटता है, दाना उछलता है वैसे ही शरीर में से सर्वांग रूपेण उनकी आत्मा निकलकर पूर्व प्रयोग से एक समय में लोकांत पर पहुंच गई। वे सदा-सदा के लिए सिद्ध हो गए, बुद्ध हो गए। उन्होंने परिनिर्वाण को प्राप्त कर लिया, निर्वाण को प्राप्त कर लिया। जहां से पुनरागमन नहीं है, जहां जाने के बाद लौटकर नहीं आया जाता, उस स्थान को उन्होंने प्राप्त कर लिया। पुनः-पुनः जन्म-मरण की सारी प्रक्रियाओं को खत्म कर दिया और जनरव में यह आवाज फैली कि भगवान महावीर का निर्वाण हो गया तो कहा जाता है कि इंद्रभूति गौतम जो देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए गए, उनके मन में विचार हुआ कि भगवान मुझे छोड़कर पधार गये। उसके संबंध में गीत की पंक्तियां भी हैं-

गौतम प्रभु! मन विचलित जी ओ प्राणेश्वर जी,
ओ प्राणेश्वर जी।
क्यों किया मुझको दूर बालाजी।
प्रतिबोधन गया विप्र को ओ प्राणेश्वर जी,
ओ प्राणेश्वर जी।
अस्त हुआ जग नूर बालाजी। गौतम प्रभु...

गौतम स्वामी के बारे में अलग-अलग बहुत सारी बातें हमको मिलती हैं। हकीकत क्या है हम नहीं जानते। कोई कहते हैं कि वे रुदन करने लगे, भगवान को उपालंभ देने लगे। कवि अपनी कल्पनाएं कुछ भी कर लेते हैं। हो सकता है कुछ भी हो, किंतु उनकी अंतर्भावना जागृत हुई और विचार करने लगे कि क्या मैं वहां रह जाता तो भगवान मुक्त नहीं होते? यह तो हम सोच रहे हैं किंतु गौतम का क्या विचार हुआ, वह हमको पता नहीं है। पर इतना स्पष्ट है कि उनकी अंतर्भावना जागृत हुई। उनके भीतर उल्लास जगा, उत्साह जगा कि मुझे प्रभु से दूर नहीं रहना है। उन्हीं उल्लास भावों में वे क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होते हैं। सबसे पहले उन्होंने मोह कर्म को दूर किया। मोह कर्म को दूर करके अन्य घाती कर्मों का एक साथ क्षय किया। उनकी आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन से आलोकित हो जाती है। वे भी केवली बन जाते हैं। भगवान का निर्वाण नहीं हुआ उससे पहले लोग जाप किया करते थे।

महावीर स्वामी केवलज्ञानी गौतम स्वामी चउनाणी,
महावीर स्वामी केवलज्ञानी गौतम स्वामी चउनाणी।

और भगवान के निर्वाणोपरान्त कहते हैं :-

महावीर पहुंचे निर्वाण, गौतम स्वामी केवलज्ञान।
महावीर पहुंचे निर्वाण, गौतम स्वामी केवलज्ञान।

'अस्त हुआ जग नूर।' जग का नूर अस्त हो गया। प्रभु निर्वाण को प्राप्त हो गए। जैसे ही प्रभु निर्वाण को प्राप्त हुए कि अंधेरा, भाव अंधेरा हो गया। पर देवताओं के आने से द्रव्य प्रकाश व्याप्त हो गया। लोगों ने भी दीप जला दिए और दीपावली मनाना शुरू कर दिया। क्या हुआ, कैसे हुआ? पता नहीं। यह तो कहानी है, कथा है, जो कही जाती है।

उस समय साधकों की तीक्ष्ण दृष्टि में अलग नजारा नजर आया। उन्होंने देखा कि इतने सारे कुंथवे पैदा हो गए। इनकी रक्षा होना दुष्कर है। अत: पीछे रहने वाले साधुओं को विचार आया कि ये पांचवें आरे की झलक हमें चौथे आरे में ही नजर आने लग गई है। अब संयम की पूर्ण शुद्ध आराधना करना बहुत कठिन है। इतने छोटे-छोटे कुंथवे, जो चले तो मालूम पड़े कि ये जीव हैं और नहीं चले तो मालूम ही नहीं पड़े कि ये भी जीव हैं। हमने कई बार पुस्तकों में देखा होगा कि एकदम बारीक-बारीक जीव होते हैं, जो चले तो मालूम पड़े कि ये जीव हैं। पता नहीं इस मिट्टी में कहां-कहां ऐसे कुंथवे पैदा हुए होंगे? कितने कुंथवे रहे होंगे? उस समय बहुत से संतों ने संथारा संलेखना स्वीकार कर लिया और उन्होंने भी प्रभु की दिशा में अपने कदम आगे बढ़ा लिए, किंतु सभी वैसा कर सकें यह संभव नहीं था। लेकिन उनकी समझ में यह तो आ गया कि आने वाले समय में संयम की राह कठिन होगी।

'जयं भुजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई', 'जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे, जयं सुवे' यतना ही अब हमारे हाथ में हैं। यतना का सूत्र हम हाथ में लेकर चलें। उसी से हम जीवों की यतना कर सकते हैं। हमारे वश में जितना है, हम उतनी यतना कर पाएंगे। उसी यतना से पंचम आरे में भी हम संयम की आराधना करने में समर्थ बनेंगे। भगवान महावीर ने कहा है कि 21 हजार वर्ष तक मेरा शासन गतिशील रहेगा। अंतिम समय में 'एक भवावतारी' साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका भी होंगे। जब उस समय 'एक भवावतारी' हो सकते हैं तो आज भी हम पुरुषार्थ करें तो क्या अपने भवों को सीमित नहीं कर सकते?

हम अपने भवों को घटा नहीं सकते? अवश्य घटा सकते हैं। किंतु हम अपने मन में इतने कमजोर हो जाते हैं और सोचने लगते हैं कि अब पांचवें आरे में कैसा संयम पलना है? जितना पल जाए वही अच्छा है। ऐसे कमजोर मन वाले एक भवावतारी कैसे बन पायेंगे?

पूज्य श्री जयमल जी म.सा. के लिए बताया जाता है कि वे एक भवावतारी हैं। पूज्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा. के लिए भी छंद में ऐसा बताया गया है कि आचार्य पूज्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा. आउष्टम विमान में गए। उसके बाद में महाविदेह में जन्म लेंगे। वहाँ वे बलराम पदवी प्राप्त करेंगे तत्पश्चात् साधु बनकर मोक्ष में जाएंगे। वे भी मुक्ति को प्राप्त करेंगे। ऐसी बात उस छंद में बतायी है। ग्रंथों में ऐसी बात मिल रही है जैसा कि सुना जाता है। बताया जा रहा है कि 'सिद्धपाहुड' ग्रंथ में ऐसा है। अभी उस ग्रंथ को पढ़ा नहीं है, केवल सुना है। कभी ग्रंथ देखेंगे, पढ़ेंगे तो मालूम पड़ेगा। कुछ भी हो, यदि वे महापुरुष एक भवावतारी होते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि उन्होंने अपने आपको बहुत सीमित कर लिया था, बहुत ही सीमित कर लिया था। जग के बीच में, दुनिया के बीच में, जय-जयकारों के बीच में उनकी अंतश्चेतना नहीं थी - अपने हाल में रहकर ज्ञान-ध्यान, साधना-तप आदि करना व शास्त्र लिखना एवं शास्त्र लिखकर संतों को उनकी प्रतियां भेंट करना। 13 द्रव्य से ज्यादा लगाना नहीं। एक चद्दर से काम चलना। ऐसा भी बताया जाता है कि दो हजार नमोत्थुणं का जाप करते थे। कहीं दो सौ नमोत्थुणं का भी कथन आता है।

'पूज्य मन्नालाल जी म.सा. स्मृति ग्रंथ' में दो हजार नमोत्थुणं का कथन आता है और 'आचार्य पूज्य श्री श्रीलाल जी म.सा. के जीवन चारित्र' में दो सौ नमोत्थुणं का कथन है। अब दो हजार में बिंदी ज्यादा लगी या दो सौ में बिंदी कम हो गई! दो हजार से बिंदी हट गई! जो भी हो, कितना भी हो, आत्मा में रमण करने, आत्म परिणति में जीने वाले, दुनिया से बहुत दूर रहने वाले महात्मा 'एकभवावतारी' बनें तो कोई बड़ी बात नहीं है, कोई आश्चर्य की बात नहीं है, कोई उत्सुकता की बात नहीं है, कोई असंभव बात नहीं है। हमें ये प्रेरणा मिलती है कि हम भी यदि वैसा जीवन अपना बना सकते हैं तो मुक्ति का वरण करने में समर्थ हो सकते हैं। इसके लिए जिस श्रद्धा, जिस उल्लास, जिस उमंग से साधु जीवन स्वीकार किया है, उसी के अनुसार पालना करेंगे तो उन क्षणों को

उपलब्ध हो पाएंगे। यदि नहीं बना सकते हैं तो बात अलग है।

मैं ये बातें बोलता ही चला गया। अब याद आया कि महासतियां जी के आज मासखमण की तपस्या है। जिस समय व्याख्यान चालू किया, उस समय याद था कि तपस्या के विषय में बोलना है। भगवान महावीर पर चर्चा होने लगी। अब याद आया कि महासतियों के मास-मासखमण भी हैं। अभी कितना ये करेंगे, क्या करेंगे, यह उन पर निर्भर है किंतु आज मासखमण के रथ पर बैठ रही हैं।

(सभा में बैठे एक श्रावक हर्ष-हर्ष, जय-जय बोलते हैं।)

कौन बोले? अरे भाई! हर्ष-हर्ष का कोई रिजल्ट तो होना ही चाहिए। उसका कोई रिजल्ट तो आना चाहिए कि कुछ त्याग-पच्चक्खाण हम भी लें। रूखे-रूखे हर्ष-हर्ष क्या करना? महासती सुखदा श्रीजी म.सा. और वरदा श्रीजी म.सा. ने जब तपस्या चालू की तो मैंने कहा कि कितना करना है? तो कहा कि आपको जितना कराना है करा दो। मैंने कहा, कितना करना है? चातुर्मास के दिन भी नजदीक आ गए। 'हिम्मते मर्दा तो मददे खुदा' व्यक्ति अपनी हिम्मत को जगाता है तो कहते हैं कि खुदा भी उसका साथ देने वाला हो जाता है। भगवान सहयोग में आते हैं या नहीं आते हैं पर उनका मनोबल अपने साथ खड़ा हो जाता है। आज मासखमण के रथ पर वे महासतीवर्यायें आरूढ़ हो रही हैं।

तपस्या के लिए भगवान का एक कथन है कि जो भी तपस्या की जाए, एकमात्र कर्मों की निर्जरा की भावना से होनी चाहिए। कोई दूसरा उद्देश्य नहीं, कोई दूसरा लक्ष्य नहीं हो। जितना सहज रूप में तपस्या हो सकती है, सहज रूप में करनी है। आराम से करें, समाधि से करें, शांति से करें और कर्मों की निर्जरा की भावना से करें। प्रभु निर्वाण के प्रसंग से उनका मासखमण भी पूरा हो रहा है। बहुत से संत और सतियां जी तेले की तपस्या करके चल रहे हैं। उपाध्याय श्री जी के 6 की तपस्या हो रही है। विदेहमुनि जी म.सा. के 14 की तपस्या हो गई है। महासती छवियशा जी म.सा. के 7 की तपस्या है और लवियशा जी म.सा. के आज 4 की तपस्या है। और भी बहुत-सी महासतियों के तेले की तपस्याएं हैं।

बहुत सारे प्रसंग हैं और ये मंगल भाव हैं। इन मंगल भावों के साथ हम प्रभु महावीर के निर्वाण महोत्सव की आराधना कर रहे हैं। हम प्रेरणा लें। हो सके तो हम भी प्रभु महावीर की दिशा में गतिशील बनें और अपने मोह को, अपने

मिथ्यात्व को, अपने अज्ञान को दूर करने का लक्ष्य बनावें। हमारे मोह-मिथ्या का परदा हटेगा तो हमको एकदम सही-सही चीजें नजर आने लग जाएंगी। आलमारी का कपाट बंद है तो कुछ भी नहीं दिखता है। कांच का दरवाजा है तो हमको भीतर दिखता है किंतु चीज को हम निकाल नहीं पाते हैं। और दरवाजा खुला है तो...

तो सारी चीज हस्तगत कर सकते हैं। वैसे ही हम मिथ्यात्व के दरवाजे को खोलें, अज्ञान के परदे को हटावें और सम्यक् ज्ञान की सहायता से, सम्यक् ज्ञान के माध्यम से आत्मा का बोध करें।

जिन महासतियों ने दीक्षा ली उनकी दीक्षा पर्याय बहुत छोटी है किंतु मनोबल दृढ़ है। 'मन के जीते जीत है और मन के हारे हार।' तपस्या, साधु जीवन और कोई भी शुभ कार्य, अच्छे कार्य का निर्णय मन से लिया जाता है। मनोबल से कार्य होता है। सही कार्य मनोबल से ही संपन्न होते हैं। आज जो मासखमण हो रहा है वह भी मनोबल से हो रहा है। मासखमण के रथ पर ये आरूढ़ हैं। आगे क्या स्थिति रहती है, क्या प्रसंग बनता है? समय के साथ विचार करेंगे।

कई भाइयों ने और बहिनों ने तपस्याएं की हैं। तेले किए हैं। कइयों ने पौषध किए हैं और कई पौषध करके आज भी उपस्थित हैं। हम भी आत्म-साधना में लीन बनें, हम आत्म परिणति में लीन बनें। भगवान महावीर की स्तुति के रूप में सूत्र का ज्यादा से ज्यादा स्वाध्याय करने का लक्ष्य रखें। उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन करके, उन पर चिंतन-मनन करके अपने आपको आगे बढ़ाएंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

28 अक्टूबर, 2019

7

मैं भी बन जाऊं महावीर

महावीर भगवान देना सद्ज्ञान जी,
मैं तो हूं नादान प्रभु तेरी ही संतान जी,
कर्मों ने घेरा, छाया घोर अंधकार है,
राह दिखाना प्रभु तेरा ही आधार है,
तू ही माता-पिता तू ही, तू ही मेरे प्राण जी, मैं तो...

आज के दिन प्रभु महावीर का निर्वाण हुआ। आज से वीर संवत चालू हो जाता है। विक्रम कार्तिकी वर्ष का प्रारंभ भी आज से माना गया है। नयी रचना, नयी सृष्टि, नया सारा कार्य चालू हो जाता है। तीर्थंकर नहीं रहे। आर्य सुधर्मास्वामी को गणाधिप पद पर प्रतिष्ठित किया गया। वीर वंश आदि पट्टावलियों में कुछ ऐसा भी संकेत मिलता है कि प्रारंभ में ही तीर्थंकर देव ने सुधर्मास्वामी को गणाधिप पद पर प्रतिष्ठित किया था, किंतु स्पष्टता नहीं होने से यह बात भली-भांति स्पष्ट है, निर्विवादित है कि भगवान महावीर ने निर्वाण के पूर्व आर्य सुधर्मास्वामी को गणाधिप पद पर प्रतिष्ठित किया, जिससे श्रुत की परंपरा अविच्छिन्न रूप से चलती रहे। ज्ञान का प्रवाह प्रवाहित होता रहे।

आचार्य सुधर्मास्वामी ने अपने समय में उस ज्ञान को प्रवाहित किया। हम आगमों में देखते हैं कि आर्य जंबू स्वामी ने आचार्य सुधर्मास्वामी से वाचनाएं लीं। विनम्र भावों से वाचनाएं ली। ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमारे भीतर कुछ योग्यताएं भी होनी चाहिए। यदि हमारे भीतर योग्यता नहीं होगी तो ज्ञान मिल जाने पर भी हम उसका सही रूप में परिणमन नहीं कर पाएंगे। परिणमन व्यक्ति की क्षमता पर निर्भर है। हमारी जठराग्नि जैसी होगी, हमारी विचारधारा जैसी होगी हम उसी प्रकार से उसका परिणमन कर पाएंगे। इसलिए शास्त्रकार प्रारंभ में मंगल करते हैं, मध्य में मंगल करते हैं और अंत में मंगल करते हैं। तीन

बार मंगल किया जाता है।

पहले मंगल का उद्देश्य है कि शिष्य की बुद्धि में, शिष्य की मति में ज्ञान मंगल रूप में अवस्थित हो। मध्य मंगल का उद्देश्य है कि यह ज्ञान आगे भी दिया जा सके और तीसरा, अविच्छिन्न रूप से परंपरा चलती रहे। ये मंगल, अमंगल और विघ्न बाधाओं को दूर करने में समर्थ होते हैं। मंगल दो प्रकार के कहे गए हैं - एक द्रव्य मंगल और दूसरा भाव मंगल। द्रव्य मंगल कुमकुम-मौली को कहा गया है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप को भाव मंगल के रूप में स्वीकार किया गया है। भाव मंगल के आधार पर हमारे सारे अमंगल दूर हो जाते हैं। हमें विचार करना है, चिंतन करना है।

भगवान महावीर ने बिना पूछे, बिना मांग किए आपुट्ठ-वागरणा प्रस्तुत की। उत्तराध्ययन सूत्र भगवान की आपुट्ठ-वागरणा है, ऐसा माना जाता है। यह ऐसा ग्रंथ है, ऐसा पाठ है जिसमें हमें समग्र चीजें प्राप्त हो सकती हैं। द्रव्यानुयोग ज्ञान इसमें मिलेगा। गणितानुयोग इसमें मिलेगा। धर्म-कथानुयोग इसमें मिलेगा और चरण-करणानुयोग इसमें मिलेगा। आगमों को चार भागों में विभक्त किया गया। चारों अंश, चारों भाग उत्तराध्ययन सूत्र में हमें प्राप्त होते हैं। यह एक ही ग्रंथ अपने आपमें समग्र है। एक का भी अच्छी तरह से अध्ययन कर लिया जाए तो सर्वांग अध्ययन हो सकता है। ये केवल मेरे कथन की बात नहीं है। सारे आगमों में जो बिखरा सामान है, उसके सारे बीज उत्तराध्ययन सूत्र में हमें मिल जाएंगे या यों कहा जाए कि सारे आगमों के बीज उत्तराध्ययन सूत्र में रहे हुए हैं। इसके माध्यम से हम बहुत अच्छी तैयारी कर सकते हैं। वर्ष में एक बार पूरे उत्तराध्ययन सूत्र का अध्ययन करने का प्रयत्न हमें करना चाहिए। यदि मूल पढ़ने में असुविधा है तो खाली अर्थ-अर्थ, विवेचन-विवेचन का भी अध्ययन कर लिया जाये और अच्छी तरह से उस पर विचार किया जाये तो कोई कारण नहीं है कि जीवन में बदलाव नहीं आये।

बदलाव लाने के लिए हमें तैयार रहना पड़ेगा। ये नया वर्ष, वीर निर्वाण वर्ष, विक्रम संवत वर्ष चालू हो रहा है। वैसे तो भारत में बहुत सारे नए वर्ष चालू होते हैं, किंतु भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् वीर निर्वाण संवत एक ही चालू होता है। इसके संदर्भ में मुझे ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं है। हमें प्रेरणा अवश्य लेनी है कि ये नया वर्ष हमारे जीवन में किस प्रकार से परिणत हो? नये वर्ष से हम क्या नई उमंगें ले सकते हैं? नए वर्ष में हम अपने भीतर क्या कुछ नयापन अर्जित कर सकते हैं? क्रोध, मान, माया, लोभ तो हम अनादिकाल से

अर्जित करते आ रहे हैं। इनका संचय हम करते आ रहे हैं। यदि इन्हीं का संचय किया तो कुछ नया नहीं होगा। नया यदि कुछ करना है तो ज्ञान को बढ़ाइए, दर्शन को बढ़ाइए, चारित्र को बढ़ाइए - अपने भीतर क्षमा, मृदुता, सहजता, सरलता को विकसित कीजिए। आगम की भाषा में बात करें तो एक क्षमा का गुण जीवन में आने से व्यक्ति कभी अप्रसन्न नहीं हो सकता। उसके जीवन में तनाव नहीं आ सकता। प्रसन्नता उसके जीवन में बरकरार रहेगी।

हम नए वर्ष में नयी उमंगों के साथ, नए उल्लास के साथ अपने जीवन को सही दिशा में आगे बढ़ाने का लक्ष्य बनावें। सारी नकारात्मक सोच समाप्त हो जाए। किसी भी पहलू को सकारात्मक रूप से सोचें। जब सकारात्मक सोच जागृत हो जायेगी तो भीतर प्रसन्नता का प्रवाह स्वत: प्रारंभ हो जाएगा। ऐसे प्रसन्नता के प्रवाह को हम नये वर्ष में प्राप्त करेंगे। ऐसा लक्ष्य रखें कि पूरे वर्ष तक चाहे मेरे सामने कैसी भी परिस्थितियां आ जाएं, मैं अपने आप में दु:खी नहीं होऊंगा। मैं अपने आपको परेशान नहीं समझूंगा। चाहे कैसी भी स्थिति रहेगी, मैं अपने हाल में मस्त रहने का प्रयत्न करूंगा। ऐसा यदि हम विचार करते हैं, ऐसा यदि हम संकल्प करते हैं, अच्छाइयों को स्वीकार करने की दिशा में हमारी तत्परता रहेगी तो निश्चित रूप से हम नयी उमंग के साथ इस वर्ष को जी पाएंगे और अपने आपको धन्य बना पाएंगे।

नवदीक्षित महासतीवर्यायें कल मासखमण के रथ पर आरूढ़ हुईं। लगता है कि मासखमण के साथ उस पर कलश तो कम से कम चढ़ाना ही है। महासती सुखदा श्रीजी म.सा. और महासती वरदा श्रीजी म.सा. का कल मासखमण हुआ और आज 31 के पच्चक्खाण होने की संभावना है। उस प्रसंग से और नया वर्ष भी है तो हमें भी कोई-न-कोई शुभ संकल्प ग्रहण करना है, छोटा हो चाहे बड़ा। मेरे यहां पर प्रत्येक नियम अपना महत्त्व रखता है। कोई नियम छोटा नहीं है। मौके पर एक सूई भी बहुत काम करने वाली होती है। मौके पर एक आलपीन भी आपकी गति को रोक सकती है। आप मेटल डिटेक्टर से घुसना चाहते हैं तो एक आलपीन आपको रोक देगी। हमारे यहां पर नियम कोई छोटा नहीं है, कोई बड़ा नहीं है। फिर भी कोई छोटे-बड़े के भेद करते हैं तो कैसा भी हो, आज एक नियम अवश्यमेव एक वर्ष के लिए लेंगे, अपनी रुचि के अनुसार।

विवाह-शादी की निमंत्रण पत्रिका में लिखा होता है कि स्वरुचि भोजन की व्यवस्था है। लिखा हुआ रहता है ना? तो हमारे यहां पर भी स्वरुचि

पच्चक्खाण है। अपनी रुचि के अनुसार पच्चक्खाण करेंगे किंतु एक पच्चक्खाण अवश्यमेव करेंगे। एक पच्चक्खाण अवश्य लेंगे और पूरे सालभर के लिए। न कोई कारण, न कोई बहाना कि यह हो गया, वो हो गया। ऐसा हो गया, वैसा हो गया। कुछ भी नहीं। अभी से, जब से पच्चक्खाण ग्रहण करेंगे तब से लेकर यदि आयुष कर्म प्रबल रहा और आने वाले समय में वापस आपने दर्शन किए तो इसी दिन तक बराबर चलेगा। ऐसी दृढ़ता के साथ नए वर्ष में अनेक पच्चक्खाण मासखमण की इस दीर्घ तपस्या के रूप में स्वीकार करेंगे, अपने आपको धन्य बना पाएंगे।

अपनी रुचि देख लेना कि क्या पच्चक्खाण करना है? एक साल के लिए पच्चक्खाण की लिस्ट बोली जा रही है। जिसको जो पसंद है, वह ले सकता है।

1. एक साल तक उत्तराध्ययन सूत्र अर्थ सहित पढ़ेंगे। 1 से 36 अध्ययन तक।
2. केवल हिंदी अर्थ उत्तराध्ययन सूत्र का एक वर्ष में पूरा पढ़ेंगे।
3. एक साल तक रोजाना 21 आइटम से ज्यादा नहीं खाना। दवाई की छूट है। एक दिन में 21 आइटम से ज्यादा नहीं लेना।
4. सालभर तक बाजार की मिठाई का त्याग।
5. पूड़ी-मिठाई का त्याग। घर की और बाजार की भी, सब।
6. सालभर तक प्रतिदिन एक विगय का त्याग। पांच विगय में से एक विगय का त्याग- घी, दूध, दही, तेल और मिठाई। उसमें से एक दिन में एक चीज नहीं खाना। दूध नहीं खाना, तेल नहीं खाना, घी नहीं खाना, दही नहीं खाना, मिठाई नहीं खाना। एक विगय का त्याग करना।
7. एक साल तक बाजार की नमकीन का त्याग। सुन लेना भाइयों और बहिनें भी। इसका ध्यान रखना।
8. एक साल तक भोजन के समय मोबाइल का त्याग करना।
9. रोजाना एक घंटा मौन रहना या रोजाना भोजन करते समय मौन रहना।
10. एक साल तक घर में रहते हुए कच्चा पानी नहीं पीना। घर में रहते हुए कच्चा पानी नहीं पीना।
11. एक साल तक प्रतिदिन एक रोटी बिना संयोजना के यानी रोटी के साथ कुछ भी नहीं लेना। सब्जी नहीं, दूध नहीं, दही नहीं लगाना, रोटी खाई तो। उपवास हो तो अलग बात है। चाहे रोटी हो या चावल,

संयोजना के लिए कुछ लेना नहीं। उसमें कुछ नहीं लेना।

12. एक साल तक महीने में चार दिन प्रतिक्रमण करना।

13. एक साल में 15 संवर करना। चाहे पौषध करो, चाहे संवर करो। साल में 15 संवर करना।

14. सालभर में 100 दिन बड़े स्नान का त्याग। पानी की किल्लत बहुत ज्यादा हो रही है, इसलिए 100 दिन बड़े स्नान का त्याग।

15. एक साल तक टी.वी. नहीं देखना।

16. एक साल तक रात्रि भोजन का त्याग।

17. एक साल तक सचित्त वस्तु या सचित्त पदार्थ खाने का त्याग।

18. एक साल तक सलाद नहीं खानी। एक साल तक कच्चे सलाद का त्याग।

19. एक साल तक होटल में भोजन नहीं करना।

20. एक साल तक महीने में 4 दिन मोबाइल का त्याग करना।

21. एक साल तक महीने में 2 दिन मोबाइल का त्याग करना।

22. दिन में भोजन एक बार करें या दो बार करें या तीन बार करें किंतु दिन में एक बार तो किसी की मनुहार किए बिना खाना नहीं। घर में किसी को भी मनुहार कर सकते हैं। माता-पिता, भाई-बहिन, पत्नी, पुत्र-पुत्री, किसी का भी मनुहार करना।

23. एक साल तक स्वाध्याय काल होने पर प्रतिदिन 100 गाथा का स्वाध्याय करना। कम से कम 100 गाथा का स्वाध्याय करना और 100 गाथा का स्वाध्याय नहीं कर सकते हों तो 3 पेज पढ़ना। किसी भी धर्म की कोई भी पुस्तक पढ़ेंगे।

24. एक साल तक 100 गाथा याद करना।

25. एक साल तक कम से कम एक नानेशवाणी किताब पूरी पढ़ना।

26. एक साल तक जिणधम्मो को पूरा पढ़ना।

फिलहाल, इतना ही कहते हुए विराम।

29 अक्टूबर, 2019

8

जब ले आत्मा अँगड़ाई

ध्रुवपदरामी हो स्वामी! माहरा,
नि:कामी गुणराय, सुज्ञानी,
निजगुणकामी हो पामी तूं धणी,
ध्रुव आरामी हो थाय।। सुज्ञानी ।।1।।
सर्वव्यापी कहे सर्व जाणगपणे,
पर परिणमन स्वरूप, सुज्ञानी,
पररूपे करी तत्वपणुं नहीं,
स्व सत्ता चिद्रूप सुज्ञानी ।। 2।।

पार्श्वनाथ भगवान की स्तुति की गई। स्तुति के भाव तत्त्व गंभीर हैं। 'ध्रुवपदरामी हो स्वामी माहरा' यानी मेरे स्वामी ध्रुवपद में रमण करने वाले हैं। ध्रुवपद उसे कहा गया है, जो सदा स्थिर रहने वाला है। वह न कभी हटता है, न उसका उत्पाद होता है और न ही विनाश होता है।

पदार्थ के तीन गुण बताए गये हैं। 'उप्पे इ वा, विगई इ वा, धुवे इ वा', अर्थात् उत्पन्न होना, विनाश को प्राप्त होना और द्रव्य रूप से सदा विद्यमान रहना। हम सदा विद्यमान तब रह पाएंगे जब निज सत्ता को प्राप्त कर लेंगे। अपने मूल स्वरूप को जब प्राप्त कर लेंगे तो सदा-सदा ध्रोव्य अवस्था में रहने वाले बन जाएंगे। जब तक दूसरे द्रव्य के साथ हमारा मेल होता रहता है तब तक हम ध्रोव्य में स्थित नहीं रह पाएंगे। परपरिणमन में हमारी परिणति होती रहेगी। मनुष्य, तिर्यंच, पशु, देव में परिणमन होता रहेगा।

'पररूपे करी तत्त्वपणुं नही।' दूसरे रूप से परिणत होने की जो बात कही गई है वह उपचरित है। यथार्थ में यह शरीर मैं नहीं हूं। आंख, नाक, कान इंद्रियां मैं नहीं हूं। सोचने वाला मन, मैं नहीं हूं। शरीर नष्ट होने वाला है और वह

नष्ट होगा। चाहे आज हो, कल हो या वर्षों बाद। शरीर नष्ट धर्मा है, विनश्वर है। इसको नष्ट होना ही है। इंद्रियां भी सदा विद्यमान रहने वाली नहीं हैं। हम देखते हैं कि इंद्रियों का जो धर्म है, इंद्रियों की जो शक्ति है, वह भी समय के साथ छिन्न होती हुई चली जाती है। आंखों के सामने चश्मा क्यों आया? कान में मशीन क्यों आई? मुंह में नकली दांत क्यों आए? इनका आना ये दर्शाता है कि हमारी इंद्रियां, उनकी शक्ति सदा विद्यमान रहने वाली नहीं है। उनमें भी क्षरण होता है। उनकी शक्ति का भी क्षय होता है। उनकी शक्ति भी मंद पड़ जाती है। इंद्रियां भी सदा रहने वाली नहीं हैं, शाश्वत नहीं हैं, ध्रोव्य नहीं हैं।

आगे आते हैं, मन पर। मन का भी अस्तित्व सदा रहने वाला नहीं है। बहुत कम लोग जानते हैं कि मन क्या है? मन का स्वरूप क्या है? मन 24 घंटे हमारे भीतर रहने वाला नहीं होता। जब भी हम सोचने को तत्पर होते हैं एक नये मन का निर्माण करते हैं। जब भी हम विचार करते हैं तो एक नये मन का निर्माण करते हैं। मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। मन पर्याप्ति की शक्ति से मन को तैयार करते हैं और उससे मनन करते हैं। उस मन के संस्कार दूसरे मन पर अंकित हो जाते हैं। इसलिए हमको ऐसा नहीं लगता कि मैं हर वक्त नये मन का निर्माण कर रहा हूं और नये मन से सोच रहा हूं। क्योंकि पुरानी स्मृति और भविष्य की चिंता, ये सब मेरे में होती रहती है। मैंने कल क्या विचार किया, वह जब मुझे ध्यान में आता है, दो घंटे पहले क्या किया, वह जब विचार में आता है तब ऐसा ही लगता है कि मेरा मन मेरे में विद्यमान रहता है किंतु हर वक्त मन की विद्यमानता नहीं होती। जिस समय हमारी जरूरत होती है, हम मन का निर्माण करते हैं। काम हो गया तो उसकी छुट्टी कर देते हैं। फिर जरूरत होती है फिर नये मन का निर्माण करते हैं।

बड़ी उत्सुकता से देख (सुन) रहे हो आप कि महाराज कैसी बात कह रहे हैं? आश्चर्य भी हो रहा होगा कि क्या मन की सत्ता भी हमारे साथ सदा रहने वाली नहीं है? नहीं रहती है। एकदम सुनिश्चित है। जैसे वचन का हम निर्माण करते हैं और प्रयोग करके उसको छोड़ देते हैं। ये सदा विद्यमान रहने वाले तत्त्व नहीं हैं। सदा विद्यमान रहने वाला तत्त्व है, हमारी आत्मा। जो स्वस्वरूप को प्राप्त हो जाए। 'स्व सत्ता चिद्रूप सुज्ञानी' अपनी सत्ता को प्राप्त कर लें। अपने अस्तित्व को प्राप्त कर लें।

25 बोल का थोकड़ा किस-किस को याद है? होगा कइयों को याद।

उसमें एक बोल है, 'आत्मा आठ'। क्या अर्थ होता है उसका? 'आत्मा आठ' का अर्थ क्या होता है? द्रव्य आत्मा, योग आत्मा, कषाय आत्मा, ज्ञान आत्मा, दर्शन आत्मा, चारित्र आत्मा, उपभोग आत्मा और वीर्य आत्मा। ये बोल हमने रटे हैं। इनके स्वरूप को भी समझें। जिसमें हमारी आत्मा सिद्ध बनेगी, सिद्धत्व को प्राप्त करेगी, वह द्रव्य आत्मा होगी। शुद्ध केवल आत्मा द्रव्य, कोई मिसकट नहीं, कोई योग नहीं, कोई कषाय नहीं। जिस समय योग में आत्मा का परिणमन चल रहा है। मन में चिंतन चल रहा है, वचन का प्रयोग हो रहा है, काया की परिणति हो रही है, उसमें आत्मा का उपयोग लग रहा है। आत्मा की शक्ति इसमें लग रही है, तब वह योग आत्मा हो जाएगी।

क्रोध, मान, माया, लोभ। क्रोध हमें जल्दी पहचान में आ जाता है। क्रोध की पहचान जल्दी हो जाती है। मान उससे सूक्ष्म है। उसको जल्दी पहचान नहीं पाते हैं। फिर भी बोलचाल और चलने की शैली दर्शा देती है कि व्यक्ति कितना अहंकारी है। लोग कहते हैं कि जब वह चलता है तो नेशनल हाईवे भी छोटी पड़ जाती है। वह भी कम चौड़ी हो जाती है। 'स्वयं चौड़े, संकड़ी राह बाजार की'। जो स्वयं चौड़ा है, उसको हर जगह छोटी लगेगी। माया, कपट का एक रूप है। छल, प्रपंच उसी के नाम हैं। उसमें जब हमारी प्रवृत्ति होने लगती है, तब हमारी कथनी-करनी में फर्क आने लगता है। लोभ और लालच में जब प्रवृत्ति होती है, तब लोभ कषाय मेरी आत्मा पर हावी होता है। ऐसे समय में कषाय मेरी आत्मा पर हावी हो जाते हैं इसलिए वे क्षण कषाय आत्मा के हैं। आत्म भाव मेरा गौण हो गया। कषाय भाव मुखर हो गया होता है। जिस समय ज्ञान के क्षेत्र में हमारी प्रवृत्ति हो रही है, जिस समय हम ज्ञान में लगे हुए हैं, चाहे स्वाध्याय कर रहे हैं या थोकड़े गिन रहे हैं उस समय पूरा ध्यान उसी में लगा हुआ है, मन उसी में निमग्न है, तो वह ज्ञान आत्मा है। वस्तु के सामान्य बोध को दर्शन कहते हैं।

एक बात आपसे पूछी जाए कि हमारे भीतर ऐसी कौन-सी शक्ति है जिससे हम सबकी मनुष्य के रूप में पहचान होती है? वह अमेरिकन है तो भी मनुष्य है, नेपाली है तो भी मनुष्य। मालवा के हैं तो भी मनुष्य हैं और मारवाड़ी हैं तो भी मनुष्य। ऐसा क्या तथ्य है जिससे हम उन सबको मनुष्य कह सकते हैं? कह रहे हैं। ऐसा क्या नहीं है, जिससे उनको पशु नहीं कह सकते? गाय, भैंस, बैल, हाथी, चाहे घोड़ा या ऊंट को लोग पशु कहते हैं, ढोर कहते हैं। वे पशु क्यों

कहलाते हैं? और मनुष्य, मनुष्य क्यों कहलाते हैं?

जिससे हमारे लिए मनुष्य का कथन किया जाता है, वह हमारे भीतर एक शक्ति है। वह शक्ति दर्शन का पर-सामान्य रूप है। जिससे मनुष्य को मनुष्य के रूप में व पशु की पशु के रूप में पहचान करते हैं। सामान्य दो प्रकार का है। एक पर-सामान्य होता है, एक अपर सामान्य होता है। बात जटिल जरूर है। ऊपर से जा रही होगी। ऊपर से जा रही है ना? उसको कैसे मोड़ो कि वह ऊपर से नहीं जावे, भीतर आ जावे? कभी तो इस रास्ते पर चलना पड़ेगा! रोज यदि टालते हुए चले जाएंगे तो आखिर इस रास्ते पर चलेंगे कब? ये पहलू हमारे से अनछुआ रह जाएगा। हम इसका स्पर्श नहीं कर पाएंगे।

आप कह सकते हो कि हमारे व्यावहारिक जीवन में इसका उपयोग क्या है? सामान्यतया हमें नहीं लग रहा है कि इसका कोई उपयोग नहीं हो रहा है व्यावहारिक जीवन में, किंतु इसके बिना हमारे व्यावहारिक जीवन की गति भी नहीं है। जैसा मैंने अभी कहा कि हम किस आधार से मनुष्य कहलाते हैं? यदि हम कहें कि दो आंख, दो कान हैं तो बताइए, गाय की आंखें कितनी होती हैं? कुत्ते की आंखें कितनी होती हैं? बिल्ली की आंखें कितनी होती हैं? दो ही होती हैं ना? फिर वे क्यों नहीं कहलाएंगे आदमी? वे मनुष्य क्यों नहीं कहलाएंगे? दोनों के भेद के पीछे कारण क्या है? एक सामान्य होता है, एक महासामान्य होता है। यह पर-सामान्य है कि हमारे भीतर मनुष्यत्व है। हमारे भीतर मनुष्यत्व है, इस कारण से हम मनुष्य कहलाते हैं। जिसके भीतर पशुत्व होता है, वह पशु कहलाएगा और जिसके भीतर देवत्व होता है, वह देव होता है। देव, 'त्' और 'व' से मिलकर बना है देवत्व। गुरुत्व और लघुत्व भी होता है। गुरुत्वाकर्षण बोलते हो ना? क्या अर्थ होता है उसका? जिसके भीतर गुरुता है वह गुरुत्व है और जिसके भीतर लघुता है उसके लिए लघुत्व शब्द का प्रयोग होता है।

जिस शब्द में जो शक्ति रही हुई है, उस अर्थ का उसमें आप दर्शन करेंगे। यह कार्य होता है, दर्शन का। किंतु ये भी ज्ञान के रूप में ही है। सारी चीजें हटते हुए एकमात्र द्रव्यत्व रह जाएगा। अभी थोड़ी देर पहले बोला गया है कि द्रव्य आत्मा, द्रव्य रूप में जब हम स्थित हो जाएंगे। द्रव्य चाहे जड़ हो चाहे पुद्गल, उसकी किससे पहचान होती है? उसकी पहचान होती है द्रव्यत्व से और वह द्रव्यत्व पर-सामान्य है, महासामान्य है। हम जब सोचते हैं, तो हो सकता है कि दो प्रकार से सोचें। एक ज्ञान के रूप में अर्थात् विशेष रूप से सोचें और एक

उसके भीतर रहे हुए धर्म के रूप में सोचें। जिस समय हम जिसमें सोच रहे होते हैं, उसमें हमारी आत्मा का लगाव रहता है। वहां मुख्य रूप से उसका कथन करना है। वह कथन ज्ञानात्मा, दर्शनात्मा के रूप में हो गया। द्रव्य आत्मा यानी जब हम द्रव्य आत्मा में जीते हैं तो कोई भी संक्लेश हमारे साथ नहीं लगता। किसी प्रकार की विपत्ति का मुझे सामना नहीं करना पड़ता। मैं केवल एकमात्र उस द्रव्य आत्मा में जी रहा हूं। न योग की प्रवृत्ति है और न ही कषाय की प्रवृत्ति है। जब हम द्रव्य आत्मा में जीयेंगे तो कोई मेरे शरीर के अवयव का छेदन कर दे, हाथ-पांव भी काट दे तो मुझे नहीं लगेगा कि मेरा हाथ काट दिया, मेरा पांव काट दिया।

हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि गजसुकुमाल मुनि के सिर पर अंगारे रखे गए। हमारे मन में बड़ी संवेदना होती है किंतु उनसे यदि हम बात करें तो वे कहेंगे कि मुझे पता ही नहीं कि मेरे सिर पर अंगारे हैं। क्या यह संभव है कि उनको पता ही नहीं हो? संभव है। संभव है ही। संभव था ही। क्योंकि वे द्रव्य आत्मा में अवस्थित हो गए। दुनिया में क्या हो रहा है, इससे उनका कोई सरोकार नहीं है। उनके शरीर के साथ क्या घट रहा है, उनसे उनका कोई लेना-देना नहीं है। मान लीजिए किसी व्यक्ति ने सौ करोड़ रुपये लगाकर एक बंगला बनाया और उसी के किसी मित्र ने कहा कि यह बंगला तो मैं रखूंगा और सौ की जगह उसने सवा सौ करोड़ रुपये दे दिए। सौ और पचीस, 125 करोड़ रुपये और उसके नाम से रजिस्ट्री हो गई। तीसरे ही दिन यदि भूकंप से वह बंगला नीचे बैठ जाए तो पहले जिसने बंगला बनाया था, उसका क्या गया? जब तक उसके साथ उसका अटैचमेंट था, जब तक उसके साथ संबंध था तब तक वहां होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया का उसे अहसास होगा।

हम शरीर में जी रहे हैं। शरीर में जी रहे हैं या नहीं जी रहे हैं? (प्रतिध्वनि- जी रहे हैं।) शरीर में कुछ भी हरकत होगी, सिर दु:खेगा, आंखें दु:खेंगी, पेट दु:खेगा, कुछ भी होगा तो उसकी अनुभूति हमें होगी। किंतु मैंने शरीर को अलग कर दिया। 'ताव कायं ठावेणं माणेणं जाणेणं अप्पाणं वोसिरामि' किसको वोसिराया? हम नाटक कर लेते हैं, हकीकत में नहीं जाते हैं। जो हकीकत में जाना सीख ले, अलग चीज होगी। हम कह तो देते हैं 'ताव कायं ठावेणं माणेणं जाणेणं अप्पाणं वोसिरामि' किंतु एक मच्छर आकर बैठ जाए तो? हाथ तो नहीं चलाओगे। ध्यान में हो तो हाथ कैसे चलाओगे? किंतु मन

डोलते हुए कहां चला जा रहा है? शब्द का उच्चारण थोड़ा जल्दी तो नहीं होने लगा कि जल्दी से ध्यान हो जाए। ऐसी हरकत होती है या नहीं होती है? (प्रतिध्वनि- होती है) होती है। इसका मतलब हमने पच्चक्खाण किए किंतु हमने शरीर से आत्मा की भिन्नता का रूप नहीं अपनाया। गजसुकुमाल मुनि एक दिन की दीक्षा पर्याय में थे। वैराग्य काल भी कोई ऐसा नहीं कि दो, पांच, दस साल वैराग्य में रहे हों। थोड़े ही काल में झटपट वे समझ गए कि शरीर और आत्मा का भिन्नत्व क्या है? शरीर क्या है और उसकी आत्मा से भिन्नता क्या है? उन्हें भिन्नता का बोध हुआ और वे द्रव्य आत्मा में अवस्थित हो गए। शरीर से कोई लेना-देना नहीं है। अपने आपको केंद्रित कर लिया आत्मा में। अब शरीर पर कुछ भी घट रहा हो, उससे कोई संबंध नहीं है। जब तक संबंध बना रहता है तब तक वहां होने वाली क्रिया दु:ख पहुंचाएगी। हमें रुलाएगी।

एक व्यक्ति बंगला बनाता है। उसने उसमें ग्रेनाइट लगायी। कोई बालक या अन्य हथौड़ी और कील लेकर उस ग्रेनाइट पर चोट करे तो बंगला बनाने वाले को कैसा लगेगा? वह हथौड़ी उस ग्रेनाइट पर नहीं पड़ रही है। वह उसके दिल पर पड़ रही है। वह ग्रेनाइट दिल पर आ गया। ऐसे ही जब शरीर हो, चाहे किसी के साथ संबंध हो माता-पिता, भाई-बहिन, परिवार जिसके साथ जितना गाढ़ राग-बंधन होगा, उतना ही वियोग उसको दु:खदायी बनाएगा। जिसके साथ हमारा गाढ-बंधन नहीं होगा, उसका कुछ भी बिगड़े, हमारा कुछ भी रियेक्शन नहीं होगा।

भारत में प्रतिदिन कितने लोग मरते हैं? दस-बारह लोग? अरे! कितने ही लोग मरते होंगे, कौन गिनती कर रहा है? वर्ष भर में लगभग पांच लाख लोग मर जाते हैं। जहां तक मुझे स्मृति है हम किस-किस को रो रहे हैं? किस-किसका शोक मना रहे हैं? बोलो? जिनसे हमारा जुड़ाव होता है, केवल उनका वियोग हमें रुलाता है। कोई कुछ नहीं है। वियोग से हटकर देखें। रिलेशन, रिश्ता, मोहब्बत के दायरे को थोड़ा किनारे कर दें। डिब्बी में केसर भरी हुई है, उस केसर को निकाल दो और डिब्बी को धोकर साफ कर दो, धूप में रख दो। उसके बाद उसको सूंघो तो क्या मिलेगा? क्या अब खुशबू मिलेगी? (प्रतिध्वनि- नहीं) सब निकल गई। खुशबू निकल गई। अब उसमें क्या मिलेगा? उसमें खुशबू मिलनी मुश्किल है। हलकी-फुलकी खुशबू रहेगी तो बात अलग है किंतु रहनी नहीं है।

जैसे उसमें से कस्तूरी निकल गई या केसर की खुशबू निकल गई, वैसे ही हमारी मोहब्बत वहां से हट गई। पुरानी कहानियां हमने सुनी होंगी कि राजा के कई रानियां थीं। एक रानी के कोई गड़बड़ी हो गई। वह राजा के मन से दूर हो गई। उसको जवाब दे दिया, किनारे बैठा दिया। उसका हालचाल नहीं पूछते हैं। वह कितनी भी दु:खी हो, उससे राजा को दु:ख नहीं। ऐसे ही जिन लोगों ने किसी को तलाक दे दिया उसके बाद उसका कुछ भी बिगाड़ हो तो मन दु:खता है क्या? (प्रतिध्वनि- नहीं) मन दु:खता हो तो जरूर अभी भीतर अटैचमैंट है। शरीर के साथ यदि अटैचमेंट रखेंगे तो शरीर की पीड़ा पीड़ित करेगी। परिवार के साथ अटैचमेंट रखेंगे तो परिवार का वियोग दु:खी करेगा। हमारा किसी से अटैचमेंट न हो। केवल अपनी द्रव्य आत्मा में जी रहे हों। 'ध्रुवपदरामी हो स्वामी माहरा।' उस ध्रुवपद पर, उस ध्रोव्य अस्तित्व पर जिस दिन हमारी दृष्टि टिक जाएगी, जिस दिन हमारा ध्यान केंद्रित हो जाएगा उस दिन हमारे सारे दु:ख-दोहद दूर हो जाएंगे। दु:ख दुर्भाग्य हमारे से दूर हो जाएंगे। किंतु जब तक चाशनी का तार बना रहेगा, तब तक वह स्थिति बनना कठिन है।

चाशनी का मतलब क्या है? चाशनी बनाओगे तो कड़क होगी या नहीं होगी? चक्की, लड्डू कड़क होंगे या नहीं होंगे? खाली शक्कर में डाल दो तो चाशनी नहीं है। चाशनी का मतलब चेप है। हमारे भीतर लगाव की चाशनी बनती है तो हमारे भीतर कड़कपन होता है। उससे हमारे भीतर दु:ख पैदा होता है। यदि हम चाशनी नहीं बनावें तो हमें कोई दु:ख पैदा नहीं होगा।

एक प्रसंग है। बात को शिथिल करने के लिए, थोड़ी बात हलकी हो जाए, थोड़ी बात दिमाग में बैठ जाए। बात यह भी थोड़ी जटिल है किंतु घी को ऐसे ही खाना कठिन ही होता है। हलवे में घी खिला दो तो गरमागरम घी उतर जाए। गरमागरम खिचड़ी हो तो उतर जाए।

प्रसंग की बात मैं बता रहा था। आचार्य पूज्य गुरुदेव का धार पधारना हुआ। माणकचंद जी पोरवाल सुलझे हुए श्रावक भी थे। वे वकालत करते थे। एक और वकील थे सिद्धनाथ उपाध्याय। जैसे ही वकालत से फुर्सत मिलती दोनों में तर्क चालू हो जाता। सिद्धनाथ उपाध्याय कहते कि जैन धर्म नास्तिक है क्योंकि परमात्मा को, ईश्वर को नहीं मानता। माणकचंद जी अपना तर्क देते। ऐसे उनका तर्क चलता रहता। दोस्ती की दोस्ती और चर्चा की चर्चा।

गुरुदेव का पधारना हुआ तो माणकचंद जी वकील साहब ने सिद्धनाथ

उपाध्याय से कहा कि अब आपको जितने भी प्रश्न पूछने हैं, जितनी जानकारियां करनी हैं, हमारे गुरु महाराज आए हैं उनसे पूछ लो। सिद्धनाथ जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी थे।

सिद्धनाथ उपाध्याय आए और कहने लगे कि म.सा., आप ईश्वर को मानते हो या नहीं मानते हो? वहां उन्होंने एक श्लोक बोला,

'यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानंधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।'

यानी कि यहां जब-जब धर्म की हानि होती है, मैं शरीर धारण करता हूं और दुष्टों का दलन करता हूं। उन्होंने यह श्लोक बोलकर कहा कि गुरुदेव! आप इसको मानते हो या नहीं मानते हो? आचार्य श्री ने कहा कि वकील साहब, इस प्रश्न का उत्तर हम बाद में देंगे। मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूं। आप कांग्रेसी हैं? उन्होंने कहा कि हां, कांग्रेसी हूं। आचार्य श्री ने कहा कि ये बताइए, मोहनदास करमचंद गांधी को महात्मा क्यों कहते हैं? वकील साहब ने कहा कि क्यों नहीं कहें? उन पर गोली चलाने वाले के लिए उनके मुंह से निकला कि भगवान इसका भला करें। ऐसे व्यक्ति को महात्मा नहीं तो और क्या कहा जाएगा?

आचार्य श्री ने कहा कि आत्मा बड़ी या महात्मा। महात्मा यानी आत्मा का कुछ विकास हुआ। आत्मा का स्वरूप कुछ विकसित हुआ तो महात्मा बने। अपने शत्रु पर भी मित्रता का भाव रखने वाले बने। ये बताइए कि महात्मा-परमात्मा में कौन बड़ा? महात्मा से परमात्मा बड़ा है या छोटा है? महात्मा से परमात्मा ऊंचा है या नीचा है? क्या मानते हैं? विचार में पड़ गए आप लोग कि क्या बोलें? परमात्मा, महात्मा से भी ऊंचा है। जिसने परम अवस्था प्राप्त कर ली है। आत्मा से महान् अवस्था प्राप्त की तो महात्मा और परम अवस्था प्राप्त की तो परमात्मा। वे तो परमात्मा हैं, वे तो बड़े हैं। अब गुरुदेव कहते हैं कि देखो वकील साहब, जब-जब धर्म की हानि होती है तो मैं अवतार लेता हूं और दुष्टों का दलन करता हूं। आप कहते हो परमात्मा बड़े हैं, ऐसी स्थिति में इसे कैसे संगत मानें। जब परमात्मा है तो वे दुष्टों का दलन करने के लिए क्यों तैयार होंगे? जब महात्मा भी कहते हैं कि भगवान इसका भला करें तो परमात्मा दलन कैसे करेंगे?

अब वे सोच में पड़ गए कि बात तो सही है। वे कुछ बोल नहीं पा रहे थे।

इतने में गुरुदेव ने एक और तर्क प्रस्तुत कर दिया, एक और तीर चला दिया कि वकील साहब गीता में कहा गया है कि 'यद् गत्वा न निर्वन्तते, तद् धाम परमं मम' अर्थात् जहां जाने के बाद मेरा वापस आना नहीं होता, लौटना नहीं होता वह मेरा परम धर्म है और आप कह रहे हो कि

'यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानंधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।'

जब-जब धर्म की हानि होती है तो मैं जन्म लेता हूं। तो जन्म लेने वाला उस परम धाम को प्राप्त हुआ या नहीं हुआ? अब बात समझ में आ रही है? (प्रतिध्वनि- हां) हां! अब बात बहुत अच्छी तरह से समझ में आ रही है। अब गले के नीचे उतर गई है। अब हाडों-हाड बैठ रही है। भाषा तो कोई समझे या नहीं समझे। अब बात हाडों-हाड बैठ रही है। मतलब कि एक-एक बात जम रही है।

सिद्धनाथ उपाध्याय थोड़े तनाव में आ गए। उनके ललाट पर पसीना आ गया। उनके मुंह से निकल गया कि तो क्या हमारी गीता झूठी है? क्या निकला मुंह से कि क्या हमारी गीता झूठी है? कि एक तरफ मैं जन्म लेता हूं और एक तरफ कहते हैं कि जहां जाने के बाद वापस लौटना नहीं होता है। आखिर बात क्या है? आचार्य श्री ने कहा कि इतनी जल्दी झूठ और सच का सर्टिफिकेट नहीं दें। विचार कीजिए जैन धर्म अनेकांतवाद को स्वीकार करता है, स्याद्वाद की बात करता है। गुरुदेव ने 'यदा-यदा हि धर्मस्य' की बात को समझाया और 'यद् गत्वा न निर्वतन्ते तद् धाम परमं मम' को भी समझाया। समझाने के बाद वे श्रद्धालु बन गए। आचार्य गुरुदेव के मुंह से सुना कि सात दिन रेग्युलर उनकी चर्चा चलती रही। गुरुदेव का फरमाना था कि अनेक दिनों में अनेक लोगों ने अनेक प्रश्न पूछे होंगे। उन लोगों की संख्या कितनी भी हो सकती है, किंतु एक व्यक्ति ने सात दिनों तक रेग्युलर इतने प्रश्न पूछे, शायद सिद्धनाथ उपाध्याय ही हैं। सात दिन पूछने के बाद वे कहने लगे कि गुरुदेव मैं स्याद्वाद के विषय में जानना चाहता हूं।

सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन ने भी अपनी पुस्तक में स्याद्वाद को संशयवाद के रूप में ख्यापित कर दिया। संशयवाद के रूप में प्रयुक्त कर दिया। आचार्य देव ने सप्तभंगी स्याद्वाद, स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद् अवक्तवयम को पूरे व्यवस्थित रूप से समझाया और कहा कि कहीं से कहीं तक

कोई संशय नहीं होता है। जो वाक्य निर्णायक है, उसमें संशय की गुंजाइश ही नहीं। हम लोग ही कई बार भ्रांति फैलाने वाले होते हैं। कई बार भ्रांति फैला देते हैं। भ्रांति फैलाते हैं कि 'ही' का नहीं 'भी' का प्रयोग करना। क्या करना बोलते हैं? ही का नहीं भी का प्रयोग करना। बोलते हैं या नहीं बोलते हैं? बोलते हैं ना? ही का नहीं भी का प्रयोग करना। स्याद्वाद में ही प्रयोग करना या भी प्रयोग करना? कमल जी, ही का प्रयोग होगा या भी का प्रयोग होगा? ही कहना या भी कहना? स्याद्वाद की बात करेंगे तो ही की बात करेंगे या भी की बात करेंगे। ऐसा ही है या ऐसा भी है?

स्याद्वाद कहता है कि ऐसा ही है। भी नहीं ही कहना। निर्णय, वाक्य निर्णयात्मक होता है और स्व-अवधारण रूप होता है। आप ही का प्रयोग करो या मत करो, यदि वाक्य है तो स्व-अवधारण रूप ही है। उसमें ही अपने आपमें प्रयोग है। आप चाहे करो या मत करो। 'स्याद् अस्ति एवं घटः।' कदाचित् घट है ही। ये समझने में टाइम लगेगा। पर टाइम कुछ भी नहीं लगेगा। थोड़ा-सा मन को तैयार करो कि ये समझ में आए। अगले ही क्षण समझ में आ जाएगा।

जनक राज ऋषि से अष्टावक्र ऋषि ने कहा- आत्मा का ज्ञान, घोड़े पर पांव रखने, घोड़े पर बैठने में हो जाएगा। आत्मा का ज्ञान हो सकता है तो स्याद्वाद को समझने में क्या दिक्कत है? ही और भी बहुत-सी जगह प्रयोग होते हैं। स्याद्वाद भी का नहीं ही का प्रयोग करता है। स्याद्वाद ही का प्रयोग करता है। यह कॉपी है मेरे हाथ में। यह कॉपी ही है या कॉपी भी है? अच्छी तरह से सोच लो। यह कॉपी भी है या कॉपी ही है? इसका ही होगा तो क्या स्याद्वाद नहीं हुआ? क्या यह स्याद्वाद नहीं हुआ, संशयवाद हो गया?

वकील साहब आप खड़े हो जाओ। (सभा में बैठे एक श्रावक को खड़ा करते हैं) वकील की बात चल रही है तो वकील साहब को खड़ा कर देते हैं। आप वकील नहीं हो क्या? तो आप क्या सी.ए हो? नहीं? अच्छा महामंत्री जी हो, तो वकील साहब आपके क्या लगते हैं? (प्रतिध्वनि- मेरे छोटे भाई हैं) अच्छा तो वकील साहब आप खड़े हो जाओ। तो महामंत्री जी, वकील साहब आपके छोटे भाई हैं तो बताओ कि छोटा भाई भी है या छोटा भाई ही है? छोटा भाई भी है या छोटा भाई ही है? ये वकील साहब छोटे भाई ही हैं या छोटे भाई भी हैं? समझना पड़ेगा अभी। ऐसे काम नहीं चलेगा। वकील साहब के लड़के हैं क्या साथ में? कहां पर हैं? (उनका लड़का खड़ा होता है, जो कुर्सी पर बैठा है) अरे

वाह! आप तो कुर्सी पर जाकर बैठे हो। चलो कोई बात नहीं है। यह कह रहे हैं कि मेरे भाई हैं। आपके क्या हैं? आपके पापा हैं या भाई हैं? उनके पापा हैं या भाई हैं? समाधान क्या करोगे? पापा हैं या भाई हैं?

भाई की दृष्टि से भाई हैं तो भाई ही हैं। बेटे की दृष्टि से पापा हैं तो पापा ही हैं। अपेक्षा है। भाई की अपेक्षा भाई है और बेटे की अपेक्षा बाप है। भी नहीं ही। ही का प्रयोग हुआ या नहीं हुआ? सारे वाक्य अवधारण रूप होते हैं, निश्चय करने वाले होते हैं, अनिश्चय कराने वाले नहीं होते हैं। हमारा स्याद्वाद कदाचित् घट ही है। 'ही' बताने वाला ही है। मेरे हाथ में एक कॉपी है। यह कॉपी किस कारण से है? अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से कॉपी है। मेरे दूसरे हाथ में कपड़ा है। इस कॉपी के लिए कोई कथन करता है कि यह कपड़ा नहीं है। यह कपड़ा नहीं है। कॉपी को लेकर कहते हैं कि यह कपड़ा नहीं है। ऐसा कथन किया जा सकता है या नहीं किया जा सकता है? यह कॉपी है, कपड़ा नहीं है। एकदम अच्छी तरह से समझ लेना। ऐसा कथन इसमें (कॉपी में) किया जा सकता है या नहीं किया जा सकता है कि यह कपड़ा नहीं है। ऐसा कथन किया जा सकता है कि यह कपड़ा नहीं है। यह कपड़ा नहीं है ऐसा कथन किस आधार से करेंगे? हमारे पास आधार क्या है?

जैन सिद्धांत कहता है कि इसके भीतर यदि नास्तित्व गुण नहीं होता, एकमात्र अस्तित्व गुण ही होता तो आप यह कह सकते हैं कि यह कॉपी है। आप कह सकते हैं कि यह कॉपी नहीं है किंतु इसके भीतर नास्तित्व गुण भी रहा हुआ है, इसलिए हम कह सकते हैं कि यह कपड़ा नहीं है। यह ओगा है, लेकिन इसमें नास्तित्व गुण भी है इसलिए हम कह सकते हैं कि यह पूंजणी नहीं है। यह पूंजणी है क्या? नहीं है। अत: (ओगा हाथ में लेकर) यह अस्तित्व गुण का कथन है। इसमें निषेध किया जा सकता है कि यह पूंजणी नहीं है। पदार्थ में जैसे अस्तित्व गुण रहा हुआ है, वैसे ही उसमें नास्तित्व गुण भी रहा हुआ है। इसलिए किसी पदार्थ में किसी का अभाव बताया जा सकता है। यदि उसमें नास्तित्व गुण नहीं होगा तो हम कभी भी अभाव नहीं बता सकते हैं। हम कह सकते हैं कि यह कॉपी है किंतु यह नहीं कह सकते कि यह कपड़ा नहीं है।

कॉपी से अलग बात करें तो रजिस्टर होता है। रजिस्टर कॉपी से थोड़ा बड़ा होता है। हम कहेंगे कि यह कॉपी रजिस्टर नहीं है। यह कथन इसमें होता है या नहीं होता है? इसका मतलब इसमें नास्तित्व गुण रहा हुआ है पर द्रव्य, क्षेत्र,

काल, भाव की अपेक्षा से यह कॉपी नहीं है। स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से हम कहेंगे यह कॉपी है। पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से यह कॉपी नहीं है।

ध्यान में लेना, स्व का मतलब अपना और पर मतलब पराया। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से जैसे उसको होने का कथन किया जा सकता है वैसे ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से उसमें निषेध का भी कथन किया जा सकता है। बात कुछ जटिल हो गई। दार्शनिक हो गई। हर किसी के समझ में आ नहीं पाती, इसलिए कभी-कभी लोग स्याद्वाद को संशयवाद कह देते हैं, किंतु तत्त्वत: स्याद्वाद संशयवाद नहीं है।

सातवें और आठवें दिन उन्होंने गुरुदेव से स्याद्वाद को समझा और कहा कि गुरुदेव अब मुझे पूरा विषय समझ में आ गया। इसके बाद शायद वड़नगर या उज्जैन गुरुदेव पधारे थे। वे फिर खोजते हुए वहां पर पहुंच गए। उन्हें देखते ही गुरुदेव ने वकील साहब से कहा, अब भी कोई प्रश्न बाकी है क्या? उन्होंने कहा कि नहीं, आपने मुझ सप्तभंगी को जैसे समझाया, स्याद्वाद को समझाया, वैसी कोई किताब है तो नाम बता दो। मैं उस किताब को पढ़ना चाहता हूं। ध्यान देना, मुंह से जो समझाया जाता है, वह किताब नहीं समझा सकती है। किताब जड़ है। वह कैसे समझाएगी? उसमें लिखा हुआ पढ़ लो। किताब में तो आप लिखा हुआ पढ़ पाएंगे। समझ है तो पढ़ लो, समझ आएगा। नहीं समझ है तो समझेंगे नहीं तो 'नमो अरिहंताणं'। यह हकीकत है। आप में यदि समझ है तो किताब में लिखा हुआ समझ पाएंगे अन्यथा किताब खोलकर बैठ जाने से भी क्या होगा?

इसी से एक प्रसंग याद आ गया। प्रसंग है कि एक लड़का 28 साल का हो गया। उसकी शादी के लिए लड़कियां ढूंढ़ें तो मिलें नहीं। शादी के लिए लड़की नहीं मिल रही है। अब सोचा कि आधा बूढ़ा तो हो गया। बूढ़ा हो या नहीं हो लेकिन लोग ऐसा कहते हैं कि आधा बूढ़ा तो हो गया है। अब शादी नहीं होगी तो कब होगी? मां-बाप कह रहे हैं कि तू थोड़ा पढ़ा-लिखा होता तो अब तक हो जाती शादी। देख दो दिन बाद मेहमान देखने के लिए आ रहे हैं। तू ऐसा करना कि किताब खोलकर बैठ जाना। किताब खोलकर ऐसे बैठना कि पढ़ रहा है। किताब पढ़ते ही रहना। कोई पूछे तो भी 'हूं, हां' कर देना। मेहमान आए देखने के लिए। लड़का देखने के लिए आए। लड़के को देख रहे हैं, सुन रहे हैं, समझ रहे हैं

कि इतना पढ़ाई में लगा हुआ है। देखा कि लड़का तो बहुत होशियार है। चेहरा तो बहुत बढ़िया है। पर जैसे ही उसकी किताब देखी तो उलटी पकड़ी हुई थी। किताब को उलटा पकड़े हुए बैठा है। अब क्या करना है सा? क्या करना है अब? लड़की देनी है या नहीं देनी? उसके साथ लड़की की शादी करानी या नहीं करानी? (प्रतिध्वनि- अब लड़की नहीं देनी। शादी नहीं करानी) मेहमान बोलेंगे या नहीं बोलेंगे, आपने पहले ही कह दिया कि नहीं देना। नहीं करनी शादी।

यही मैंने कहा कि हमारी समझ है तो पुस्तक काम की है। हमारे में समझ नहीं है तो बढ़िया से बढ़िया शास्त्र किस काम का? मेरे को यदि बांग्ला नहीं पढ़नी आती है, गुजराती नहीं पढ़नी आती है, संस्कृत नहीं पढ़नी आती है, प्राकृत पढ़नी नहीं आती और मैं किताब खोलकर बैठ गया तो क्या पढ़ूंगा? कुछ भी मुझे समझ में नहीं आ रहा है। केवल दिखावा करने का होता है कि पढ़ रहा हूं। अत: हमारी समझ पर निर्भर है। हमारे में समझ है तो काम की होगी। समझ नहीं हो तो किताब से कुछ भी मिलने वाला नहीं है। 32 शास्त्र सिर पर ढो रहे हैं। एक नहीं पूरे 32 शास्त्रों को सिर पर लेकर चल रहे हैं तो क्या मिलेगा? 32 शास्त्रों की पूरी की पूरी पेटी माथे पर लेकर चल रहे हैं किंतु संस्कृत और प्राकृत भाषा को जानते नहीं हैं, फिर उनको साथ में लेकर चलने से क्या मतलब?

यही बात समझने की है। ध्रुवपदरामी हो स्वामी! माहरा, नि:कामी गुणराय, सुज्ञानी। मुझे विषय को थोड़ा चेंज करना पड़ा। विषय को थोड़ा परिवर्तित करना पड़ा। विषय परिवर्तन करना जरूरी था। यह सामान्य बात नहीं थी। यह भी बहुत गहरी बात थी। गुरुदेव और उनकी सात दिन तक बात चली और हम एक घंटे में ही करें तो एक घंटे में कैसे करें? स्याद्वाद की बात कर रहे हैं। सात दिन का काम एक दिन में, आठ दिन का कोर्स एक दिन में हो तो काम नहीं चलेगा। कुल मिलाकर यह बात स्पष्ट है कि ध्रुवपद की दिशा में यदि हमारी गति होती है तो ध्रुवपद हमें मिलता है।

भूलना मत, द्रव्य आत्मा को। द्रव्य आत्मा पर हमारा पूरा ध्यान केंद्रित हो जाए। शरीर से ध्यान हट जाए तो स्याद्वाद की समझ हमें प्राप्त होगी। यदि उसी प्रकार के ध्यान की अवस्था हमारी बनती रहेगी तो एक दिन हमारे सारे शरीर को, इंद्रियों को, मन को छोड़कर क्या बन जाएंगे?

हम सिद्ध हों, बुद्ध हों, मुक्त हों और संसार की माया का परित्याग करने वाले हों। वह अवस्था हमारे भीतर घटेगी, लेकिन जब तक नाटक करते

रहेंगे तब तक कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। नाटक केवल मन का मनोरंजन है। नाटक से हटकर सही रूप में आएं। आत्मा और शरीर के भिन्नत्व का भाव हमारा जिस दिन बोध की दिशा में आगे बढ़ जाएगा, उस दिन हम शरीर को किनारे कर देंगे, आत्मा में अवस्थित हो जाएंगे। जब कभी भक्ति में तल्लीन हो जाते हैं उस समय भूल जाते हैं कि मेरे पास कौन है, कौन नहीं है। वैसी ही तल्लीनता द्रव्य आत्मा में हो जाए फिर हमारे पर विपत्ति के पहाड़ टूट नहीं सकते। कठिनाइयां हमें परेशान नहीं कर सकती हैं। हम आराम की जिंदगी जीने वाले बनेंगे। ऐसा लक्ष्य बनाकर हम आगे बढ़ें। इसके लिए हमें प्रयत्न भी करना पड़ेगा। हमने जैन कुल में जन्म लिया है। ये बातें यहां नहीं समझ पाएंगे, नहीं सीख पाएंगे, तो कहां सीखेंगे? शरीर से अलग आत्म-अवस्था, देह से रहित देह में स्थित आत्मा को कहां समझेंगे? यदि हम अनुभव नहीं कर पाएंगे तो नींद में रह जायेंगे। हकीकत में हम आत्मा का वर्णन करने में समर्थ नहीं बनेंगे।

बंधुओ! हम चिंतन करें, मनन करें। संसार के जितने भी रिश्ते-नाते हैं, सब कहीं-न-कहीं हमें पीड़ित करने वाले होते हैं। कहीं-न-कहीं दर्द पैदा करने वाले होते हैं। जो मेरे भीतर लगाव है, जो मेरे भीतर आसक्ति है, जो रिश्ते हैं, उसको किनारे कर दो फिर सभी दुःख-दर्द हमसे दूर हो जाएंगे। यह कला यदि हम जैनी बनकर नहीं समझ पाए, नहीं जान पाए तो फिर कौन जान पाएगा? इस कला को हम जानें और रिलेशनशिप को, ये जो लगाव में हम जी रहे हैं परिवार के बीच में उससे दूर हटें। परिवार में रहते हुए भी परिवार से अलग जीएं।

भगवान महावीर दो साल तक नंदीवर्धन के कहने से रुके किंतु मालूम नहीं पड़ रहा है कि महावीर कहां पर है? वैसे ही हम साधना को आगे बढ़ावें और अपने भीतर रिश्ते-नातों का जो अनुराग भरा हुआ है, राग भरा हुआ है, उसको किनारे करके आत्मा से परमात्मा की दिशा में आगे बढ़ने का प्रयत्न करेंगे तो अपने आप में धन्य बनेंगे।

इतना ही कहते हुए विराम।

30 अक्टूबर, 2019

9

प्रीत न जाने साँझ सवेरा

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम म्हारो रे, और न चाहूं रे कंत।

कविता के भावों में, स्तुति के भावों में बहुत बड़ा बदलाव आ गया। कल हमने स्तुति की थी, 'ध्रुवपदरामी हो स्वामी! माहरा।' उसमें ध्रुवपद में रमण करने की बात हो रही थी। आज ऋषभ भगवान की स्तुति करते हुए 'ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम म्हारो रे, और न चाहूं रे कंत' कह रहे हैं। कविता के शब्द चाहे कुछ भी हों, स्तुति में शब्द चाहे कुछ हों, उनका भाव, उनका मर्म बहुत गहरा है। उसे नीचे की कड़ी में स्पष्ट किया कि दुनिया में प्रेम सगाई, प्रीत सगाई अमूमन लोग करते हैं, करते ही रहे हैं और करते ही रहेंगे किंतु हकीकत में वह प्रीत सगाई नहीं है। वह प्रेम नहीं है। प्रेम बहुत अलग चीज है। वासना, प्रेम से बहुत अलग है। एक को हम जहर कह सकते हैं और एक को अमृत। प्रीत आत्मा की ध्वनि है। प्रीत, आत्मा की झनकार है - आत्मा से उठा हुआ एक अध्यवसाय है।

मीरा को प्रीत लगी थी। वह प्रीत उनको अमर कर गई। मृगावती जैन शासन का एक ऐसा नक्षत्र है जिसकी प्रभु के प्रति ऐसी प्रीत लगी कि वह उसी में लीन हो गई। उस प्रीत ने उसको केवलज्ञान के निकट पहुंचा दिया। प्रीत और भक्ति शब्दों में अंतर है। दोनों की गहराई में जाएं तो कोई अंतर नहीं है। भक्ति बिना प्रेम के नहीं होती है। भक्ति में प्रीत होती है। प्रीत में भक्ति होती है। भक्ति में हुआ प्रेम आत्मा से आत्मा का मिलन है। वहां पर किसी प्रकार से अन्य विषय और वासनाओं को स्वीकार नहीं किया गया है।

गौतम स्वामी की प्रीत भी भगवान महावीर के प्रति अखंडित लौ के रूप में रही। उस प्रीत ने उनको भी केवलज्ञान के निकट पहुंचा दिया। उस प्रीत में केवल और केवल वही चीज नजर आती है, अन्य कुछ भी नहीं। जिसके भीतर ऐसी प्रीत प्रकट होती है वह धन्य हो जाता है। दुनिया से प्रेम करने वाले बहुत

लोग हैं किंतु वह प्रेम सच्चा नहीं है। उस प्रेम में कहीं-न-कहीं मिलावट है। कहीं-न-कहीं स्वार्थ का भाव आ जाता है। परमात्मा से जो प्रीत होती है, वह नि:स्वार्थ है। एक प्रश्न होता है कि संसारी जीव रागी होता है जबकि परमात्मा वीतरागी होते हैं फिर उनमें परस्पर प्रीत कैसे हो सकती है? गौतम स्वामी रागी थे, मृगावती रागी थी, उनमें राग था। वीतरागी और रागी का संबंध कैसे जुड़े? वीतरागी की तरफ से आपको कोई इनपुट नहीं मिलेगा। कोई रिस्पॉन्स नहीं मिलेगा। एकतरफा प्रीत करनी पड़ेगी।

कहते हैं कि एक हाथ से ताली नहीं बजती है किंतु बजानी पड़ती है मौका आने पर। दूसरा हाथ सहयोग नहीं देता है तो एक हाथ से भी ताली बजती है किंतु भक्ति तो एकतरफा ही होती है। हम सोचें कि भक्ति में भी परमात्मा का वीतराग, भगवान का हमें रिस्पॉन्स मिल जाएगा, मोटिवेशन मिल जाएगा तो हम भ्रांति में हैं। ऐसा होगा नहीं। एकतरफा प्रीत लगानी पड़ेगी। एकतरफा उदाहरण आपको देखना है तो अंजना जी को देखें। वह एकतरफा प्रीत पालते हुए चलती हैं। बहुत कठिन है। बहुत ही कठिन बात है कि संसारी जीव एकतरफा प्रीत पाले। आदान-प्रदान होता रहता है तो मित्रता बनी रहती है। प्रीत बढ़ती रहती है। अन्यथा मित्रता भी बनी नहीं रह पाती। सगाई संपन्न होती है, वार-त्योहार पर लेना-देना चालू रहता है। कभी मिठाई भेजो, कभी पोशाक भेजो, कभी कुछ भेजो, कभी कुछ भेजो। लड़के का जन्म हुआ तो कुछ भेजो। बीच में कुछ तीज-त्योहार हो गया तो कुछ भेजो और फिर लड़के की शादी होती है तो मायरा भरना वगैरह परस्पर कुछ-न-कुछ आदान-प्रदान बना रहता है। कहते हैं कि आदान-प्रदान से पारस्परिक प्रेम बना रहता है। किंतु तीर्थंकर देवों से यदि आप प्रीत लगाओगे तो यह सोचकर लगाना चाहिए कि पारस्परिक अनुदान वहां से नहीं होगा। केवल हमको ही एकतरफा समर्पणा देनी होगी। स्वयं को ही अर्पण करना पड़ेगा। यह नहीं सोचो कि उनकी तरफ से भी हाथ बढ़ेगा। उनकी तरफ से हाथ बढ़ने वाला नहीं है। हमें अपना हाथ बढ़ाना पड़ेगा।

आनन्दघनजी ऋषभदेव भगवान की स्तुति करते हुए निमग्न हो गए। 'ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम म्हारो रे, और न चाहूं रे कंत।' कंत कमनीय, जो कांत मनोज्ञ है, वह प्रिय है। मेरी कोई चाह नहीं है। कोई इच्छा नहीं है। कोई अभिलाषा नहीं है। ऋषभ जिनेश्वर मेरे प्रीतम हैं। मुझे और किसी की आवश्यकता नहीं है। हालांकि कविता में कहा गया है, 'रिज्यो साहेब संग न परिहरे रे

भांगेसादिअनन्त' यानी यदि परमात्मा तुष्ट हो जाए तो यह संबंध सदा-सदा के लिए स्थापित हो जाएगा। मैं पहले ही बोल चुका हूं कि परमात्मा की तरफ से कोई हाथ बढ़ाने की बात नहीं होगी किंतु परमात्मा की भक्ति से, परमात्मा की प्रीत से हमारे अध्यवसाय विशुद्ध होते हुए चले जाते हैं। बहुत स्पष्ट है कि 'जैसी संगत वैसी रंगत।' यदि हम परमात्मा की संगत में जाते हैं तो हमारे भीतर वही शांति पैदा होगी, वही समाधि पैदा होगी। तनाव वगैरह अपने आप दूर हो जाएंगे। रागी के पास जाएंगे तो राग का विवर्धन होगा। राग भाव बढ़ेगा। किसी चोर-उचक्के के साथ हो गए तो चोरी के दांव कैसे खेले जाते हैं, उस ओर हम प्रवीण हो सकते हैं। यदि जुआरी की संगत हो गई तो जुए में दांव खेलना सीखा जा सकता है। यह सीखने में आ जाएगा। परमात्मा की भक्ति से हमारे जीवन में सहजता, सरलता, निर्मलता, पवित्रता आदि गुणों का संचार होता है। वहां का वातावरण ऐसा होता है कि किसी के मन में परस्पर संघर्ष की बात पैदा ही नहीं होती। पहले से कोई संघर्ष होता है तो उसे भी व्यक्ति भूल जाता है।

चंड प्रद्योतन राजा एक ऐतिहासिक सम्राट हुए हैं। मृगावती पर जब उनकी दृष्टि पड़ी तो उन्होंने विचार कर लिया कि मृगावती मेरे महल में होनी चाहिए। राजवंशों का इतिहास इन बातों से भरा मिलेगा। जहां कहीं रूप देख लिया, मुग्ध हो गए और अपने अधिकार का उपयोग किया। भले कितने ही मनुष्यों की घात हो जाए, कितना ही पैसा बर्बाद हो जाए, कितना ही रक्त बह जाए किंतु मेरी मनोकामना पूरी होनी चाहिए। मेरा सामर्थ्य है। दुनिया की हर अच्छी चीज मेरे पास होनी चाहिए। इसके लिए युद्ध के नगाड़े बज जाते, मार-काट मच जाती। ऐसा ही चंड प्रद्योतन राजा ने किया कि मृगावती मेरे महलों में होनी चाहिए। इतिहास बताता है कि चंड प्रद्योतन राजा ने मृगावती के लिए युद्ध किया। जीते भी और आ गए मृगावती के महलों में। मृगावती विचार करने लगी कि मैं अपना बचाव कैसे करूं? उसने विचार किया कि अभी यह उन्मत्त है। अभी इसको कोई उपदेश दिया जाएगा तो वह कारगर नहीं होगा। अभी इसका दिमाग इसके काबू में नहीं है। इसके कंट्रोल में नहीं है। यह हकीकत है कि कामी व्यक्ति का मस्तिष्क, दिमाग उसके कंट्रोल में नहीं होता। उस समय उस पर काम हावी हो जाता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. के वैराग्य अवस्था से लेकर मुनि अवस्था का चित्रण यदि हम शाब्दिक रूप से देखें तो कभी किसी स्त्री

की तरफ नजर नहीं उठाना। नजरें झुकाये रहना। जवाब दे देना। उसके रूप-लावण्य को निहारने का प्रयत्न नहीं करना। बहुत टेढ़ी खीर है। बहुत कठिन काम है - चक्षु इन्द्रिय संयम। आकर्षक रूप सामने हो और आंख नहीं उठे! जिसका स्वयं पर कंट्रोल होता है वही व्यक्ति ऐसा करने में समर्थ होता है। यदि कभी कोई बहिन आलोचना आदि के लिए भी भाव रखती है तो साथ में एक भाई होना जरूरी है। बिना साक्षी के बात नहीं करना। मुनियों की मर्यादा है। मुनि मर्यादा का पालन बहुत दृढ़ता से गुरुदेव किया करते थे। पानी के पहले पाल बांधी हुई रखनी चाहिए। पानी सिर से निकल जाए और बाद में पाल बांधने का काम करें तो उसकी क्या उपादेयता? समझदार किसान खेत के चारों तरफ पहले ही पाल बांध लेता है ताकि पानी बाहर नहीं निकले। वैसे ही पूज्य गुरुदेव का लक्ष्य रहता और चौकस सावधानी रखते। कहीं पर भी साधु स्त्रियों के साथ, महासतियों के साथ बिना साक्षी के नहीं बैठे। ये शिक्षा भी रहती है। सावधानी भी रहती है। क्योंकि यह एक ऐसी बीमारी है जिसे समझना बहुत कठिन होता है।

मृगावती विचार करने लगी कि अभी मैं अपना बचाव कैसे करूं? उसने नीति का प्रयोग किया। कहा- राजन्! अब तो मैं आपके ही अधीन हूं किंतु अभी पति शोक से मेरा मन विक्षुब्ध बना हुआ है। मुझे थोड़ा मौका मिले, थोड़ा समय दिया जाए। चंड प्रद्योतन राजा खुश हो गया कि बहुत आसानी से मृगावती मेरी बात मान गई। वैसे देखें तो मृगावती ने कोई स्वीकृति नहीं दी किंतु चंड प्रद्योतन राजा उससे राजी हो गया। वह विचार करता है कि स्त्री यदि मन से तैयार होती है तो ज्यादा ठीक है। जबरदस्ती कुछ भी किया जाता है तो उसका रूप अलग होता है और मन से जो कार्य होता है, उसकी स्थिति अलग होती है।

मृगावती अंतरंग भावना भाने लगी। तपस्याएं चालू कर दी। योग ऐसा बना कि भगवान महावीर चलकर पधार जाते हैं। मृगावती ने जैसे ही भगवान का आगमन सुना चंड प्रद्योतन राजा से कहती है कि राजन्, भगवान महावीर का आगमन हुआ है। मेरी इच्छा है कि मैं उनके दर्शन करूं, उनको वंदन करूं और उनकी देशना का श्रवण करूं। क्या करना चाहिए राजा को? जाने देना चाहिए क्या? नहीं जाने देना चाहिए या जाने देना चाहिए? चंड प्रद्योतन राजा यदि सोच ले कि कहीं वहां ले गया और भगवान के सामने मेरी शिकायत कर दी तो मैं क्या करूंगा? कई लोगों की आदत होती है कि घर में नहीं चलती है, वे कहां चलाने की कोशिश करते हैं? (प्रतिध्वनि- म.सा. के पास) बेटा, गुटका

या तंबाकू खा रहा है। कहा होगा नहीं माना और म.सा. सामने मिल गए तो कहते हैं कि म.सा. इसको सौगंध करवाओ। म.सा. इसको सौगंध दिलवाओ। अब पूरी ताकत किसमें आ गई? म.सा. के पास डंडा है। किससे सौगंध करा देना? म.सा. किससे सौगंध करा देंगे? करा भी देंगे तो वह पाल लेगा, यह फाइनल है क्या? (प्रतिध्वनि- नहीं)

मेरी जहां तक सोच रहती है, ऐसे समय में मैं तो बात को गौण कर देता हूं। अभय जी यहां बैठे हुए हैं। इनकी सासू जी ने म.सा. से अपने बेटे को पच्चक्खाण देने को कहा। इनके साले जी लगभग तीन सौ रुपये का पान-पराग का डब्बा एक दिन में खाली कर देते थे। जैसा मुझे स्मृति में है, लगभग बीस साल पुरानी बात है। बीस साल से भी ज्यादा पुरानी बात है। 22-23 साल पुरानी होगी। 1997 की बात है। मैंने उस समय उनसे कुछ नहीं कहा। ये भी नहीं कहा कि क्या बोल रही हैं तुम्हारी माताजी? यह भी नहीं कहा कि पच्चक्खाण कर लो। उनकी माताजी ने दया का मासखमण किया और संयोग से मेरा उधर जाना हुआ। तब वह भाई चलाकर बोला कि म.सा. मुझे पान-पराग, गुटका का त्याग करा दीजिए। मैंने कहा कि भाई, देख लो, सोच लो। पालना आपको है। मुझे पच्चक्खाण कराने में देर नहीं लगेगी। उसने कहा कि म.सा. सोच लिया। आपने उस दिन कुछ नहीं कहा। उस दिन से मेरे दिमाग में बात पैठ गई कि अब तो मुझे छोड़ना ही है। उस समय एक झटके में उसने त्याग कर दिया। हमने बहुत बार देखा है कि बच्चा भी अपने पिता के लिए कहता है कि म.सा.! पापा को सौगंध करवाओ। उसे लगता है कि म.सा. के कहने से पापा मान लेंगे। पापा को लगता है कि म.सा. के कहने से बच्चा मान लेगा। वे पूरे प्रेशर से कहते हैं कि पच्चक्खाण कराया जाए।

चंड प्रद्योतन राजा को भय नहीं लगा क्या कि भगवान महावीर के पास ले जाकर मुझे यदि खड़ा कर दिया तो मैं क्या करूंगा? किंतु मृगावती ने ऐसा सोचा नहीं था। उसने सोचा दर्शन करने के लिए। मृगावती ने चंड प्रद्योतन राजा से जैसे ही निवेदन किया चंड प्रद्योतन ने विचारा कि मुझे अभी मृगावती को खुश रखना चाहिए। इसकी भावना है तो इसको मौका देना चाहिए कि ये भगवान के दर्शन करे।

उसने कहा कि तुम ही क्यों मैं भी चलूंगा। राजा ने सोचा कि हो सकता है अकेली कहीं चली जाए! तो कहा कि मैं भी चलूंगा। वे गये और

भगवान महावीर के समवसरण में बैठे। प्रभु की देशना चली। मृगावती अंत में खड़ी होती है। 'आलितेजं भंते! लोए, पलितेणं भंते! लोए।' प्रभु ये संसार धू-धू करके जल रहा है। मैं अपनी आत्मा को इससे बचाना चाहती हूं। राजकुमार छोटा है उसे मैं चंड प्रद्योतन राजा की शरण में रखती हूं, उनकी गोद में रखती हूं और मैं चंड प्रद्योतन राजा से निवेदन करूंगी कि वे मुझे अनुमति दें। ऐसा वातावरण बना और अनुमति हुई।

भाई मनसुखलाल जी भंडारी परिवार आज उपस्थित है। मैं धुलिया गया। वहां से लगभग 24-25 किलोमीटर की दूरी पर उनका गांव होगा। उन्होंने विनती की - ''म.सा.! हमारे गांव में आ जाओ। बच्ची दीक्षा लेने की भावना रखती है। हम आज्ञा पत्र सौंपना चाहते हैं।''

उस समय वहां जाने का प्रसंग बना और आज्ञा पत्र हुआ। उन्होंने कहा कि हमें थोड़ा समय लगेगा। हम यह मानकर चलते हैं कि जब तक व्यक्ति का अपना अंतराय कर्म नहीं टूटे तब तक कोई-न-कोई बाधा खड़ी हो जाती है।

आज वह परिवार उपस्थित है। उन्होंने सहर्ष मुमुक्षु बहिन रीना भंडारी की दीक्षा के लिए स्वीकृति दी है। (एक श्रावक कहते हैं, दीक्षा जोधपुर में ही संपन्न हो) आप बोल रहे हो कि दीक्षा जोधपुर में ही संपन्न हो तो आप पूछ लो उनसे ही। अध्यक्ष साहब, आप जानते हो क्या मनसुखलाल जी भंडारी को? अध्यक्ष साहब की तमन्ना तो बहुत है। जोधपुरवासियों की तमन्ना तो है। एक गुलाबचंद जी की दीक्षा कराकर मन ज्यादा बढ़ा लिया कि हां, हमने जोधपुर की दीक्षा भी करा ली। दीक्षा बढ़ा ली। हो चाहे कैसे भी किंतु हमने करा ली है। भंडारी परिवार ने उसके लिए 25 अप्रैल की स्वीकृति दी है। उन्होंने कहा तो यह जरूर कि क्षेत्र का कुछ मालूम पड़ जाये। इस पर मैंने कहा, अभी 11 फरवरी के क्षेत्र का भी मालूम नहीं पड़ा है तो 25 अप्रैल की अभी कैसे क्या बतावें? भावनाओं की बात बता रहे हैं।

उधर मृगावती चंड प्रद्योतन से कह रही है, इधर इन्होंने आज्ञा और दीक्षा की स्वीकृति अपने आप में प्रदान की। मृगावती की दीक्षा होती है और परमात्मा से ऐसी प्रीत लगती है कि 'जो सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो' तुझ में मुझमें भेद न पाऊं, ऐसा हो संधान। तुम अलग नहीं हो और मैं अलग नहीं हूं। जो तुम्हारा रूप है, वही रूप मेरा है। जब वही रूप अपना नजर आने लग जाता है तब अपने भीतर दिव्यता व्यक्त होने लगती है। अपने भीतर

हम अनुभव करने लग जाते हैं। वे क्षण निराले होते हैं। मृगावती की भावना फलीभूत हुई। एक बार भगवान में अन्तर् से इतनी तल्लीन हो गई कि समय का भी अनुमान नहीं रह पाया। जब भावों में आदमी चलता-बढ़ता है तो उस समय इसमें सब बंध जाते हैं, सब रुक जाते हैं। छंद मंद पड़ जाते हैं। समय का कोई अता-पता नहीं पड़ता है।

हालांकि कहने वालों ने कह दिया कि रात पड़ गई, किंतु ऐसा नहीं हो सकता। हाँ, विकाल हो गया। ऐसा कह सकते हैं। जैसे 4 बजे का अपन एक समय मानकर चलते हैं, उससे थोड़ा विलंब हो गया। थोड़ा विलंब से पहुंचने पर महासती चंदनबाला जी द्वारा उपालंभ मिला। चंदनबाला जी ने कहा कि महासती जी! आप खानदानी हो। मर्यादा का पालन आपके द्वारा होते रहना चाहिए। मर्यादा का अतिक्रमण उचित नहीं होता। शब्द चाहे कुछ भी रहे होंगे किंतु ये कुछ शब्द मृगावती के लिए विचारणीय बन गए। मृगावती सोचने लगी कि मेरी एक छोटी-सी गलती गुरुवर्या श्रीजी को कितना अनुताप देने वाली बन गई! उनको अपनी आत्मा पर, अपनी प्रवृत्ति पर पश्चात्ताप होने लगा। आज का युग हो तो कहते हैं कि म.सा.! मेरे को ही बोलते हैं। जब देखो मैं ही निशाने तीर पर रहती हूं। मैंने एक दिन लेट कर दिया तो कौन-सी बड़ी बात हो गई है? क्या ऐसा कोई बुरा कर दिया, क्या बिगाड़ हो गया? मैंने जान-बूझकर थोड़ी ही किया। पता नहीं हम कितने तर्क प्रस्तुत कर देते हैं अपनी गलती को ठीक बताने के लिए। हम बताना चाहते हैं कि नहीं, मेरी गलती नहीं है। ऐसा होना तो सामान्य है। हो गया तो हो गया। इतनी कौन-सी गंभीर बात हो गई?

आचार्य पूज्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि नौका में हुए एक छोटे-से सुराख की उपेक्षा की जाए तो वह आगे जाकर नौका को डुबोने वाला हो सकता है। कल मैंने एक बात की थी। कल या शायद परसों ही यह बात कही थी कि कोई भी पच्चक्खाण छोटा या बड़ा नहीं है। हमको छोटा लग रहा है किंतु मौके पर वह भी बड़ा हो जाता है। वैसे ही मर्यादा में किसी को छोटा मत समझो।

सीता जी जिस कुटीर में ठहरी हुई थीं, उसके बाहर लक्ष्मण जी ने एक रेखा खींची। जैसा बताया जाता है कहा कि इस रेखा से बाहर मत निकलना। आप सोचो और विचार करो कि क्या था उस रेखा में? एक लकीर खींच दी, रेखा खींच दी। रेखा खींचने मात्र से क्या हो जाता है? किंतु जिन्होंने भी रामायण फिल्म देखी हो, पुराने जमाने में देखी हो तो रावण जैसे ही उस लक्ष्मण

रेखा पर पैर रखता है उसके पैरों में करंट लगने लग जाता है। रामायण देखी या नहीं देखी? (प्रतिध्वनि- देखी है) हां, रामायण तो देखी ही है। वह जमाना कुछ और ही था। मतलब कि व्याख्यान बंद हो जाए तो हो जाए, रामायण नहीं छूट सकती है। इतना क्रेज था रामायण का। म.सा. 10 से 11 बजे व्याख्यान देते या 9 से 10 या 10 से 11? 9 से 10 बजे महाराज व्याख्यान देते थे। व्याख्यान कितने बजे होता? व्याख्यान हो जाए तो हो जाए, नहीं तो रविवार के दिन व्याख्यान की छुट्टी। अब वह बात नहीं रही किंतु उस समय शुरू में आई थी। उस समय लोगों में इतना क्रेज था रामायण के प्रति। उतना क्रेज शायद महाभारत के प्रति नहीं रहा होगा।

मेरे कहने का आशय है कि एक रेखा लक्ष्मण ने खींची। रावण उसके भीतर पांव धरने की हिम्मत नहीं रखता और पांव रखता है तो करंट लगता। झटका लगता। क्या थी वह चीज? क्या थी वह कार? वह कार संकल्प की कार थी। वैसे कुछ भी नहीं है किंतु संकल्प था। आप विचार करो कि लक्ष्मण का संकल्प कितना मजबूत होगा कि जिस संकल्प से उसने कार लगाई, उसके भीतर कोई दूसरा व्यक्ति घुस नहीं सके। जब तक सीता उसके भीतर रहीं तब तक रावण की भी हिम्मत नहीं कि उनको उठाकर ले जाए। संकल्प की शक्ति कितनी मजबूत होती है? हम अपने मन के संकल्प को ढीला-ढाला कर देते हैं। एक बार सोचते हैं कि ऐसे-ऐसे करते हैं। ऐसा विचार करते हैं और दूसरी बार धीरे-धीरे डाउन होते जाते हैं। एक बार तो मजबूती से सोचते हैं किंतु दूसरी बार हमारे ही विचार, दीमक बन जाते हैं। हमने उस स्तंभ को खड़ा किया, हमने वो संकल्प किया, हमने ही उसमें दीमक लगाना शुरू कर दिया कि अरे! ऐसा थोड़ी न होता है, वैसा थोड़ी न होता है। मन के कई विचार, संकल्प को शिथिल करना शुरू कर देते हैं। फिर उस संकल्प की दृढ़ता बनी नहीं रह पाती है।

लक्ष्मण का संकल्प बहुत मजबूत था। यह मेरे मुंह की बात मत समझना। हमने जंबू कुमार चारित्र में भी सुना कि जंबू कुमार ने एक संकल्प किया कि यह संपत्ति आज की रात नहीं जाए तो चोरों के पैर चिपक गए। क्या था उस संकल्प में? आत्मा का ओज, ब्रह्मचर्य की आभा, सत्य की निष्ठा। जहां ऐसी सत्यता होती है, निष्ठा होती है, ब्रह्मचर्य की आभा होती है, क्या मजाल कि उससे एक कदम भी कोई आगे बढ़ा ले। लक्ष्मण रेखा को रावण लांघ न सका तो उसने नया पैंतरा खेला। उस पैंतरे से वह सीता को उठाकर ले गया।

मैं बात बता रहा था मर्यादा की। मर्यादा की रेखा तीर्थंकर देवों के संकल्प की रेखा है। हमारे आचार्य और मुनियों द्वारा आचरित की गई है। उस मर्यादा की रेखा का यदि हम उल्लंघन करें तो हमारे स्वयं के लिए घातक होती है। हमारा ही संकल्प हमारी मर्यादा को छिन्न-भिन्न करने वाला हो जाता है। हमारे ही विचार हमारी मर्यादाओं को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। वह नहीं होना चाहिए। आनन्दघनजी, ऋषभदेव भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं- 'ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम म्हारो रे और न चाहूं रे कंत'। और कुछ भी नहीं चाहूं। 'एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाए।' एक को साधने का प्रयत्न करने पर उसमें पारंगत हो जाएंगे। सभी जगह हाथ मारेंगे कि ये भी हाथ में आ जाए, ये भी मिल जाए तो सारी चीजें हाथ से छूट जाएंगी।

गुरुदेव एक आख्यान फरमाया करते थे कि किसी व्यक्ति को यह बताया गया कि 100 फीट यदि खोद लोगे तो कुआं हो जाएगा और उसमें से पानी आ जाएगा। उसने विचार किया कि 100 फीट खुदाई करनी है, उसने दो-दो फीट पचास जगह खुदाई कर दी। सारी मिलाकर कितनी खुदाई हो गई? (प्रतिध्वनि- 100 फीट) दो-दो फीट पचास जगह खुदाई की तो कितना पानी निकला? (प्रतिध्वनि- कुछ भी नहीं निकला) हमने बहुत-सी जगह शक्ति को लगाया। बहुत जगह श्रम लगाया तो वह श्रम फालतू गया या लाभकारी हुआ? उस मायने में विचार करें तो वह मेहनत, वह परिश्रम हमारा सार्थक नहीं हुआ। वही मेहनत, वही परिश्रम यदि एक ही जगह खोदने में लगाया होता तो क्या होता? अर्जुन की दृष्टि एक जगह थी तो कार्य को साधने वाली बनी। बनी या नहीं बनी? वह कार्य को साधने वाली बनी। दुर्योधन की दृष्टि बिखरी हुई थी तो वह काम नहीं कर पायी। वैसे ही संकल्प की शक्ति एकदिशानुगामी होती है। फिर उसमें बार-बार इधर-उधर के विचार पैदा नहीं होने चाहिए। वही दृढ़ता अंतिम क्षणों तक रहनी चाहिए।

एक सूत्र है- 'जाए सद्धाए निमवंतो, तमेव अणुपालिया।' हे साधक! जिस उमंग से, जिस उत्साह से, जिस उल्लास से तुम इस साधु जीवन को, इस त्याग और प्रत्याख्यान के जीवन को स्वीकार कर रहे हो, उसकी पालना भी वैसी ही दृढ़ता से होनी चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि पच्चक्खाण लेते वक्त तो उत्साह बहुत हो, पर पालन करते हुए मन शिथिल हो जाए। ऐसा होगा तो रुपये के भाव चवन्नी में बिकेंगे। यह मजे की बात नहीं होगी। जो मर्यादा पर दृढ़

रहेगा, मर्यादा का महत्त्व समझेगा, वह कभी रुपये को चवन्नी करने की कोशिश नहीं करेगा। वह चाहेगा कि रुपये का सवा रुपया मिले। नहीं तो रुपये से कम एक पैसा भी कैसे लूं? रुपया बदलना हो तो रुपये के बदले रुपये होगा या नहीं होगा? या उससे कम करेंगे? कम क्यों करें? फटा हुआ हो या कुछ कटा हुआ हो तब तो 12 आना, 14 आना, चाहे जितने में भी बिके उसको बेच देंगे किंतु रुपया सही है तो एक रुपये से कम में क्यों बेचें? ऐसे ही कोई नहीं बेचना चाहेगा।

किसी के हाथ में 100 रुपये का नोट आ गया, दो हजार रुपये का नोट हाथ में आ गया तो उसे कितने में बेचेगा? 100 रुपये को 100 रुपये में और दो हजार को 2 हजार रुपये में बेचेगा। उससे कम में बेचने की तैयारी होगी नहीं। वैसे ही हमारी बात होनी चाहिए। त्याग और पच्चक्खाण की बात होनी चाहिए। मर्यादा की बात होनी चाहिए कि उस मर्यादा का मूल्य कभी भी कम नहीं होना चाहिए। हम उसका जितना मूल्य बढ़ा सकें वह बहुत अच्छी बात होगी। मूल्य यदि बढ़ेगा तो हमारे भावों के आधार पर बढ़ेगा। हमारे भाव शिथिल नहीं होंगे, हमारे विचारों में उतार-चढ़ाव नहीं होगा और विचारों में दृढ़ता रहेगी तो भाव बराबर बढ़ेंगे।

ऋषभदेव भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया है- 'ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम म्हारो रे।' मेरा प्रीतम मुझे चाहिए। और कुछ नहीं चाहिए। केवल तुम्हारी भक्ति। कब करनी भक्ति? भक्ति करूंगा तेरी सांझ सवेरे, ध्याऊंगा तुझे ध्याऊंगा...। कब करनी भक्ति? भक्ति का प्रवाह दिन-रात चौबीसों घंटे चलते रहना चाहिए। निरन्तर चलना चाहिए। सांझ-सवेरे तो गीत में बोला गया। सांझ-सवेरे की भक्ति दिखावे की भक्ति होती है। भक्ति कैसी होनी चाहिए? 'कबहु न विसरुं हो चितारुं नहीं सदा अखंडित ध्यान' कैसी होनी चाहिए भक्ति? बोलो - कैसी होनी चाहिए? 'कबहु न विसरुं हो चितारुं नहीं सदा अखंडित ध्यान' कभी न विसरूं। कभी भूलूं ही नहीं तो याद करने की नौबत ही क्यों आवे? फिर याद ही क्या करना? कोई कहे कि बावजी आपकी याद बहुत आएगी। क्या बोलते हैं लोग कि महाराज जी! आपके जाने के बाद बहुत याद आएगी। इसका मतलब है कि भूलेंगे जरूर। भूलेंगे तो याद आएगी। भक्ति रम जाय जीवन में तो कभी भूलेंगे नहीं। जो चीज रम गई, उसको क्या याद करना और क्या भूलना?

अच्छा यह बताओ छत्तीसगढ़ वाले भाई साहब! क्या नाम है

आपका? आप बताओ कि खून हमारी नाड़ी में चलता है ना? आपकी 54 साल की उम्र हो गई है ना? हां तो 54 साल की उम्र में कितनी बार विचार आया कि नाड़ी में खून जारी है या नहीं है? यह विचार आपने कितनी बार किया? अरे! घबरा रहे हो। घबराइए मत। अचानक किसी को खड़ा कर दिया जाता है तो वह घबरा जाता है कि पता नहीं अब क्या होगा! क्या हो गया है? डॉक्टर साहब! आप बोलो, कभी ऐसा विचार आया क्या कि नाड़ी में खून चल रहा है या नहीं चल रहा है? क्या मन में डाउट होता है कि खून चल रहा है या नहीं चल रहा है, देखें तो सही। यह देखते हैं क्या कि नाड़ी चल रही है या नहीं चल रही है? थोड़ा फर्क हो तो ठीक किंतु नाड़ी चल रही है। अध्यक्ष साहब नाड़ी चलती है या नहीं चलती है? नाड़ी कहां चलती है? किससे चलती है? नाड़ी चलते-चलते रुक जाए, नाड़ी नहीं चले तो क्या होता है? धड़ाम से गिर जाता है। गिर जायेगा या नहीं गिर जायेगा आदमी?

यह संदेह नहीं होता है कि मेरी नाड़ी चल रही है या नहीं चल रही है? यह संदेह नहीं होता है कि मेरी नाड़ी में खून चल रहा है या नहीं चल रहा है? यदि कोई कठिनाई हो तो झुनझुनाहट हो गई, फलाना हो गया। नहीं तो याद आए नहीं कि नाड़ी में खून चल रहा है या नहीं चल रहा है? वैसे ही भक्ति होनी चाहिए। त्याग-पच्चक्खाण में ऐसे मग्न हो जाना चाहिए, त्याग-मर्यादा में ऐसे रम जाएं कि फिर कभी याद करने की नौबत ही नहीं आए। भूले तो याद आवे! भूले तो याद करना पड़े कि अरे! क्या पच्चक्खाण लिया था, याद नहीं आ रहा है। म.सा. से कुछ तो पच्चक्खाण लिया था। अब क्या लिया था मुझे याद नहीं आ रहा है। लिया तो था पर क्या लिया, अब पता नहीं, भूल गया। नहीं भूलेंगे तो याद करेंगे ही नहीं। नहीं भूलेंगे तो याद करने की बात ही नहीं बनेगी।

बंधुओ! आनन्दघनजी जिस समय भक्ति में तल्लीन होते उस समय उनके भीतर से जो स्रोत प्रवाहित होता, भक्ति की सरिता प्रवाहित होती, वह स्तुति बन जाता। वह कविता बन जाती। हम ऐसी भक्ति की सरिता में प्रवाहित होकर तल्लीन हो जाएं। हमारी संयमी मर्यादाओं का और हमारे त्याग और प्रत्याख्यान का कहीं-से-कहीं तक समझौते की बात नहीं आनी चाहिए। ऐसा हम यदि प्रयत्न करते हैं तो हमारी भक्ति, शक्ति वाली बनेगी। शक्ति के साथ उसमें अनुरक्ति बनेगी। अनुरक्ति के साथ उसमें विरक्ति के फूल खिलेंगे और उसकी सुगंध हमें प्राप्त होगी। हम ऐसा प्रयत्न करें। हमारी ऐसी भक्ति होगी तो

आगे बढ़ेंगे।

भाई मनसुखलाल जी भंडारी और पूरा परिवार बहिन रीना भंडारी की दीक्षा की जो स्वीकृति दी, वे परिवार वाले भी उस पुण्य के लाभ को अर्जित करने वाले, उस पुण्य के लाभ को कमाने वाले बनेंगे। अब यह दीक्षा प्रसंग समय के साथ कहां हो पाता है और कहां कौन-सा क्षेत्र मेरे विचरण का रहता है, उसके हिसाब से हम बता पाएंगे। यह समय के साथ ज्ञात हो पाएगा।

फिलहाल इतना ही कहते हुए विराम।

31 अक्टूबर, 2019

10

अवसर लाखीणो

पंथड़ो निहालूं रे बीजा जिन तणो रे...

ज्ञान पंचमी है। 'णाणस्स सव्वस्स पगासणाए' अर्थात् ज्ञान का सर्व रूप से प्रकाशन करो। ज्ञान को प्रकट करो। दीये में तेल है, बाती है और ज्योति भी है, फिर भी ज्योति को प्रकट करने की आवश्यकता रहेगी। हमारा शरीर दीया है। इसकी चेतना बाती है और हमारी समझ या हमारी बुद्धि तेल है। बस ज्ञान का एक स्पर्श लगे तो उसमें आलोक प्रकट हो जाए। हमारे भीतर ज्योति पैदा हो जाए। किंतु यह बात भी बताई गई है कि 'अन्नाणमोहस्स विवज्जणा य' यानी कि जब तक अज्ञान रहेगा, मोह रहेगा, राग-द्वेष रहेगा, तब तक ज्ञान सर्व रूप से आलोकित नहीं हो सकता।

यही बात आनन्दघनजी ने प्रभु की स्तुति करते हुए कही कि-

'जे तें जित्या रे ते मुझ जीतियो रे, पुरुष किश्युं मुझ नाम। पंथड़ो...

यानी कि भगवान आपने जिन को जीत लिया। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि 18 दोषों को आपने जीत लिया। वे हारे हुए सारे दोष हम पर पलटवार किये हुए हैं। हम पर हावी हो रहे हैं। हम उनसे हारे हुए हैं। हार चुके हैं।

अभी आप सुन रहे थे कि क्रोध कैसे आ जाता है? जिसको नहीं लाना चाहते, वह आ जाता है और जो होना चाहिए, वह नहीं हो पाता है। एक जगह मैंने पढ़ा कि दोषों की तरफ, नकारात्मक सोच की तरफ व्यक्ति का रुझान जल्दी होता है, आसानी से होता है। तत्काल उस दिशा में उसकी प्रवृत्ति हो जाती है। उसके लिए वह विचार नहीं करता है। तत्काल प्रवृत्ति कर बैठता है।

नीति में कहा गया है कि कोई भी अच्छा विचार आए, उसको तत्काल संपन्न किया जाना चाहिए। यदि मन में विचार आ गया कि मुझे सामायिक करनी है तो कर लेनी चाहिए। मुझे आज उपवास करना है तो कर लेना चाहिए,

संवर करना है तो कर लेना चाहिए। इस प्रकार से कोई भी शुभ भाव, शुभ अध्यवसाय पैदा होने पर विलंब नहीं करना चाहिए। अविलम्ब उन्हें पूरा करें। उन पर सोचने-विचारने में समय व्यतीत नहीं करना चाहिए। मुझे दीक्षा लेनी है। क्या करना है? सोचना चाहिए कि लूं या नहीं लूं? क्या होगा? जैसे ही सोच में पड़े कि भाव गिरेंगे या बढ़ेंगे? (प्रतिध्वनि- भाव गिरेंगे) भाव गिरते जाएंगे। ये-ये कठिनाई है। ये पारिवारिक स्थिति है। ये है, वो है, वो है। कई बातें हमारे सामने आ जाएंगी। दूसरे क्षण विचार करो कि एक डेड बॉडी पड़ी है। लोग डॉक्टर को बुलाने की कोशिश कर रहे हैं। डॉक्टर आता है और कहता है कि कुछ नहीं है। वह डेड बॉडी हमारी है, मेरी अपनी है। दीक्षा के समय मैं सोच रहा था कि दीक्षा ले लूंगा तो परिवार का क्या होगा? कैसे होगा? अब सोचने वाला कौन? अब कौन है सोचने वाला? अब कौन सोच रहा है कि परिवार का क्या होगा?

हम किसी भी विषय पर समाधान चाहें तो समाधान है किंतु हमारा मन जल्दी से समाधान लेता नहीं है। यही समाधान देंगे ना कि वह तो अपने वश की बात नहीं है। वह तो मौत आ गई। मर गया तो उसका उपाय क्या हो सकता है? तो फिर उपाय किसका हो सकता है? उपाय कुछ करना चाहो तो उपाय होता है। उपाय करना ही नहीं चाहो तो फिर कोई उपाय होगा नहीं। हमारे समाधान का गणित क्या है? जो मैं समझ रहा हूं, जो सोच रहा हूं, उसके मुताबिक हो तो समाधान हो गया। अन्यथा हमें कितना भी तार्किक, बौद्धिक समाधान मिल जाये हम उसे नकार देते हैं। स्वीकार नहीं करते।

धन्ना जी के भीतर दीक्षा के भाव पैदा हुए। वे नहा रहे थे। स्नान कर रहे थे। स्त्रियां नहला रही थीं। नहाते-नहाते ही सुभद्रा की आंख से आंसू की एक गर्म बूंद गिरी और धन्ना जी एकदम से चौंके कि क्या हो गया? सुभद्रा के आंसू देख उन्होंने उनसे वार्ता की। वार्ता का क्या परिणाम आया? बताया जाता है कि जैसे थे, वैसे ही उठ गए। कपड़े बदलने की फुरसत भी किसको? कोई विलंब करने की जरूरत नहीं है। उनको अनुमति कितनी देर में मिली? हमारा मन यदि सुदृढ़ होता है तो अनुमति मिलने में क्या देर लगे? हमारा मन ही कच्चा हो तो अनुमति मिल भी जाये तो क्या होगा?

मैं दूर नहीं जाता। इसी जोधपुर में आचार्य प्रवर पूज्य श्री नानालाल जी म. सा. के सत्सान्निध्य में दीक्षाएं हो रहीं थीं। एक वैरागी के लिए संघ के लोग चाहते थे कि उसकी दीक्षा भी हो जाये। उसके नानाजी आये हुए हैं। वे यदि

तैयार हो जायें तो दीक्षा हो सकती है। उनको समझाया गया। वे गंभीर श्रद्धानिष्ठ श्रावक थे। उन्होंने कहा कि उसकी तैयारी हो तो मैं इसी प्रसंग पर दीक्षा करवा देता हूं। यद्यपि वैरागी पहले तैयार था किंतु जब उस समय उससे पूछा गया तो वह विचार में पड़ गया। विचार में पड़ा तो दीक्षा विचारणीय बन गयी। खास बात अपने मन की है।

रिया गुलेच्छा ने विचार किया और मन को संकल्पित किया। मन मजबूत किया तो परिवार वालों ने 11 फरवरी को उनकी भी दीक्षा की स्वीकृति कर दी। कौन-सी तारीख की स्वीकृति हुई? (प्रतिध्वनि- 11 फरवरी) इसका स्वीकृति-पत्र आज मिला है। पहले तो मयंक जी सेठिया और उसकी बहिन ज्योति की दीक्षा तिथि तय हुई थी। अब इनके दीक्षा की भी स्वीकृति मिली है। हमारे मन में पहले तसल्ली होनी चाहिए। हमारे में विश्वास होना चाहिए कि मेरा मन क्या बोल रहा है? मैं कब तक दीक्षित हो जाऊंगा? उसका एक वातावरण बनता है। एक तैयारी होती है। वह तैयारी अपने आप ही अपना प्रभाव डालती है। हमारा मन कमजोर होता है तो मन ऊंचा-नीचा होता रहता है।

ज्ञान पंचमी ज्ञान के लिए है। ज्ञान को प्राप्त करने के लिए है। हम मनुष्य बने हैं किंतु सच्चाई का ज्ञान या सच्चा ज्ञान हमें अभी अनुभूत हुआ! जन्म लेने वाला मरेगा, ये फाइनल है या इसमें भी कोई संशोधन या सुधार है? जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है या वह सदा अजर-अमर रह सकता है? (प्रतिध्वनि- अमर-अजर नहीं रह सकता है) मृत्यु निश्चित है। वह अजर-अमर नहीं रह सकता है। क्या हमको भी लगता है कि हमारी मृत्यु भी होगी? शायद नहीं। जब भी व्यक्ति किसी को श्मसान में जलाकर आता है तो उसको ऐसा नहीं लगता कि मैं भी मरूंगा। मैं भी जलाया जाऊंगा। यह सोच उसके भीतर पैदा नहीं होती। कइयों को होती होगी किंतु थोड़ी देर के लिए। जैसे ही श्मशान में जलाकर आया, स्नान किया, वह विचार उतर गया। वह विचार धुल गया। ये सच्चाई है। ये भी सच्चाई है कि हम संसार में जन्म-मरण करते रहे हैं और अज्ञान के कारण अभी तक संसार के दु:खों का वेदन करते रहे हैं। जिस दिन सच्चा ज्ञान पैदा हो जायेगा कि इस संसार की कितनी कीमत है। कीतनी कीमत है इसकी?

मनुष्य के जीवन की भी कोई कीमत पूछे तो क्या कीमत है? जब तक जिंदा हैं तब तक सारी रौनक है। जैसे ही गिरे वैसे ही देख लो कि फिर उसकी कीमत क्या होती है?

'मानव तन का मोल प्यारे इक कौणी।'

यह तो मैं गीत के माध्यम से कह रहा हूं, पर एक कौणी भी कौन देगा? दूसरी बात उस समय मालूम पड़ता है कि कौन अपना है, कौन पराया है? हो सकता है कि कुछ लोग आंसू बहा लेते। एक दिन, दो दिन, तीन दिन कितने दिन तक रोएगा? कितने दिन तक रोएगा? रोने के लिए आंखों में पानी भी उतना है या नहीं है? कहां से लायेगा पानी? कब तक रोता रहेगा? यह बात प्राय: सभी लोग समझते हैं। समझते हैं या नहीं समझते हैं? कोई देर से समझता है, कोई अवेर से समझता है।

बलदेव, बलराम लगभग छ: महीने में समझ पाए। वासुदेव की मृत्यु होती है, वे विश्वास ही नहीं करते कि मेरा भाई मर गया। बताया जाता है कि कंधे पर लाश को ढोते रहते हैं। कई लोग कहते हैं कि ये तो मर गया, उस पर और नाराज हो जाते हैं। छ: महीने के बाद उन्हें बोध मिलता है कि हकीकत में मेरा भाई वासुदेव जो इतना युद्ध में समर्थ था, इतना शक्तिशाली था, वह अब नहीं रहा। जैसे ही यह बोध होता है वे संसार से उद्विग्न हो जाते हैं। उन्हें संसार से वैराग्य हो जाता है। क्या धरा है इस संसार में? क्या धरा है? क्या धरा है बताओ तो सही। नहीं बोलना है क्या? गुड़मुड़ नहीं, साफ-साफ बोलो। क्या बोल रहे हो? क्या धरा है संसार में? (प्रतिध्वनि- कुछ नहीं) कुछ नहीं? फिर बाणिया कौन? कुछ नहीं के पीछे पड़े रहने वाले होते हैं क्या बाणिया ? जितना स्वाद संसार में आ रहा है, उतना दूसरी जगह कहां आ रहा है? ये हमारी दुविधा है, ये हमारा द्वंद्व है कि हमको अच्छा तो लगता है संयम और हम जीते हैं संसार में। बोलते हैं कि कुछ नहीं है संसार में और जब जीते हैं तो सारा का सारा सार मिलता है संसार में। सब कुछ कहां मिलता है? संसार में ही। इससे बढ़िया कोई स्थान पसंद ही नहीं है। इससे दूसरा स्थान आपको पसंद ही नहीं है।

ये हमारे भीतर का द्वंद्व है, ये दुविधा है। जब तक इस दुविधा से हम नहीं हटेंगे तब तक दोनों जगह में दुविधा रहेगी। हम कहते हैं कि धोबी का कुत्ता न घर का होता है न घाट का। इधर से धकेलो तो घाट पर जाता है और घाट पर से धकेले तो घर पर आता है। वही दशा हमारी है। थोड़ी देर के लिए धर्म स्थान में आ गए। थोड़ा मन बना लिया, पर क्या किया ? किया क्या? यहां से हमने क्या पाया? जीवन की सच्चाई को हम स्पर्श कर पाए या नहीं कर पाए? ऐसे यदि हम आते ही रहेंगे तो कितनी बार आना पड़ेगा और कितने समय तक आते रहेंगे।

आते भी रहेंगे तो आने से कुछ काम सरेगा या नहीं सरेगा? आए और चले गए, आए और चले गए। वर्षा तो बहुत हो रही थी किंतु रेन कोट हमने पहना हुआ था तो कितनी भी वर्षा हो क्या फर्क पड़ता है? वही हालत हमारी यहां पर है।

हम विचार करेंगे तो ज्ञात हो पायेगा कि हम एक तरफ अच्छाई समझ रहे हैं कि बहुत बढ़िया चीज है। साधु जीवन में ही सार है। संसार खारा जहर है। संयम में लीला लहर है। समझ तो रहे हैं किंतु अभी उसकी लीला लहर का मजा उठाने का मन नहीं है। हां, यदि तीन दिन का पीरियड होता, पांच दिन का पीरियड होता, एक-दो घंटे का पीरियड होता और उसकी अच्छी फीस भी होती... एक घंटे की पचास हजार भी फीस होती तो एक घंटे में संयमी जीवन में आने के लिए हमारी तत्परता होती या नहीं होती? एक बार देखें तो सही। लगेगा रुपये पचास हजार, लगने दो। कुछ भी नहीं है।

नया होटल खुले फाइव स्टार। समझ लीजिए कि मालूम है कि जाने पर पचास हजार रुपये खर्च होने वाले हैं और हमारे पास पैसे हैं तो मन क्या बोलेगा? एक बार जाकर आ जाएं। दूसरी बार मन कहेगा कि नहीं जाना, फालतू पचास हजार रुपये खर्च हो जाएंगे। अरे! पचास हजार क्या है? वहां जाकर जो मजा लेंगे, वह अन्यत्र कहां मिलेगा? पैसे हैं ही किसलिए? हमारे भीतर तर्क चालू हो जाएगा। एक तर्क का समाधान देंगे तो दूसरा तर्क चालू हो जाएगा। दूसरे तर्क का समाधान देंगे तो तीसरा तर्क और हो सकता है। मेरा मन मुझे खींच रहा है कि भले ही कहीं पचास हजार रुपये खर्च हो जाए, किंतु एक बार तो अनुभव करना है।

वैसे ही एक दिन के लिए घंटे-दो घंटे, चार घंटे के लिए यदि संयमी जीवन के लिए पचास हजार रुपये फीस लगा दें तो एक बार देखकर आ जाते हैं कि कैसा है? नहीं? नहीं करते हैं क्या विचार? नहीं, नहीं? किंतु कुछ लोग विचार करते हैं। कुछ लोग ट्राई करते हैं कि देखें तो सही। कोई ऐसा सीजन आता हो जिसमें बंपर छूट हो। बंपर छूट बोलते हैं ना? (एक श्रावक बोलते हैं- बंपर डिस्काउंट) हां, डिस्काउंट। डिस्काउंट ऐसा निकालता हो कि आज ज्ञान पंचमी है। आज पचास हजार नहीं लगेंगे। आज केवल पांच हजार लगेंगे। आज बंपर छूट है। बंपर डिस्काउंट है। इंतजार करेंगे या नहीं करेंगे? कहेंगे कि चलो। इसका मतलब क्या हुआ? हम पैसे के बल पर किसी भी अनुभूति को लेने के लिए तत्पर होते हैं। संयमी जीवन, राजा जीवन है। अभी जो आप सुन रहे थे कि

क्रोध को जीतने का, क्रोध को हटाने का दूसरा उपाय है ज्ञान। यदि सच्चा ज्ञान हममें प्रकट होता है तो क्रोध शांत होगा। अक्षरी ज्ञान नहीं, किताबों का ज्ञान नहीं, पुस्तक का ज्ञान नहीं। पुस्तक का ज्ञान यदि हमारे भीतर के ज्ञान को प्रकट करने वाला बन जाए तो वह हमारे कषायों का शमन करने वाला बनेगा, शांत करने वाला बनेगा। चाहे क्रोध हो, चाहे मान, माया हो चाहे लोभ हो, वे शांत होंगे। वे उद्वेलित नहीं होंगे। उनका शमन होगा।

सम्यक्त्व के पांच लक्षण बताए हैं- शम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्था। पहला है शम। शम तीन प्रकार से लिखा जाता है। एक तो सड़क वाला 'स' और 'म'। एक शंकर वाला 'श' और 'म' और एक षट्कोण वाला 'ष' और 'म'। यहां पर शंकर वाला श और म, शम है। उसका अर्थ होता है शांत रहना। अपने कषायों को शांत करना। जैसे ही सच्चा ज्ञान हममें प्रकट होता है, आत्मा का ज्ञान प्रकट होता है, सम्यक्त्व का बोध प्रकट होता है तो हमारे कषाय उपशमित होते हैं। ये ज्ञान की विशेषता है। उस ज्ञान के आधार पर व्यक्ति का जीवन शांत-प्रशांत बन जाता है।

यहां बैठने वाले बहुत-से लोगों ने आचार्य पूज्य गुरुदेव के दर्शन किए होंगे। उनको कभी खाली बैठे नहीं देखा होगा।

'खिण निकम्मो रहणो नहीं, करणो आतम्काम।
भणणो, गुणणो, सीखणो, रमणो ज्ञान आराम।'

थोड़ी भी देर उनको फ्री बैठे हुए नहीं देखा होगा। कुछ-न-कुछ सीखना, कुछ-न-कुछ पढ़ना। चाहे याद करो, चाहे पढ़ो। तीर्थंकर नाम-कर्म उपार्जन के 20 बोल बताए हैं। कितने बोल? (प्रतिध्वनि- बीस बोल) किस-किस को याद हैं? तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन के 20 बोल किस-किसको याद हैं? किसी को भी याद नहीं है? मतलब तीर्थंकर बनने की किसी की कोई तैयारी नहीं है। यदि तीर्थंकर बनने की तैयारी होती तो जीवन में आचरण करते ताकि उस आचरण से कभी भी तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन हो जाए। एक भी हाथ खड़ा नहीं हुआ भाइयों की तरफ तो जहां तक मेरी दृष्टि जा रही है। कितने हैं, यह मालूम है? बोल कितने हैं? (प्रतिध्वनि- बीस बोल) ये तो मालूम है कि कितने हैं, किंतु कौन-कौन से हैं यह देखना पड़ेगा। कोई बात नहीं किताब देख लेंगे। यह किताबों का काम है। किताबें आने से हमने सारा दारमदार किस पर कर दिया? (प्रतिध्वनि- किताबों पर) जल्दी से किताब खोलकर देख लेंगे।

जब भी आवश्यकता होगी, किताब खोलकर देख लेंगे।

बाजार में कोई चीज बहुत सस्ते में मिल रही है पर शर्त यह है कि एकदम नकदी पैसे दो और हाथोंहाथ ले लो। आपके पास पैसे नहीं हैं तो वह चीज मिलेगी क्या? (प्रतिध्वनि- नहीं) और पास में पैसे होते तो? (प्रतिध्वनि- मिल जाती) पास में पैसे हो तो तुरंत मिल जाती है। वैसे ही ज्ञान यदि प्रकट होता है तो आचरण करने में सुविधा होती है। किताब में देख-देखकर आचरण किया जाएगा तो...

एक डॉक्टर ऑपरेशन करने के लिए तैयार हो जाता है, ऑपरेशन में लग जाता है और दूसरा डॉक्टर किताब का एक हिस्सा पढ़ता है और ऑपरेशन करता है। फिर दूसरा हिस्सा पढ़ता है तब आगे ऑपरेशन करता है। बढ़िया तो वही डॉक्टर है कि बार-बार पढ़कर कर रहा है... ध्यान से ऑपरेशन कर रहा है ना... कौन-सा डॉक्टर आप पसंद करोगे? (प्रतिध्वनि- पहले डॉक्टर को) पहले वाले डॉक्टर को? मैं तो कहूंगा कि डॉक्टर के पास जाना ही क्यों पड़े? आप लोग बोल रहे हो कि पहले वाले डॉक्टर को पसंद करेंगे। दूसरा वाला तो पढ़-पढ़कर काम कर रहा है और पहला वाला बिना पढ़े काम कर रहा है। वह बिना पढ़े ही ठोक रहा है। फिर भी आप जानते हो कि जो कर रहा है, वह ठीक कर रहा है। जो बार-बार किताब देखता है फिर आगे करता है, वह ठीक नहीं करेगा।

यदि वह डॉक्टर ठीक नहीं करेगा तो हम बार-बार पढ़कर तीर्थंकर नाम-कर्म का उपार्जन कैसे करेंगे? कैसे कर पाएंगे? 20 बोलों में एक बोल बताया गया है कि अपूर्व ज्ञान को ग्रहण करना। रोज नए-नए कुछ भी ज्ञान को सीखना। याद आ रही है मुझे आचार्य श्री श्रीलाल जी म.सा. की। मेरी एज/उम्र तो पार हो गई अब। उन्होंने नियम लिया था कि 45 वर्ष की उम्र तक रोज एक नया बोल सीखना। रोज एक नया बोल सीखना। रोजाना कुछ-न-कुछ सीखना। कम-से-कम एक बोल सीखना। कितनी उम्र तक? (प्रतिध्वनि- 45 की उम्र तक) अंडर फोर्टी फाइव। 45 वर्ष के भीतर कौन-कौन हैं? हाथ खड़ा करो। क्या करना है, 45 के भीतर वालों को और थोड़े ही दिनों में आने वाली है, ज्यादा दूर नहीं है 45 की उम्र।

होना तो चाहिए कि हम भी रोज एक नया बोल याद करेंगे। चाहे कुछ भी याद करो। थोकड़ा हो, चाहे बोल हो। रोजाना का एक बोल याद करना।

बूंद-बूंद करते हुए घड़ा भरता है। उम्र की भी कोई रुकावट नहीं है। कोई 70 वर्ष तक का नियम भी ले सकता है। 45 वर्ष की बात कर रहे हैं किंतु कोई कहे हम 45 के बाहर के लोग हैं, हम क्या करें? वे तब तक के लिए नियम ले सकते हैं जब तक कर पाएं। यदि उम्र और शक्ति रही, समझ रही, बुद्धि काम करती रही तो 70 साल तक एक बोल याद करते रहेंगे और ऐसा यदि हम विचार करते हैं तो ज्ञान की आराधना की दिशा में हमारा लक्ष्य बनता है। हम ज्ञान को अपने भीतर पैदा करने में समर्थ बनेंगे।

एक कहानी में बताया गया है कि ज्ञान की आसातना से क्या हुआ और उसका परिणाम क्या आया।

है ज्ञान पंचमी, ज्ञान प्रकाश फैलावे, प्रकाश फैलावे...

अजीतसेन सम्राट विजयसेन गणि के चरणों में पहुंचे। आगमन सुना और विचार किया कि मुझे महात्मा के चरणों में पहुंचना चाहिए। जब व्यक्ति सब तरफ से हताश हो जाता है, निराश हो जाता है तो कहां जाता है? कुछ भी अब उसके वश की बात नहीं रह गई होती है। एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति के डॉक्टरों को दिखा दिया, आयुर्वेद के चिकित्सकों से बात कर ली, होमियोपैथिक इलाज करा लिया, ट्रीटमेंट करा लिया, प्राकृतिक चिकित्सा करवा ली। एक्यूप्रैशर और एक्यूपंचर करवा लिया। और भी बहुत सारी थेरेपी निकली हुई है, वो थेरेपी करवा ली। सारी जांचें करा ली। टोटल जांचें करा ली। सब नॉर्मल है किंतु बीमारी है। अब कहां आता है आदमी? अब कहां आता है आदमी? मौका मिला तो भैरू-भवानी, देवी-देवताओं के वहां पर भी चक्कर लगा लिया। वहां पर भी ठीक नहीं हुआ तो अब गुरुदेव आपके चरणों में आ गए हैं। किसके चरणों में आ गए? (प्रतिध्वनि- गुरुदेव के चरणों में)

अब क्या करना चाहिए? कहीं कोई इलाज नहीं है किंतु यहां पर है कि साधु बनो। कोई इलाज नहीं है तो साधु बनो। अनाथीमुनि ने क्या किया? जब कोई भी इलाज कारगर नहीं हुआ तो उन्होंने मन में संकल्प कर लिया कि मुझे साधु बनना है। साधु बनने का जैसे ही संकल्प बना, बीमारी ठीक हो गई। मालूम है ना? कहानी पढ़ी होगी, अनाथी भगवान, अनाथ मुनि की? जिसने कहानी पढ़ी है, उसको मालूम है। उन्होंने संकल्प किया और सारी बीमारी गायब हो गई। वे साधु बन गए। हो सकता है कि सारी थेरेपियां काम नहीं आ रही हों और एक संयम थेरेपी काम करने वाली बन जाये।

प्रशम मुनि जी महाराज, छलाणी परिवार से हैं। गठिया-वात की बीमारी थी। शासन प्रभावक श्री धर्मेशमुनि जी म.सा. को मालूम पड़ा कि दर्शन करने की इच्छा है। उनकी माता जी ने बताया तो दर्शन देने के लिए पधार गये। उस समय स्थिति यह थी कि उठना भी मुश्किल था। उठना भी नहीं हो पा रहा था, इतना भयंकर गठिया। उन्होंने प्रेरणा दी कि तुम मन में विचार कर लो, संकल्प कर लो कि ठीक हो जाओगे तो साधु बन जाओगे। उनकी माता जी से भी कहा। मां ने कहा कि ऐसे पड़े रहने से तो अच्छा यदि ठीक हो जाता है और दीक्षा लेता है तो कम से कम चेहरा तो देखेंगे। मुंह तो देखने को मिलेगा। उन्होंने संकल्प कर लिया। कर लिया संकल्प और कुछ ही महीनों में एकदम ठीक हो गए। वे स्थानक में जाने लगे, ज्ञान-ध्यान सीखने लगे और साधु बन गए। इसलिए ऐसा विचार मत करना कि म.सा. ऐसे ही बात कर रहे हैं। यह भी एक नई थेरेपी है। जिसको भी आजमाना है, आजमा सकता है।

गुलाबचंद जी ने इसी थेरेपी का सहयोग लिया। उनको लग रहा था कि एक दिन या दो दिन तक संथारा चलेगा या नहीं चलेगा और कितने दिन चल गया? (प्रतिध्वनि- 35 दिन) 35 दिन तक चला और उसके बाद में एकदम चंगे। यह थेरेपी भी बड़ी काम की है। हो सकता है कि सब तरफ से हारने का कारण भी यही रहा हो कि हम सही दिशा में आ जाएं।

अजीतसेन जी, विजयसेन गणि के पास पहुंचे और कहा कि गुरुदेव, राजकुमार बड़ी मिन्नतों के बाद हुआ और होने के बाद मौन है। बोलता ही नहीं है। विजयसेन गणि ज्ञानी थे। उन्होंने कहा कि राजन्! यह वर्तमान का कोई कारण नहीं है, यह बीमारी भूतकाल की है।

राजा की अभिलाषा हुई कि जानें कि बीमारी कब की है। तब विजयसेन गणि ने फरमाया- दो भाई थे वसुसार और वसुदेव। दोनों ने सुंदरसेन गणि के पास दीक्षा ली और साधनारत हो गए। वसुदेव मुनि का क्षयोपशम अच्छा था और वे ज्ञान-दर्शन की दिशा में प्रगति करने लगे। वसुसार ज्ञान की दिशा में उतने उद्यमी नहीं हुए, उद्यम नहीं कर पाए। ठीक है 5 समिति और 3 गुप्ति साधना के लिए आवश्यक ज्ञान को उन्होंने प्राप्त कर लिया। विशेष ज्ञान पर्यायों को प्राप्त नहीं कर पाए। गोचरी-पानी आदि सेवा कार्य, त्याग-तपस्या से वे अपनी आत्मा को भावित करते रहे किंतु वसुदेव धुरधंर ज्ञानी थे। छोटी वय में बहुत ज्ञान अर्जन हो गया। दुनिया लोहा मानने लगी। सभी की इच्छा रहती कि

वसुदेव मुनि से कुछ पूछें, कुछ सीखें। कुछ जानकारी लें। कभी ज्ञान चर्चा में, कभी किसी में, कभी किसी में इतने व्यस्त हो जाते कि कभी-कभी तो सोने के लिए बहुत कम समय मिल पाता।

एक बार रात्रि को एक पहर रात्रि लोगों का समाधान करते हुए बीती। सोने की तैयारी कर ही रहे थे। इतने में संघ के 5 मुखिया पहुंच गए कि गुरुदेव अन्य मत के कुछ लोग बाहर से पहुंचे हैं, यदि इनका समाधान हो जाता है तो धर्म की बड़ी प्रभावना होगी। मन खिन्न हो गया कि क्या मेरी जिंदगी है? शांति से सो भी नहीं पाता हूं। चैन नहीं लेने देते हैं लोग। जो 5 मुखिया आए उनको तो उन्होंने समाधान दिया किंतु उसके बाद यह निर्णय कर लिया कि समाधान नहीं दूंगा, वाचना नहीं दूंगा।

उन्होंने उस दिन से प्रतिज्ञा कर ली कि अब कोई भी मेरे सामने आ जाए, मैं किसी के प्रश्नों का समाधान नहीं करूंगा। कोई मेरे से वाचनी लेने आए, मैं किसी को वाचनी नहीं दूंगा। कोई मिथ्यामति मेरे सामने मिथ्यात्व मत का मुंडन करे, मिथ्यामत की स्थापना करे तो मैं उस मिथ्यामत का खंडन भी नहीं करूंगा। आज से स्वाध्याय नहीं करूंगा। उन्होंने सारी किताबें बांधकर रख दी कि कुछ नहीं करना। सारी जिंदगी करते-करते आदमी को चैन नहीं सोने का। नहीं करना कुछ भी मुझे। स्वाध्याय नहीं करूंगा, उपदेश नहीं दूंगा। व्याख्यान बंद। कोई धर्म मार्ग से च्युत हो रहा है तो मैं उसको प्रेरणा भी नहीं दूंगा। उसको समझाने का काम नहीं करूंगा। किसी भी गाथा पर अनुप्रेक्षा नहीं करूंगा। इस प्रकार की उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा धारण कर ली। आर.सी.सी. के मकान जैसी मजबूत उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा धारण कर ली। जितनी गहन प्रतिज्ञा, कर्मों का बंधन भी उतना गहन। हलका विचार तो हलका कर्म बंधन। जितना मसाला डालो चीज उतना ही टेस्टी बनेगी। मात्र दूध, चावल और शक्कर डालने से खीर तो बन जाएगी, पर यदि थोड़ा बादाम, थोड़ा काजू, थोड़ी किसमिस, थोड़ी पिस्ता और दूसरी चीजें डाल कर खीर बनाई जाएगी तो दोनों में फर्क होगा या नहीं होगा? (प्रतिध्वनि- फर्क होगा) लड्डू तो कितने बांधते हैं घर में? किंतु लड्डू, लड्डू में फर्क होता है। मेथी का लड्डू कड़वा लगता है। अब तो सीजन भी आ गया है सर्दी में। एक मेथी को इतना साध लेते हैं, दूसरी चीजें इतनी मिला देते हैं कि उसमें मेथी का योग तो होता है किंतु लगता नहीं है। होता है या नहीं होता है? होता है।

जैसे हम जैसा मसाला डालेंगे, वस्तु उतनी स्वादिष्ट होगी, उसी तरह जैसी प्रतिज्ञा की, जैसे विचार किए, वैसे कर्मों का बंधन कर लिया। आचार्य विजयसेन कहते हैं कि राजन्! राजकुमार ने उस समय दृढ़ प्रतिज्ञा धारण की और कठोर, निर्मम ज्ञानावरणीय कर्म का उपार्जन कर लिया। इस कारण से कुछ ज्ञान समझ नहीं आता है। बोलना भी नहीं हो पा रहा है।

कहानी में जो बताया गया, वही मैं बता रहा हूं। अजीतसेन ने पूछा कि इसका कोई उपाय तो होगा? आचार्य श्री ने फरमाया कि जहां अपाय है वहां उपाय भी है। बीमारी है तो उसकी दवा भी है। अजीतसेन जी के निवेदन पर ज्ञान पंचमी के आराधना की बात आचार्य देव ने सुझाई। ज्ञान पंचमी की आराधना उपवास या आयंबिल से की जाती है। हर महीने की उजली पंचमी को उपवास वाला उपवास, आयम्बिल वाला आयम्बिल से आराधना करे। 5 वर्ष, 5 महीने इसको संपन्न करने में लगते हैं।

शुद्धि पंचमी जब भी आती है, जिस महीने में आती है, उस दिन उपवास, आयंबिल के साथ 'णमो णाणस्स' की 21 माला फेरना। 51 लोगस्स का ध्यान एवं बारह णमोत्थुणं से .... स्तुति करना। ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना करना। यदि उपवास किया हो तो पौषध करना। इस प्रकार 5 वर्ष 5 महीनों में ज्ञान पंचमी की आराधना होती है। जो कहता है कि मुझे ज्ञान नहीं चढ़ता है वह सच्चे दिल आराधना करे। सच्चे दिल से की गई आराधना कभी निरर्थक नहीं जाती। केवल औपचारिक रूप से कोई आराधना करेगा तो वह उतना लाभ नहीं कमा पाएगा, यह साफ है। हमारी भावना जैसी होगी, वैसा लाभ मिलेगा।

बंधुओ, यह तो उपाय है। हम अपने आप में भाग्यशाली हैं कि हमें समझ मिली है, हमें ज्ञान प्राप्ति का मौका मिला है, हमें जिनेश्वर देवों का धर्म मिला है। सारी जोगवाई मिलने के बाद यदि हम ज्ञान की आराधना नहीं कर पाते हैं तो इससे ज्यादा और दुर्भागी कौन होगा? सारी सुविधा मौजूद होने के बाद भी लाभ नहीं उठावे, तो उसको सौभाग्यशाली कहेंगे? हमको सारी सुविधाएं मिलने के बाद यदि हम ज्ञान तपस्या नहीं करेंगे, यदि हम तीर्थंकर देवों की स्तुति नहीं करेंगे तो फिर हमें ज्ञान कैसे प्राप्त होगा? ज्ञान कैसे बढ़ेगा? हम भी ज्ञान बढ़ाने की दिशा में अपना लक्ष्य बनावें।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया है कि स्तुति-स्तवन करने से, तीर्थंकर भगवंतों की स्तुति करने से, नमोत्थुणं रूप की स्तुति करने से ज्ञान,

दर्शन, चारित्र का बोधि लाभ प्राप्त होता है। हम इस प्रकार की स्तुति करते हुए अपनी बुद्धि को विकसित करें, बोध को प्राप्त करें जिससे हमारे भीतर ज्ञान, दर्शन, चारित्र के बोधि लाभ की स्थिति बने। ऐसा हम प्रयत्न करेंगे तो विश्वास करके चलते हैं कि हमारे भीतर ज्ञान, दर्शन, चारित्र का समग्र रूप प्रकट होगा। हमारे भीतर ज्ञान की प्राप्ति होगी। हमारी समझ सही बनेगी और सम्यक् दिशा में हम अपने कदम आगे बढ़ाएंगे। यदि ऐसा करने में हम समर्थ हों तो हमें अश्वयमेव ऐसा लक्ष्य बनाना चाहिए।

हम अपनी शक्ति का उपयोग इस ज्ञान आराधना की दिशा में लगाकर अपनी समझ को सही बनाने का प्रयत्न करें। ऐसा करेंगे तो हम अपने आपको धन्य बना पाएंगे।

इतना ही कहते हुए विराम ले लेते हैं।

01 नवम्बर, 2019

11

हर कदम सफलता की ओर

संभवदेव ते धुर सेवो सबेरे, लही प्रभुसेवन भेद।
सेवन-कारण पहली भूमिका रे, अभय, अद्वेष, अखेद।।
संभव.।।1।।

भय चंचलता जे परिणामनी रे, द्वेष अरोचक भाव।
खेद प्रवृत्ति करतां थाकिए रे, दोष सबोध लखाव।
संभव.।।2।।

'संभव देव ने धुर सेवो सबेरे।' इसका अर्थ होता है संभवनाथ भगवान का सेवन अर्थात् उनकी सेवा-अर्चा, पूजा, भक्ति ध्रुव रूप से, यानी बीच में कभी नागा नहीं करना, बीच में कभी व्यवधान नहीं पड़ने देना। सबेरे यानी सुबह।

प्रश्न खड़ा होगा कि क्या भक्ति सुबह के समय ही करनी चाहिए या भक्ति किसी भी समय की जा सकती है?

इसके उत्तर में कहना है कि सुबह शब्द के तात्पर्य को समझ लेने से समाधान संभव है। सुबह का अर्थ क्या है? इसका एक अर्थ होता है कि जिस समय हमारी चित्तधारा सुंदर रूप से प्रवाहित हो रही है, वह सुबह। सूर्योदय के लगभग समय को जो सुबह कहा जाता है वह इसका उपलक्षण है।

इस रूप में सुबह का अर्थ होगा कि जिस समय हमारे चित्त की धारा, भावधारा सुंदर, श्रेष्ठ, शुभ रूप में चल रही हो, उस समय परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए। उस समय परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए। पहले भक्ति की विधि को जान लेना चाहिए कि सेवा कैसे की जाए? भक्ति कैसे की जाए? बहुत से लोग भक्ति करने को तत्पर हो जाते हैं किंतु भक्ति के स्वरूप को नहीं जानते। सेवन विधि का निर्देश स्वयं स्तुतिकर्ता स्तुति में करते हुए कह रहे हैं-

'सेवन कारण पहली भूमिका रे' अर्थात् सेवन करने की पहली विधि है- भूमिका, स्टेज, स्तर का दृढ़ होना। वह सुदृढ़ होगा तो भक्ति कामयाबी हासिल कर पाएगी। यदि भूमिका ही सही नहीं होगी तो भक्ति कामयाबी कैसे प्राप्त कर पाएगी?

वह भूमिका क्या है? भूमिका के स्वरूप का दिग्दर्शन करते हुए बताया गया कि भूमिका अभय, अद्वेष और अखेद तत्त्वों से निर्मित हो अर्थात् जिसमें भय नहीं है। जहां राग-द्वेष होगा वहां निर्भयता कम संभव है। इसलिए अद्वेष का होना जरूरी है। जहां पर द्वेष नहीं हो। द्वेष यानी जहां पर नकारात्मक विचार बहुत हो। सामान्यतया द्वेष नकारात्मक होता है। जिससे उसकी उपस्थिति में घृणा, नफरत, ईर्ष्या, डाह जैसे दोष जन्म ले लेते हैं। ये द्वेष आधारित हैं, अत: कहा गया कि वहां द्वेष नहीं होना चाहिए। भक्ति करने के लिए हमारे चित्त की धारा सुंदर होनी चाहिए। वहां भय नहीं होना, द्वेष नहीं होना और खिन्नता नहीं होना। खेद यानी कार्य की सम्पन्नता न होने से उत्पन्न होने वाला अवसाद। ये तीन चीजें नहीं होना। यह उसका सही रूप है। इसका सीधा-सा अर्थ फलित होता है कि अभय होना, अद्वेष की स्थिति होना और अखेद की स्थिति बने रहना।

'सेवन कारण पहली भूमिका रे, अभय अद्वेष अखेद।' अभय, अद्वेष और अखेद। भय की परिभाषा क्या है? सामान्य रूप से हम कहते हैं कि डर। किसका डर? भय किसका? डर किसका? आनन्दघन जी कहते हैं कि भय चंचलता है। हमारे विचारों में, अध्यवसायों में, परिणामों में चंचलता होना भय का रूप है। यह चंचलता हमें परमात्मा से संबंध जोड़ने नहीं देती। जड़ को पकड़ा उन्होंने कि चंचलता भय है और चंचलता जहां बनी रहती है, वहां परमात्म-भक्ति नहीं हो पाती है।

द्वेष की परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा कि 'द्वेष अरोचक भाव' यानी द्वेष का अर्थ है रुचिशीलता नहीं होना। किसी कार्य में हम प्रवृत्त होना चाहेंगे और उस कार्य में मेरी रुचि नहीं है। आप बताइए, उस कार्य में मुझे सफलता कितनी मिलेगी? पिता चाह रहा है कि मैं अपने बेटे को वकील बनाऊंगा, बैरिस्टर बनाऊंगा किंतु बेटे को कानून की भाषा कुछ समझ ही नहीं आ रही है। कानून की लैंग्वेज उसके भेजे में बैठ ही नहीं रही है। वह बेटा बैरिस्टर कैसे बनेगा? कानूनविद् कैसे बनेगा? एक बाप चाहता है कि मैं अपने बेटे को

इंजीनियरिंग करवाऊं किंतु एलजेबरा उसके दिमाग में नहीं बैठता। उसका दिमाग चटका जाता है। दूसरी बातों में होशियार है किंतु गणित के मामले में बड़ा कमजोर है। वह कैसे इंजीनियरिंग में सफल हो पाएगा?

उसके आगे की बात लें तो चाहे किसी भी क्षेत्र की बात हो, जब तक रुचिशीलता नहीं होती है या जब तक हमारे भीतर रुचिशीलता पैदा न हो जाए तब तक उस कार्य में हम सफल नहीं हो पाएंगे और खेद, 'खेद प्रवृत्ति करता थाकियां रे।' कार्य करते-करते थक जाएं। अरे! इतने सालों से सामायिक कर रहा हूं। इतने सालों से आरती उतार रहा हूं। इतने सालों से स्तुति कर रहा हूं, अभी तक मुझे कोई सफलता नहीं मिली। यह थकान का स्वर है। अनुत्साह का भाव पैदा हो जाएगा। अब कार्य में उत्साह नहीं है। ऐसी स्थिति को अवसाद कहा जाता है। इन सारी बातों का निष्कर्ष, निचोड़ हुआ कि हमारे विचारों में चंचलता नहीं होनी चाहिए। भक्ति के प्रति हमारी रुचिशीलता होनी चाहिए और भक्ति करते हुए कितना भी समय निकल जाए, मन हतोत्साहित न हो। मन का उत्साह कम नहीं पड़ना चाहिए। ये तीन बातें यदि हमारे साथ जुड़ी हुई हैं तो हमारे भीतर भक्ति करने की काबिलियत, भक्ति करने का सामर्थ्य, भक्ति करने की क्षमता प्रकट होती है।

हम अपने आप में विचार करेंगे कि हम जिस भी उपासना विधि को स्वीकार करके चल रहे हैं, वह चाहे स्वाध्याय हो, माला-सामायिक या अन्य किसी भी रूप में हो, हमारे भीतर चित्त की एकाग्रता है या नहीं है? मेरा मन उसमें लगा हुआ है या नहीं है? मेरे भीतर थोड़ी-थोड़ी देर में विचार बदल तो नहीं रहे हैं? स्कूल में भर्ती होने के लिए किसी के सामने फॉर्म आया और उससे कहा गया कि तुमको कौन-सा सब्जेक्ट/विषय लेना है, वह विषय तय करो। वह कभी कहता है कि मैं यह विषय लेता हूं। लिखने लगता है तो फिर कहता है, नहीं-नहीं रुको-रुको, यह नहीं यह विषय लेना चाहूंगा। फिर किसी ने कहा कि देख, इसमें ऐसी-ऐसी समस्याएं हैं। फिर कहेगा, अरे! रुको-रुको यह नहीं लेना। वह निर्णय नहीं कर पा रहा है कि मैं कौन-सा विषय लूं? जब निर्णय नहीं कर पा रहा है तो पढ़ाई क्या करेगा? पढ़ लेगा क्या? निर्णय कौन करेगा? वह अपने मित्रों से कहता है कि तुम लोग निर्णय कर दो। निर्णय तो वे कर देंगे पर पढ़ने के लिए कौन आएगा? निर्णय यदि मित्र करेंगे तो पढ़ेगा कौन? निर्णय उसे ही करना पड़ेगा। मित्र कर भी दे तो उसमें उसे सहमत तो होना ही होगा। उसे अपना

सामर्थ्य तो देखना ही होगा।

वैसे ही हमें निर्णय करना है कि मेरा मन भक्ति के लिए तैयार है या नहीं है? मेरे भीतर रुचिशीलता है या नहीं है? मैं धर्म स्थान में रुचि से आ रहा हूं या धक्के से आ रहा हूं? कल बात चल रही थी कि अपनी रुचि से आने वाले खड़े हो जाएंगे कि कौन-कौन अपनी रुचि से प्रतिक्रमण में आना चाहते हैं। कई लोग खड़े भी हुए। होता है। बहुत-से लोग रुचि से भी काम करते हैं और बिना रुचि से करने वाले भी बहुत हैं। बिना रुचि के यदि बढ़िया भोजन भी कर लें तो वह शरीर को लाभ पहुंचाने वाला नहीं होता। खाना चाहे हमने कितना भी बढ़िया खाया हो किंतु अरुचि से खाया, बिना रुचि से खाया तो वह शरीर को पुष्ट करने वाला नहीं बनेगा। रुचि से यदि बाजरे का सोगरा भी खाए तो वह काम करेगा। करेगा या नहीं करेगा? (प्रतिध्वनि- काम करेगा)

रुचि बहुत बड़ी महत्त्वपूर्ण चीज है, इसलिए हमें यह देखना चाहिए कि धर्म करने के लिए मेरे भीतर रुचिशीलता है या नहीं है? मुझे अपना परीक्षण करना चाहिए। अपना इंटरव्यू देना चाहिए। अपने आपको इंटरव्यू दो, स्वयं को इंटरव्यू दो कि मेरे भीतर धर्म करने के लिए, सामायिक करने के लिए, स्वाध्याय करने के लिए रुचि है या पच्चक्खाण की लाचारी है कि क्या करें, मुझे खड़ा कर दिया। मैंने भी हाथ शरमा-शरमी जोड़ लिये और पच्चक्खाण ले लिये। अब ले-देकर एक महीने का समय पूरा करना है। एक वर्ष का समय पूरा करना है। वह यदि एक वर्ष तक इस प्रकार से स्वाध्याय करेगा, उसको लाभ क्या होने वाला है? मैं जहां तक जानता हूं, उसको लाभ तो होगा नहीं बल्कि स्वाध्याय के प्रति अरुचि का भाव उसके लिए ज्ञानावरणीय कर्म बंधाने वाला हो जाएगा।

यह बात ध्यान में लेना कि सामायिक, उपवास या आयंबिल, एकासन, स्वाध्याय आदि धर्म की कोई भी क्रिया करनी है तो उसके प्रति हमारे मन में भक्ति और बहुमान होना चाहिए। यदि भक्ति नहीं है, बिना भक्ति के स्वाध्यायादि कोई भी अनुष्ठान कर रहे हैं तो वह कर्म निर्जरा में सहायकभूत नहीं बनेगी। वह हमारे ज्ञानावरणीय अन्तरायादि कर्मों का उपार्जन कराने वाली बन सकती है। इसलिए पहले हमें अपने मन की समीक्षा करनी चाहिए कि वह भक्ति के लिए, धर्म आराधना के लिए उपयुक्त है या नहीं? उसकी तैयारी है या नहीं?

'संभव देव ते धुर सेवो सबेरे।' संभवनाथ भगवान की स्तुति करते हुए एक इशारा दूसरी तरफ भी किया गया है कि तुम यह मानकर चलो कि संभव सब

है। ऐसा सोचो ही मत कि यह तो असंभव है। अपितु यह मानकर चलो कि असंभव कुछ भी नहीं है। सब संभव है। यदि आज तुम्हारे भीतर रुचि नहीं है, यदि आज तुम्हारा चित्त चंचल है तो यह मत विचार करो कि मेरा चित्त सदा चंचल ही बना रहेगा। मन में खिन्नता की बात नहीं आनी चाहिए कि मेरे भीतर कभी धर्म की रुचि पैदा होगी ही नहीं। धर्म की रुचि भी पैदा हो सकती है। रोहिणेय चोर, प्रभव चोर को पहले धर्म से कोई लगाव नहीं था किंतु भगवान महावीर के वचन व जंबू कुमार का जैसे ही सुयोग मिला उनके मन में धर्म के भाव प्रकट हो गए।

भगवान महावीर के चार शब्द, चार वाक्य रोहिणेय चोर के कान में गिरे और रोहिणेय का जीवन बदल गया। वह साधु बन गया। जंबू कुमार के सम्पर्क से प्रभव का जीवन भी बदलता है और वह भी साधु बन जाता है। बताया जाता है कि वाल्मीकि पहले खूंखार व्यक्ति थे, बाद में महात्मा बन गए, संत बन गए। एक ऐसी बात सुनी जाती रही है, 'जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा।' कभी-कभी कर्म करने वाले जो शूरवीर होते हैं, कर्म बांधने में शूरवीर होते हैं, वे धर्म क्रिया करने में भी शूरवीर हुआ करते हैं। कर्म करने में भी जो वीर नहीं है, वह धर्म करने में अपने भीतर वीरता कैसे प्रकट करेगा? जब उसके भीतर वीरता ही प्रकट नहीं होगी, वह धर्म की सही आराधना कैसे करेगा? इसलिए पहले हमारे भीतर रुचिशीलता कैसी है, यह विचार करें। यदि आज रुचि नहीं है तो रुचि को प्रकट करना है, रुचि को पैदा करना है। रुचि भी पैदा होती है।

जो चीजें आज नहीं हैं, वे कल नहीं होंगी, ऐसी बात भी नहीं है। जो आज नहीं हैं, वे कल हो सकती हैं। व्यक्ति में आज किसी विषय में सामर्थ्य नहीं है, कल उसके पास सामर्थ्य हो सकता है। हो सकता है या नहीं हो सकता है? (प्रतिध्वनि- हो सकता है) हो सकता है। आज उसके भीतर कोई कमजोरी हो सकती है किंतु कल वह उसमें प्रखर हो सकता है। कालिदास बहुत बड़े विद्वान् हुए किंतु एक बार की उनकी दास्तान एकदम अलग ढंग की है। वह इस रूप में अलग है कि वे एक पेड़ पर चढ़े। पेड़ की शाखा जिधर निकली हुई है, उस तरफ बैठकर उसी शाखा को काट रहे हैं। वह शाखा कटकर गिरेगी तो कालिदास का क्या होगा?

आप विचार करो कि वे उस समय कितने समझदार थे कि जिस पेड़ पर, जिस शाखा पर बैठे हुए हैं, उसी शाखा को काट रहे हैं। वही कालिदास अपने

समय के धुरंधर विद्वान् बन गए। बल्ब की खोज करने वाले, अन्वेषण करने वाले वैज्ञानिक का क्या नाम है? (प्रतिध्वनि- थॉमस) वे पढ़ाई में बहुत कमजोर थे। स्कूल में अध्यापकों ने कहा कि बेटा तुम्हारे पढ़ाई का योग नहीं है, तुम घर पर रहो।

अध्यापकों ने कह दिया कि पढ़ाई का योग नहीं है। जहां तक मैंने जाना और सुना है, संस्कृत व्याकरण के रचयिता पाणिनि के हाथ को देखकर अध्यापक ने कहा, तुम्हारे हाथ में विद्या की रेखा नहीं है। उन्होंने कहा, विद्या की रेखा कहां होती है? अध्यापक ने हाथ से इशारा करते हुए बताया कि यहां पर रेखा होती है। उन्होंने पत्थर लिया और हाथ पर रगड़ने लगे। रगड़ कर बताया कि यह रही विद्या की रेखा। तब अध्यापक ने कहा कि तुम्हारे भीतर इतना आत्म-विश्वास है तो तू कभी पीछे नहीं हटेगा। वे धुरंधर विद्वान् बने। संस्कृत व्याकरण बनाने वाले बन गए।

हमें यह विचार नहीं करना चाहिए कि मैं तो कुछ नहीं कर सकता हूं। मेरे से कुछ नहीं हो सकता है। आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. शारीरिक दृष्टि से बड़े कोमल थे। बहुत कोमल। मखमल का कपड़ा जैसा कोमल होता है, वैसे ही कोमल उनके पैर थे। यह भी पुण्याई का योग है। छोटे-से गांव में पैदा हुए। किसी राजा-महाराजा के यहां पर पैदा नहीं हुए थे। गांव में प्राय: करके कर्मठ लोग हुआ करते हैं। शरीर जिनका सख्त और कठोर हुआ करता है किंतु आचार्य श्री अपवाद थे। उनका शरीर बड़ा कोमल किंतु मन ठीक उससे विपरीत। शरीर में परीषह सहन करने की क्षमता कम हो सकती है किंतु उनके मनोबल के सामने कोई सानी नहीं। दीक्षा के बाद पहला लोच। खून की बूंदें निकलीं तो निकलीं। फफोले हो गए। कितने ही समय तक वे फफोले बने रहे फिर भी उफ! नहीं। फिर भी उसके लिए मन में यह विचार नहीं कि मैं कहां साधु बन गया? इतनी कठिनाइयां आएंगी, यह तो कभी सोचा ही नहीं था।

हमने पहले सुना है कि दिल्ली में आचार्य पूज्य गुरुदेव जब वैद्यकीय इलाज लेने लगे थे तो वैद्य ने कहा कि केवल दवा और दही, दो ही चीज चलेगी। नौ महीनों तक पानी का भी प्रयोग नहीं कर पाएंगे। कितने दिनों तक? दिन नहीं, नौ महीने तक। छाछ भी नहीं। छाछ नहीं, सिर्फ दही। दही को हिलाकर ले सकते हैं किंतु पानी नहीं मिलाना। न नमक मिलाना, न जीरा मिलाना, न सोंठ मिलाना, न हलदी। कुछ भी नहीं मिलाना। केवल दही और दवा लेना। नौ महीन

तक दूसरी कोई चीज नहीं खाना। न कोई रोटी है, न सब्जी है, न मिठाई है, न नमकीन है। क्या यह कोई बड़ी बात नहीं है? बड़ी बात है क्या? (प्रतिध्वनि-बहुत बड़ी बात है) एक दिन, दो दिन, चार दिन की बात हो तो अलग बात है। नौ-नौ महीने और उन्होंने, गुरुदेव ने वैसा ही किया। उनमें एक बात बहुत स्पष्ट थी कि जब तक डॉक्टर या वैद्य हाथ नहीं टेक दे, वे डॉक्टर और वैद्य को जल्दी बदलते नहीं थे। ना बोले तो डॉक्टर बोले। आखिर में वैद्य ने कहा कि मेरे जैसा सख्त वैद्य नहीं और आप जैसा इंद्रिय विजेता मरीज। ऐसे मरीजों को बहुत कम देखा जाता है। ऐसे मरीज बहुत कम पाए जाते हैं। आपने वाकई पूरे पथ्य का पालन किया।

मैं इसलिए बात को कह रहा हूं कि उनका मनोबल, विल पॉवर, कितना मजबूत था। शरीर कोमल, थोड़ा-सा खाने-पीने में ऊंचा-नीचा हो जाए तो उनकी जठराग्नि स्वीकार करने को तैयार नहीं किंतु उनके मनोबल के सामने शरीर बल की कोई तुलना नहीं। कोई तोल नहीं। मनोबल के आधार पर आचार्य देव ने कैसे-कैसे कठिन प्रसंगों को सहा। संभवनाथ भगवान की स्तुति हमें यही बात कहती है कि तुम किसी भी कार्य में नर्वस मत बनो, हिम्मत मत हारो, अनुत्साही मत बनो। अपने उत्साह को शिथिल मत होने दो। 'कार्यं साध्यामि' मैं कार्य को सिद्ध करूंगा। ऐसा लक्ष्य अपने मन में जमाना चाहिए। कार्य के लिए पूरी रुचि से, पूरे इतमीनान से, पूरे भावों से समर्पित हो जाना चाहिए। व्यक्ति अपनी समग्र शक्तियों को यदि उसमें लगाता है तो वह सफलता पाता है। उसके बीच अन्य कोई विकल्प ही पैदा न हो। एक विचार, एक इच्छा, एक दिशा। उसके बाद देखो कार्य कैसे सिद्ध नहीं होगा।

आचार्य देव ने एक चिंतन लिखा कि इस शरीर से सर्व अर्थ, परमार्थ साधे जा सकते हैं। इस मायने में इसको चिंतामणि कहा जा सकता है। हम क्या नहीं साध सकते हैं? हमारे भीतर यदि पुरुषार्थ है, हमारे भीतर कार्य करने की क्षमता है, हमारे भीतर कार्य करने की रुचि है और मेरे भीतर थकान आने वाली नहीं है, मैं किसी भी कार्य में दत्तचित्त होकर लग जाता हूं तो फिर ऐसा कौन-सा कार्य है जो संभव नहीं है, जिसमें सफल नहीं हो सकें। बशर्ते इस शरीर में जो चैतन्य देव हमारी आत्मा में मौजूद है, वह ज्ञान-विज्ञान के साथ अपने कार्य में परिणत हो जाए। एकदम स्पष्ट है कि जब तक हम पूरी तन्मयता के साथ किसी कार्य में नहीं लगते हैं तो कार्य की संपन्नता संदिग्ध बनी रहती है और तकनीकों

के साथ विधि-निषेधों को जानते हुए यदि हमने कार्य में हाथ डाला है तो संशय ही नहीं कि वह कार्य संपन्न न हो। हम यदि परमात्मा की भक्ति करने के लिए, धर्म की आराधना करने के लिए अपने आप में तत्पर हुए हैं तो हमें उसमें भी इतमीनान से, पूरे मनोयोग से, पूरी रुचि से और यों कह दें कि पूरे दमखम से लग जाना चाहिए।

'संभव देव ते धुर सेवो सबेरे, लहि प्रभु सेवन भेद।' सेवन की विधि को जानते हुए यदि हम इस कविता पर विचार करें तो बहुत गहन और मार्मिक है। अभय, अद्वेष, अखेद की संक्षिप्त चर्चा हम कर चुके हैं। उसे स्पर्श करता हुआ एक प्रसंग है- पूना के डॉक्टर, हड्डी के डॉक्टर (प्रतिध्वनि- डॉ. संचेती) हां, डॉ. संचेती। एक बार गुरुदेव से बोल रहे थे, निवेदन कर रहे थे। गुरुदेव पुणे में ही विराज रहे थे, उन्हीं के हॉस्पिटल में थे। ऐसे ही बातचीत के दौरान उन्होंने बताया कि एक ऑपरेशन उन्होंने ऐसा किया जिसमें 18 घंटे का समय लगा। कितना समय? (प्रतिध्वनि- 18 घंटे) 18 घंटे निरंतर खड़े रहकर ऑपरेशन करना, सामान्य बात है क्या? (प्रतिध्वनि- नहीं) किसको कहते हैं 18 घंटे? दिन-रात में भी आदमी 18 घंटे ड्यूटी दे पाता है या नहीं दे पाता है? हमारे भारत के लोग 6 घंटे भी ड्यूटी मिल गई तो बस बात हो गई। बहुत काम हो गया। पहले के लोग 6 घंटे से संतुष्ट नहीं होते थे। डॉक्टर संचेती ने अठारह घंटे तक ऑपरेशन किया। आप-हम सोच सकते हैं कि बीच में विश्राम का प्रसंग संभव ही नहीं। क्या उन्हें थकान आई? आप एक साथ बिना थके कितनी सामायिक कर सकते हो?

आज व्यक्ति सफलता पाने के लिए तैयार है। सफलता पाने के लिए मुंह-बाये खड़ा है किंतु कर्म करने के लिए अपने को पीछे खिसकाता है। जहां काम करने की बात आती है, वहां पीछे खिसक जाता है।

'आओ मियां जी छप्पर उठाओ, हम बूढ़े जवान बुलाओ' मियां जी! आओ छप्पर उठाने में सहारा लगाओ। आप भी बांस हाथ में लो और छप्पर उठाने में सहयोग दो। मियां जी कहते हैं कि अरे! भाई मैं तो बूढ़ा आदमी रह गया। यह काम मेरे से कहां होने वाला है? इसके लिए तो किसी जवान को बुलाओ, वे सहयोग करेंगे। 'आओ मियां जी भोग लगाओ, बिस्मिल्लाह कह हाथ धुलाओ' भोजन करना है तो अब बुढ़ापा चला गया। खाने-पीने में शूरवीर। खाने के लिए तैयार। 'राम भजन को आलसी, भोजन को होशियार।

तुलसी ऐसे नर को...? आगे बताओ? अरे! बोलो आगे क्या होगा? (प्रतिध्वनि- बार-बार धिक्कार) क्यों एक बार नहीं? एक बार नहीं? बार-बार? आज खाने में आदमी आगे रहता है। काम करने के लिए कहा जाता है तो, मैं तो बूढ़ा हो गया। मेरे से अब क्या काम हो सकता है? ऐसे कई प्रकार के बहाने बनाने लगता है। ऐसे व्यक्ति क्या योग्यता प्राप्त करेंगे? कैसे सफलताएं प्राप्त करेंगे?

संभवनाथ भगवान का नाम दिमाग में जमा लो और एक शब्द दिमाग में लिख लो, 'संभव', अर्थात् कोई भी कार्य असंभव नहीं है। यदि मेरे भीतर पुरुषार्थ है, मेरे भीतर रुचि है, मैं कभी भी कार्य में थकने वाला नहीं हूं तो एकदम लिख लो अपनी डायरी में कि कोई कार्य असंभव नहीं है। मैं हर कार्य करने में सक्षम हूं और कोई भी काम आदमी करता है तो वह सीखता है। सारे माता के गर्भ से कार्य सीखकर नहीं आते। दीक्षा लेने की किसी की तैयारी होती है? शालिभद्र की तैयारी हुई और माता भद्रा कहती है कि बेटा, तुम्हारा इतना कोमल शरीर, तू कैसे संयम पालेगा? पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. जब साधु जीवन स्वीकार करने के लिए तैयार हुए तो घर वाले यही बोले कि बेटा, साधु जीवन आसान नहीं है, बहुत कठिन काम है। कोई भी माता-पिता यह कहां बताते हैं कि यह काम आसान है। वैसे कितना भी कठिन काम हो, वह कठिन कार्य इनसान के द्वारा किया जाता है या पशु के द्वारा किया जाता है? (प्रतिध्वनि- इनसान के द्वारा) जोर से बोलो। (ऊंची आवाज में प्रतिध्वनि- इनसान के द्वारा)

साधु जीवन कठिन है या सरल है? (प्रतिध्वनि- कठिन है) अरे! नहीं-नहीं। आप लोग सरल बोलो ना ताकि आपको करना नहीं पड़े। चुनौती झेलने वाले ही झेला करते हैं। वीर पुरुष कभी पीछे नहीं खिसका करते। वे चुनौती झेलते हैं। मैं तो यह कह रहा हूं कि एक बात 'संभव' दिमाग में जमा लें, एक शब्द जमा लें। हमारी जीवन डायरी में कहीं पर भी असंभव शब्द न हो। हमारे शब्दकोश में कहीं भी असंभव शब्द न हो। यह कार्य तो मैं नहीं कर सकता। बोलो कौन-सा कार्य नहीं कर सकते? आप कौन-सा काम नहीं कर सकते? है कोई ऐसा कार्य जो आप नहीं कर सकते? (प्रतिध्वनि- नहीं) यदि भारत का प्रधानमंत्री बनाया जाये तो बन सकते हो या नहीं? आप कहोगे कि बनावे कौन? कोई बनावे तब ना। आवाज आई नहीं क्योंकि हमने सोच लिया कि हम

कहां प्रधानमंत्री बनने वाले हैं? हमको कौन प्रधानमंत्री बनाने वाला है? हमारी चलेगी कहां पर? हम आटे में नमक जितने भी नहीं हैं। हम में इतना सामर्थ्य नहीं है तो हमें इतना बड़ा ओहदा देगा कौन?

ध्यान में लो। एक जमाना था, जब राजाओं के दीवान कौन हुआ करते थे? (प्रतिध्वनि- महाजन) महाजन ही दीवान हुआ करते थे। राज्य को चलाने का दारमदार दीवानों पर होता था। दीवान बुद्धिशाली होने चाहिए। हमारा उत्साह रहे। उसमें यह नहीं सोचें कि हमें वहां तक कौन पहुंचने देगा? हम पहुंचे या नहीं पहुंचे, वह अलग बात है किंतु यह रहना चाहिए कि कोई भी कार्य यदि हमारे पास आता है, तो हमें करना है। ऐसा कोई भी काम नहीं है जो हम नहीं कर सकते।

अभी आचार्य पूज्य गुरुदेव नानेश की जन्म शताब्दी 'अनन्य महोत्सव' चल रहा है। संघ ने आपके लिए, जन-जन के लिए कार्य दिया या नहीं दिया? क्या काम दिया? (प्रतिध्वनि- कार सेवा का) नहीं, सकारात्मक कार सेवा का। किस-किसने उसमें अपनी सहभागिता दी? जिसने अभी तक कोई कार सेवा का काम नहीं किया, वे हाथ खड़ा करेंगे। जिसने कार सेवा का काम नहीं किया हो और जिसने किया हो, वे हाथ खड़ा करेंगे। हमारे यहां तो कोई भी करने के लिए तैयार नहीं है। काम किया हो तो हाथ खड़े होंगे ना। काम किया तो भी हाथ खड़ा करना और नहीं किया तो भी हाथ खड़ा करो तो हाथ खड़ा करने में क्या दिक्कत है? दोनों मिलाकर पूरे हाथ खड़े नहीं हुए हैं या आज मेरे गले के कारण से आवाज पीछे तक पहुंच नहीं पा रही है?

जिन्होंने कोई भी कार सेवा का कार्य हाथ में नहीं लिया है, वे व्यक्ति एक बार हाथ खड़ा करेंगे कि हमने अभी तक कार सेवा का कोई काम हाथ में नहीं लिया और जो लोग कार सेवा के लिए जुड़ गए हैं, वे लोग हाथ खड़ा करेंगे। दोनों मिलाकर सारे लोग नहीं हुए। दोनों को मिला लें तो उपस्थित सभी लोगों के हाथ खड़े नहीं हुए। क्या कारण है? क्यों नहीं हाथ खड़े हुए हैं? हमारे मन में कमजोरी है। हाथ हम क्यों नहीं खड़ा कर सकते हैं?

कई भाइयों ने कई कत्लखाने चलाने वालों को भी प्रतिज्ञाएं करवाई हैं। जो कत्लखाने चलाते थे, उन्होंने प्रतिज्ञा ले ली कि हम कत्लखाना नहीं चलाएंगे। उनको भी समझाने वालों ने समझाया कि प्रयत्न करने पर क्या नहीं हो सकता है? कोशिश करने वालों की हार नहीं होती और ठहरा पांव कभी मंजिल

पा नहीं सकता। नक्शे को देख विचार करो कि यह रहा मुंबई, वह रहा कोलकाता तो क्या मुंबई या कोलकाता पहुंच जाओगे? नहीं, ऐसे आदमी मुंबई या कोलकाता नहीं पहुंचेगा किंतु बराबर चलेगा तो मुंबई और कोलकाता पहुंचेगा या नहीं पहुंचेगा? (प्रतिध्वनि- पहुंचेगा।) वह वहां पहुंचेगा।

वैसे ही जो कोशिश करता है, उसकी हार नहीं होती और जो कोशिश नहीं करे, उसको सफलता कहां से मिल पाएगी? हम संभवनाथ भगवान की स्तुति को ध्यान में लेते हुए मन में संकल्पित हों और अपने मन में यह उत्साह जगायें कि ऐसा कोई कार्य नहीं है जो मैं करने में समर्थ नहीं हूं। यदि कोई मुझे दीक्षा के लिए खड़ा कर दे, दीक्षा दे भी दे तो पालन कर सकता हूं। बोलो पालन कर सकते हो या नहीं? एक बार हाथ खड़े करो कि कौन पालन कर सकता है? हाथ खड़े करो कि कौन पालन कर सकता है? यदि दीक्षा पच्चक्खा दें तो पालन करने में कौन तैयार रहेंगे? कौन पच्चक्खाई हुई दीक्षा का पालन करेंगे? कौन पीछे रहेंगे और कौन आगे रहेंगे?

(सभा में बैठे हुए काफी संख्या में लोगों ने हाथ खड़े किए)

अरे! वाह! अब तो कहना ही क्या है। दीक्षा पच्चक्खा ही दो। देर क्यों करनी? जब पालन करने को तैयार हैं तो खड़े होने में क्या दिक्कत हो रही है? खड़े रहने में क्या कठिनाई हो रही है? कोई हाथ पकड़कर खड़ा करे तो काम चलेगा क्या?

एक बात याद आई मुझे। उज्जैन की बात है। इंदौर का संघ 20-21 बसें लेकर गुरुदेव के चातुर्मास के लिए उपस्थित हुआ। जो आगेवान थे, शायद बख्तावर मल जी सांड, वे थोड़ा संकोच कर रहे थे। उनका संकोची स्वभाव था। उनका संकोच गलत नहीं था। भाई हम गुरुदेव को मानने वाले तीन घर नहीं, चार घर नहीं और इतनी बड़ी जवाबदारी ले लेंगे तो उसको पार कौन पटकेगा? जैसा मैंने कन्हैयालाल जी ललवाणी से सुना कि हम लोग पूरी प्लानिंग से बैठे थे कि जैसे ही गुरुदेव कुछ बोलेंगे कि वहां बैठे हुए दो-चार आदमी सांड साहब को खड़ा कर देंगे कि ये ही हमारे कर्ता-धर्ता हैं। वहां खड़ा कर दिया तो मना कौन करे? संयोग से इंदौर चातुर्मास खुल गया।

आचार्य श्री जी भी जान रहे थे कि ज्यादा घर नहीं है, किंतु साधु के लिए घरों की क्या कमी रहती है? पर साधुमार्गियों की दृष्टि से घर बहुत सीमित थे। उस चातुर्मास में बहुत सारी समस्याएं, बहुत सारी कठिनाइयां भी आईं किंतु

कठिनाइयों से घबराने से तो कभी भी मंजिल नहीं पाई जा सकती। कभी नौका को समुद्र में उतारा ही नहीं जा सकता। कभी नौका को उतारा ही नहीं तो समुद्र में क्या तालाब में भी उतरना भारी हो जाएगा और चलाने में आदमी समुद्र में भी नौका चलाते हैं। चलाते हैं या नहीं चलाते हैं? (प्रतिध्वनि- चलाते हैं) हिम्मत है या नहीं है? आकाश में प्लेन उड़ते हैं तो क्या ऐसे ही उड़ जाते हैं बिना हिम्मत के? (प्रतिध्वनि- नहीं) विचार करें कि उड़ाने वाला आकाश में प्लेन उड़ा रहा है। समुद्र में कई बार चक्रवाती तूफान आ जाते हैं फिर भी नौका चलाने वाले पूरे दमखम से उसमें लगे रहते हैं।

आचार्य देव जानते थे कि कठिनाई होगी। व्यवस्था देखने वाले घर कम हैं किंतु उन्होंने भविष्य को देखा कि आज कठिनाई लग रही है किंतु आने वाले समय में भविष्य सुखद होगा। इंदौर वालों ने भी सोचा नहीं होगा कि वर्षों-वर्षों तक उनको साधु-साध्वियों का बारहों महीने तक सेवा करने का मौका मिलेगा। मिलता रहेगा। आज कितने वर्ष हो गये? है कोई इंदौर वाला यहां पर? कितने वर्षों से सतियां जी विराज रही हैं? गिनती कौन लगावे? (सभा में बैठी एक महिला कहती हैं कि 24 साल हो गए)

24 साल हो गए। मतलब आप गिनती लगा रहे हो कि कितने वर्ष हो गए और कितने वर्ष नहीं हुए? मैं जहां तक सोचता हूं, पहले हुलासकंवर जी म.सा. को वहां 11 महीने रुकने का मौका मिला। उसके बाद तो लाइन लग रही है। क्या कभी इंदौर वालों ने सोचा था कि साधुमार्गी जैन संघ के साधु-साध्वियों का इतना विराजना-विचरण वहां होगा?

शायद नहीं सोचा होगा। मध्यप्रदेश में रतलाम आखिरी जंक्शन था। प्राय: वहीं तक विचरण होता था। कभी भूले-भटके उससे थोड़ा आगे चले गए तो बात अलग है। पहले जवाहराचार्य इंदौर पधारे थे और इंदौर रुककर आगे महाराष्ट्र पधार गये। उसके बाद विचरण कम ही रहा। मैं जहां तक सोचता हूं आचार्यों में पहला चातुर्मास आचार्य नानालाल जी म.सा. ने इंदौर में संपन्न किया। उसके पहले किन्हीं आचार्यों ने इंदौर में चातुर्मास नहीं किया होगा। उन्होंने बहुत कठिनाइयां देखीं। स्वयं गुरुदेव गोचरी के लिए पधारते थे। कई बार तो चार बज जाते थे गोचरी लाने में। सारे परिश्रम उन्होंने झेले और आज हमारे लिए उन्होंने कितना सुखद मार्ग कर दिया। कितना मार्ग को खोल दिया।

यह मत सोचो कि अरे साहब, कौन करेगा? क्या होगा? मैंने बताया

ना कि आचार्य देव शरीर से भले ही कोमल थे किंतु मन में कोई भी अन्यथा भाव नहीं। मन से जो विचार कर लिया, वह होना है तो होना ही है। कैसे होना, ये बात अलग है किंतु जो विचार कर लिया, वह होना ही है। हम भी उन्हीं गुरु के शिष्य हैं। हम भी उन्हीं गुरुओं को मानने वाले हैं। फिर हम अपने मन को कमजोर क्यों करें? हम भी ऐसा विचार करके चलें कि हर कार्य संभव है, संभव है और संभव है।

इतना ही कहते हुए विराम ले लेते हैं।

02.11.2019

12

शब्दो मां समाए ना एहवो तू महान

अभिनंदन जिन दर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव...

अभिनंदन जिनेश्वर की स्तुति करते हुए कहा गया है कि 'अभिनंदन जिन दर्शन तरसिये' अर्थात् भगवान! ये नयन आपके दर्शन को तरस रहे हैं और दर्शन नहीं हो पा रहे हैं।

स्थिति क्लियर है, स्पष्ट है कि यह स्तुति करने वाले आनन्दघन जी देहधारी अभिनंदन जिनेश्वर भगवान के दर्शन की बात नहीं कर रहे हैं क्योंकि आनन्दघन जी जिस समय हुए, उस समय जिनेश्वर देव इस धरा पर मौजूद नहीं रहे। अभिनंदन भगवान असंख्यात वर्ष पहले मुक्ति को प्राप्त हो गए। इसलिए उनके होने की बात थी नहीं। अध्यवसाय में, विचारों में, भावनाओं में, अन्तरहृदय में प्रभु के दर्शन होना किंतु वह भी दर्शन दुर्लभ।

'मत-मत भेदे रे जो जइ पूछिये रे सहु थापे अहमेव।'

अनेक मत और पंथों के बीच जब कभी चर्चा चलती है तो दर्शन होने के बजाय बात और उलझती जाती है। यह बात निश्चित है कि तर्कों के बल पर, शास्त्रार्थ के माध्यम से हम ज्ञान कर सकते हैं पर दर्शन नहीं। तत्त्वों का विमर्श करेंगे, तत्त्वज्ञान हासिल हो जाएगा। आत्मा है या नहीं है, परमात्मा है या नहीं है, इस पर डिस्कस करने से, चर्चा करने से, शास्त्रार्थ करने से हो सकता है कि हम एक निश्चय पर पहुंचें कि आत्मा है, परमात्मा है। शास्त्रार्थ और वाद-विवाद से हम केवल एक स्थिति तक पहुंचे हैं। पर क्या इतने मात्र से हमें आत्मा या परमात्मा के दर्शन हो जाएंगे? अनुभूति हो जायेगी? दर्शन नहीं होंगे। अनुभूति नहीं होगी।

मैं पांच और पांच का गुणा करूंगा तो उत्तर मिलेगा कि 25 होते हैं। पांच और पांच को जोड़ने से 10 होते हैं। जान लूंगा किंतु दर्शन कैसे होगा? यदि

कहीं यह चर्चा करने पर कि पांच और पांच कितने होते हैं, कोई कहता है 9 होता है, कोई कहता है 11 होता है और कोई कहता है कि 10 होता है तो जो अभी नहीं जान रहा है कि पांच और पांच मिलाकर 10 होता है, उसके लिए समस्या खड़ी होगी कि पांच और पांच 9 मानूं, 10 मानूं या 11 मानूं? यह दुविधा, यह समस्या उसके सामने खड़ी होगी। गणित का फॉर्मूला तो फिर भी समझ में आ जायेगा क्योंकि सर्वमान्य है। साक्षात् जोड़कर, गुणाकर बताया जा सकता है किंतु आत्मा को गणित के फॉर्मूले की तरह तो बताया नहीं जा सकता। साथ ही हमारे मत एक नहीं हैं। वैसी स्थिति में यही बात शास्त्रार्थ के माध्यम से उलझन पैदा करने वाली होती है क्योंकि भिन्न-भिन्न दर्शन, भिन्न-भिन्न दार्शनिक, आत्मा के स्वरूप को भिन्न-भिन्न रूप से स्वीकार करते हैं। आत्मा-परमात्मा के स्वरूप को एक रूप से स्वीकार नहीं करते। वैसी स्थिति में यह समस्या खड़ी होती है कि मैं कौन-से रूप को मानूं? मैं अपने भीतर आत्मा-परमात्मा के रूप को देखने की कोशिश करूं तो किस रूप में देखूं? कौन-सा रूप मेरे भीतर प्रकट होगा?

किसी ने ईश्वर कर्तृत्व के रूप में बताया कि ईश्वर सृष्टि की रचना करता है तो क्या मैं उसे उस रूप में देखूं? देखना चाहूं तो मुझे मिलेंगे? कौन-से रूप में भगवान मिलेंगे? एक तरफ कहते हैं 'ना जाने किस वेश में बाबा मिल जाए, भगवान रे।' किस वेश में मिल जाए, कोई भरोसा नहीं है। बड़ी दुविधा है। 'भगवन् राह बतावें कि कैसे मैं दर्शन प्राप्त करूं?' मैं आकुल, व्याकुल हूं। मुझे अकुलाहट है। दर्शन की चाह है। दीदार की तमन्ना है। प्यासी मीन, प्यासे चातक की तरह मुझे दर्शन की प्यास लगी हुई है। मैं एक झलक अपने भीतर अनुभव करना चाहता हूं। सामान्य रूप से भी तुम्हारे दर्शन मुश्किल हैं। नयों का और प्रमाण का आधार लेकर जब विचार करना चाहते हैं वहां पर भी बात लंबी खिंचती चली जाती है।

इतना आसान तथ्य नहीं है कि तुम्हारे दर्शन हो जाएं। उदाहरण दिया कि 'मद में घेर्‌यो अंधो केम करे, रवि शशि रूप विलेख' अर्थात् एक व्यक्ति जन्म से अंधा है। उसने दुनिया देखी ही नहीं। न मनुष्य का रूप देखा, न पशु का रूप। कुछ देखा ही नहीं। न पेड़ देखा, न पौधे देखे और उसने शराब पी ली, भंग पी ली। अब वह सूर्य और चंद्रमा का विवेचन कैसे करे? जन्म से अंधे व्यक्ति से कोई पूछे कि नेमीचंद जी पारख का चेहरा कैसा है? आप तो उनकी तरफ इशारा

कर रहे हो कि यह नेमीचंद जी हैं किंतु जन्म से अंधा व्यक्ति क्या बताएगा?

एक दिन पहले भी शायद मैंने कहा था कि घर में खीर बनी और जन्म से अंधा बुजुर्ग घर में है। वह आंखों से लाचार है किंतु नाक से सुगंध आ रही है। वह पूछता है, अरे बेटा! आज क्या बनाया है घर में? दादाजी घर में खीर बनी है, खीर। उसने फिर पूछा कि खीर कैसी होती है तो बताया कि धोली-धोली होती है। जन्म से अंधा व्यक्ति जानता है क्या कि धोलापन कैसा होता है? वह नहीं जानता है इसलिए पूछता है कि धोलापन कैसा होता है?

अब उसको कैसे बतायें कि सफेद क्या होता है? धोला क्या होता है? जो जन्म से अंधा है उसे कैसे बतायें कि धोला कैसा होता है। उसे बताया कि बगुले जैसा होता है। वह सफेद कैसा होता है? घर वाले एक बगुले को पकड़ करके लाए और उस बुजुर्ग के हाथ में दिया कि ऐसा होता है धोला। उसने उसके ऊपर हाथ फेरा और कहा, अरे! भाई ऐसी खीर मुझे नहीं खानी। यह तो टेढ़ी-मेढ़ी है। मेरे गले में फंस जायेगी। देखो उदाहरण, जब हम जान रहे हैं कि आंखें नहीं हैं तब सफेदी का उदाहरण बगुला लाकर देते हैं। बगुला पकड़ा देते हैं तो वह आकार देखेगा या रंग-रूप देखेगा? (प्रतिध्वनि- वह आकार देखेगा) वह आकार को ही देखेगा। देखेगा नहीं, जानेगा।

क्या वह सही रूप से खीर का विश्लेषण कर सकता है? खीर को जान पाएगा? (प्रतिध्वनि- नहीं) वह नहीं जान पाएगा। वह कैसे जान पाएगा? वह तो जन्म का अंधा है। किंतु ऐसे ही किसी ने भंग पी ली या शराब पी ली और उससे पूछें कि चंद्रमा कैसा है, सूर्य कैसा है तो वह बताएगा क्या कि चंद्रमा कैसा है, सूर्य कैसा है? जानें दे जन्मांध को। जिसने भंग या शराब पी रखी हो उससे पूछा जाये तो वह कभी सूरज को चांद कहेगा तो कभी चांद को सूरज। कभी किसी लाइट को भी सूर्य या चन्द्र वह बता सकता है।

रात के राजा उल्लू से कोई पूछे कि भाई बता सूर्य का प्रकाश कैसा होता है, सूर्य का आकार कैसा होता है, सूर्य कैसा है तो क्या वह बता पाएगा? वह बता नहीं पाएगा क्योंकि वह सूर्य की तरफ देखता है तो उसे काली-काली लकीरें दिखती हैं। उसको प्रकाश दिखता ही नहीं है। वैसे ही हम जन्म-जन्म के अंधे हैं। हमने आत्मा और परमात्मा के रूप को अब तक देखा नहीं है।

कैसा है आत्मा का रूप?

किसी ने देखा हो तो हमें भी बता दो। हम भी जानना चाहते हैं कि

आत्मा का रूप कैसा है? बड़े मजे की बात है कि जिसको कभी हमने देखा नहीं, उसके लिए लालायित हैं। जिस चीज को कभी देखा नहीं है, उसके लिए लालायित हैं कि वह दिख जाए, उसको जान लें।

हमारी जिज्ञासा बहुत सुंदर है। ऐसी जिज्ञासा होनी भी चाहिए। चाहे मैंने आत्मा को, परमात्मा को देखा हो या नहीं देखा हो। हो सकता है कि मैंने सही अनुभूति भी नहीं की हो, पर जैसे उस अंधे व्यक्ति ने खीर के रूप में बगुले को जानकर खीर के रूप को जान लिया कि खीर टेढ़ी-मेढ़ी होती है, वैसे ही टेढ़ा-मेढ़ा ज्ञान हमारा भी होगा कि आत्मा कैसी है। अंगुष्ठ प्रमाण है, प्रज्वलित दीप की लौ जैसी है, लौ जैसी है या कैसी है?

कोई मानता है कि दिमाग में आत्मा रहती है। कोई कहता है कि दिल में आत्मा रहती है। कुछ भी हो, हमने आत्मा को माना है। यह एक प्लस प्वाइंट है किंतु माइनस प्वाइंट बहुत ज्यादा है कि हमने ऊट-पटांग जाना है। हमने उसकी अनुभूति सम्यक् प्रकार से नहीं की। ऐसी स्थिति में मत-मतांतर से या वाद-विवाद से, शास्त्रार्थ से दर्शन नहीं हो सकते।

अभी दो दिन पहले बेंगलुरु का यंग माइंड समुदाय दर्शनार्थ उपस्थित था। रात्रि में एक भाई ने प्रश्न कर लिया कि कोई कहे कि आत्मा का ज्ञान करवाओ तो हम उसको कैसे समझायें? मैंने कहा कि समझाने की बात नहीं है। शब्दों से कभी आत्मा समझ में आएगी ही नहीं। 'शब्दों मां समाए ना एवो तू महान' अर्थात् शब्दों में जिसका रूप समा नहीं सकता है, वैसा रूप है आत्मा और परमात्मा का। शब्दों का अंबार लगा दो। शब्दों का ढेर लगा दो। क्या शब्दों से आत्मा को जान लिया जाएगा? क्या शब्दों से परमात्मा को जाना जा सकेगा?

हमारा शास्त्र बहुत स्पष्ट कहता है कि-

'तक्का तत्थ न विज्जई, मई तत्थ न गाहिया।'

यानी वहां तर्क का प्रवेश नहीं है। तर्क के आधार पर यदि तुम जानना चाहोगे तो वही मिलेगा जैसे उस अंधे को खीर के रूप में बगुला मिला। वैसे ही कुछ पकड़ा दिया जाएगा। आत्मा का अनुभव होता है। आत्मा का संवेदन होता है। हम संवेदन करना चाहें, अनुभव करना चाहें तो हमें आत्मा की अनुभूति हो सकती है किंतु दिमाग के सारे वाद-विवाद व शब्दों के ढेर को किनारे रखना पड़ेगा और शांत भाव से अनुभूति करनी होगी कि मेरे भीतर, मेरे शरीर में स्पंदन

हो रहा है या नहीं?

हमने अनुभव किया होगा अनेक बार। हमें अपने भीतर कुछ स्पंदन होने जैसा लगता है। यह अनुभूति है। मृत शरीर, मरे हुए कलेवर में स्पंदन नहीं हो सकता है। स्पंदन चैतन्य शरीर में होता है। वह स्पंदन आत्मा का है या शरीर का? जो स्पंदन हमें अनुभव हो रहा है, वह आत्मा का है। उसे केवल अनुभव किया जा सकता है।

अब यह विचार करो कि संवेदन कहां-कहां होता है? देखो, छोटी वाली अंगुली के आगे वाले भाग पर हाथ लगाते हैं तो यहां पर संवेदन होता है या नहीं होता है? फिर दूसरी अंगुली को देखो, फिर तीसरी अंगुली को देखो कि संवेदन हो रहा है या नहीं हो रहा है? शरीर के प्रत्येक अवयव पर ध्यान लगाकर अनुभव करेंगे तो शरीर के हर अवयव में, शरीर के हर स्थान पर हमें आत्मा का संवेदन होगा। इससे फलित हुआ कि आत्मा केवल दिल में नहीं है। आत्मा केवल दिमाग में नहीं है। आत्मा पूरे शरीर में है। शरीर के एक-एक अवयव तक, जर्रे-जर्रे तक आत्मा का फैलाव है।

डॉक्टर कभी सूईनुमा शस्त्र लगे औजार से देखता है कि खून का सर्कुलेशन बराबर हो रहा है या नहीं! वह पूछता भी है कि क्या अनुभव हो रहा है? उस सूई का संवेदन होता है या नहीं होता है? (प्रतिध्वनि- संवेदन होता है) उस सूई का संवेदन होता है। वह संवेदन कहां-कहां होता है? जहां भी सूई लगाई जाएगी, उसका संवेदन होगा। आप रात में नींद में सोये हुए हैं और किसी ने कैंची से आपके बाल काट दिए। पूरे नहीं, कुछ बाल काट दिए। बाल काटे जा सकते हैं या नहीं काटे जा सकते हैं? (प्रतिध्वनि- काटे जा सकते हैं) दूसरा व्यक्ति लोच करके, लोच के रूप में आपके बालों को उखाड़ रहा है। उससे नींद थोड़े ही खुलेगी? (प्रतिध्वनि- पूरी खुल जाएगी) खुल जाएगी? मतलब कुंभकरण की नींद से आपकी नींद हलकी है। सुना तो यही है कि कुंभकरण की नींद सघन थी। भले कितने ही बाल खींच लो, कितने ही बाल नोंच लो उसकी नींद नहीं खुलती। बताया तो यहां तक गया है कि उसके शरीर पर लोग उछल-उछलकर कूद लेते हैं, नाच लेते हैं तो भी उसकी नींद नहीं खुलती। चलो बढ़िया है कि आपकी नींद उससे हलकी है, इतनी जागरूकता तो है।

कोई लोच कर रहा हो तो क्या आप नींद में सो जायेंगे? लोच करता है या लोच कराते हैं तो लोच कराते-कराते नींद आएगी या लोच करते हुए नींद

खुल जाएगी? (प्रतिध्वनि- नींद खुल जाएगी) नींद खुल जाना संवेदन है। यह संवेदन हमें बोध कराता है कि जहां मेरे बाल जड़ से लगे हुए हैं माथे में, मस्तिष्क में, सिर पर, वह भाग आत्मा से युक्त है। वहां पर आत्मा का फैलाव है और जहां ऊपर का भाग आ गया, जहां कैंची के काटने से मालूम नहीं होता है, वहां पर आत्मा का बोध नहीं है। वहां पर आत्मा का अस्तित्व नहीं है। नाखून ऊपर-ऊपर से काटे तो कुछ भी मालूम नहीं पड़ा और थोड़ा चमड़ी वाले भाग से कट गया तो कैसा लगेगा? दर्द होगा या नहीं होगा? (प्रतिध्वनि- दर्द होगा) दर्द होगा। यह संवेदन आत्मा का बोध कराता है। यह संवेदन आत्मा के अस्तित्व का बोध कराता है।

मरे हुए कलेवर में, शव पर चाहे कितने भी हथौड़े चला दो और कितनी भी सूइयां लगा दो, क्या उसमें कोई स्पंदन होगा? (प्रतिध्वनि- नहीं) उसके बालों का कोई लोच करना शुरू कर दे तो क्या वह हल्ला करेगा? हो-हल्ला, आवाज करेगा? (प्रतिध्वनि- नहीं) यदि किसी शव ने आवाज कर दी तो...

...तो कहीं हमारी आवाज बंद नहीं न हो जाएगी! कहीं लाश ने आवाज कर दी तो बदले में हमारी आवाज बंद नहीं हो जाए!

बहुत स्पष्ट है कि शब्दों के आधार पर आत्मा की, परमात्मा की हम केवल चर्चा कर सकते हैं। उसका बोध नहीं कर सकते। उसका अनुभव नहीं कर सकते। केवल और केवल संवेदन से अनुभव कर सकते हैं। संवेदन के आधार पर हम जान सकते हैं कि मेरे पूरे शरीर में, कतरे-कतरे में मेरी आत्मा का वास है। मेरी आत्मा का प्रवाह पूरे शरीर में है। ऐसा नहीं है कि जैसे फैक्ट्री में कार्यालय से सारा मेंटेनेंस हो रहा है, वैसे ही हमारा मेंटेनेंस हो रहा है।

हो सकता है कि बहुल भाग, जहां मन का होता है, वहां से संचालित होता हो किंतु आत्मा के प्रदेशों का फैलाव पूरे शरीर में बना हुआ है। एक भी ऐसी जगह नहीं मिलेगी, जहां पर आत्मा के प्रदेशों का फैलाव नहीं हो रहा हो। यह ज्ञान जब हो जाए और ये भी ज्ञान हो जाए कि 'अप्पा कत्ता विकत्ता य' यानी आत्मा ही कर्ता है और वही विकर्ता है तो उससे दृढ़ता अलग ही होगी। तत्त्वार्थ सूत्र में बताया गया है कि नव तत्त्वों का ज्ञान होने से सम्यक्त्व दृढ़ीभूत हो जाता है।

जब तक जीव का ज्ञान नहीं होगा, आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान नहीं होगा, उसकी अनुभूति नहीं होगी, तब तक हमारी आस्था प्रगाढ़ नहीं बन

पाएगी। जीव-अजीव, पुण्य-पाप की अनुभूति यदि हमारे अन्तर् में हो जाएगी तो फिर हमें शब्दों से सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मेरे भीतर जो प्रसन्नता व्याप्त हुई, वह पुण्य का योग है। मेरे भीतर जो खिन्नता पैदा हुई, संक्लेश पैदा हुआ, वह पाप का परिणाम है। यह अनुभव हमें होता है कि किसी कार्य में खुशी हो रही है तो उसका कारण क्या है? भारी टेंशन हो रहा है, दु:ख हो रहा है, पीड़ा हो रही है तो उसका कारण क्या है? सुख और दु:ख का वेदन हमारे पुण्य और पाप के आधार पर हमें होता है। इसकी अनुभूति जब हो जाती है तो हमारा सम्यक्त्व दृढ़ हो जाता है। फिर उसको कोई भुलाना चाहे, हटाना चाहे तो हटा नहीं पाएगा।

नील पाउडर पानी में घोलकर दीवार पर नाम लिखा गया और घंटे भर के बाद मूसलधार वर्षा हुई तो दीवार कौन-से रंग से रंग जाएगी? दीवार रंग जाएगी, नाम धुल जाएगा। उसी दीवार पर ऑयल पेंट से नाम लिखा है तो बना रहेगा या धुल जाएगा? (प्रतिध्वनि- नाम बना रहेगा) जैसे नील के घोल से लिखा हुआ नाम धुल जायेगा, वैसे ही हमारी यह श्रद्धा कि हम जैनी हैं, कब धुल जाए, पता नहीं पड़ेगा। तत्त्व ज्ञान से परिपक्व बनी श्रद्धा ऑयल पेंट के रूप में है। जैसे ऑयल पेंट से नाम लिखा चाहे कोई चित्र चित्रित कर दिया तो कितना भी पानी पड़े, कितनी भी हवा चले, वह मिटने वाला नहीं है, वैसे ही वह श्रद्धा मिटने वाली नहीं होती है। इसलिए आनन्दघन जी चाहते हैं कि मुझे दर्शन हो जाए, मुझे अनुभूति हो जाए। मेरी आस्था, मेरी श्रद्धा सशक्त हो जाए, बलवान हो जाए, बलवती हो जाए।

आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. मुनि अवस्था में थे। गंगाशहर-भीनासर में विराज रहे थे। उनकी तबीयत थोड़ी नरम थी। वैद्य रामरत्न जी उपस्थित हुए। प्रथम दृष्ट्या जैसे ही उन्होंने मुनि नानालाल जी को देखा उनके मुंह से शब्द उच्चरित हुए, '**प्रथम वय यह शांत सववे तस्थटी**' यानी कि प्रथम वय में जो शांति नजर आ रही है, वह आने वाले समय में और गहन होने वाली है। 20-22 वर्ष की उम्र में इस प्रकार की शांति, इस प्रकार की सौम्यता यदि विद्यमान है फिर तो आने वाले समय में ये और घनीभूत होने वाली है। ये वय सामान्यतया चंचल होती है। इस वय में यह परिपक्वता, यह गंभीरता, यह शालीनता, यह शांति उनको प्रभावित कर गई। उन्होंने रोग बाद में देखा। उनके गुणों को पहले देखा। हमारी शक्ल, हमारी सूरत, हमारा चेहरा प्रथम दृष्टि

में ही सामने वाले पर अपना प्रभाव डाल देता है। चाहे अच्छा हो चाहे बुरा, प्रथम दृष्टि में ही भांप लेता है।

मैं बात इसलिए बता रहा हूं कि हम आत्मा के अस्तित्व की बात कर रहे हैं। आत्मा के स्वरूप का ज्ञान करना चाहते हैं। उसकी अनुभूति हमें हो सकती है, बशर्ते कि हम उसका अनुभव करना चाहें। यह शांति आत्मा का गुण है, शरीर का गुण नहीं है। आचार्य पूज्य गुरुदेव ने एक चिंतन में लिखा कि शांति, वह अवस्था है, वह मन:स्थिति है, वह भावना है, जो सहनशीलता, धैर्यशीलता आदि से निर्मित होती है। दोनों बातें कह सकते हैं कि यदि शांति है तो हमारे भीतर धैर्य होगा और हमारे भीतर धैर्य है तो हम जल्दी से अशांत नहीं हो सकते। हमारे भीतर सहनशीलता है तो हमें कोई दु:खी नहीं बना सकता। पर सहनशीलता की कमी है तो हर विचार मुझे दु:खी बना सकता है। हम अपनी सहनशक्ति को, अपनी सहनशीलता को कितना घनीभूत बना सकते हैं, कितना दृढ़ बना सकते हैं, विचार करें।

दूध गर्म करने के लिए चूल्हे पर चढ़ाते हैं, औटाते हैं। एक-दो उफान आने के बाद मान लेते हैं कि दूध गर्म हो गया। उसी दूध में एक चम्मच या खुरपा डालकर हिलाते रहे, हिलाते रहे और एक सेर दूध का आधा सेर कर लिया, आधा लिटर कर दिया। एक तो केवल तीन उकाले लिए, तीन उफान आए और दूध को उतार कर पीया जाएगा और दूसरे एक लिटर दूध को आधा लिटर करके पिया जाएगा। दोनों में फर्क होगा? (प्रतिध्वनि- हां) दोनों के स्वाद में फर्क होगा न? (प्रतिध्वनि- हां) क्या पता? और एक लिटर दूध को 250 मि.लि. कर लिया। फिर और घनीभूत कर दिया। अब वह मावा बन गया। खोया बोलते हैं या मावा बोलते हैं? (प्रतिध्वनि- मावा बोलते हैं) हां, मावा।

दूध में कोई चीज गिरेगी तो दूध उछलेगा पर मावे में कोई चीज गिरी तो मावा उछलेगा या चीज उसमें धंस जाएगी? (प्रतिध्वनि- चीज उसमें धंस जाएगी।) मावा उछलेगा नहीं। हमारी सहनशक्ति को औटा कर हमने मावा बना लिया तो कोई शब्दों के कितने भी कंकड़ डाले, कोई कितना भी कुछ करे, भीतर से उछाला नहीं आएगा।

अर्जुन अणगार के बारे में बहुत बार बोलता हूं मैं। बहुत प्रेरणाप्रद कहानी है। दीक्षा लेने के बाद कइयों ने गालियां बकीं, कइयों ने व्यंग्य कसे, पत्थर फेंके, डंडे फेंके। चोट लगी, कान में शब्द भी गए किंतु उसके भीतर से

कोई उछाल नहीं आया। ऐसा कितने समय में उसने अपने आपको साध लिया? (प्रतिध्वनि- छः महीने में) अरे! छः महीने में तो मोक्ष चले गए। छः महीने से भी पहले। जब वे सड़क पर चल रहे थे तब ये घटनाएं हो रही थीं। विचार करो कि कहां अर्जुन माली और कहां हम! कितने समय से साध रहे हैं? थोड़ा-सा मन के विपरीत हो जाए तो उछाले चालू हो जाएंगे।

पूणिया श्रावक की सामायिक की कीमत को भगवान भी बता नहीं सके। उसकी दलाली में भी इतना धन कि मगध सम्राट श्रेणिक का सारा कम पड़ गया। पूरा नहीं हो रहा था। दूसरी तरफ हमारी एक सामायिक? हम कहेंगे कि ले जा भाई, चाहे उतने में ले जा। जो मिले वह अच्छा। जितना पैसा मिले, उतना ही अच्छा। क्या कारण है? बहुत स्पष्ट है कि मावा, दूध से कीमती होता है। दूध यदि 50 रुपये लिटर है तो मावा कैसे है? (प्रतिध्वनि- चार सौ रुपये) चार सौ रुपये। अरे भाई, अब तो दीवाली निकल गई, अब क्या है? दीवाली में खरीदो तब मालूम होगा भाव, अब तो भाव मंदा पड़ गया होगा?

(कुछ लोग बोलते हैं कि अभी वही भाव है, शादी-ब्याह का सीजन है।)

शादी-ब्याह अभी कहां है? चालू हो गए क्या? (प्रतिध्वनि- हां) खाद्य पदार्थों की तो रोज ही कीमत है, वह तो रोज ही चाहिए। कभी थोड़ा ज्यादा चाहिए, कभी कम।

खैर, कुछ भी हो। ये तो बात बीच में आ गई तो हो गई। किंतु एक बात है कि दूध से मावे की कीमत ज्यादा है या नहीं है? (प्रतिध्वनि- है) हमारी साधना की कीमत है, शरीर की कीमत नहीं है। मैंने संयम को कितना साधा? मैंने अपनी वृत्तियों को कितना साधा? उसकी कीमत है, नहीं तो मैं भले ही 50 वर्षों तक पातरे ढोता रहूं, क्या हो जाएगा? उद्धार करने वाला कितने साल में उद्धार कर लेता है? छः महीने में नहीं, एक दिन में उद्धार हो जाए।

गजसुकुमाल मुनि को 24 घंटे भी नहीं लगे और उन्होंने अपना उद्धार कर दिया। ये मत सोचो कि कितने समय का साधु है? ये देखो कि उसकी साधना कितनी प्रखर है? कितनी तेजस्वी है? उसने अपने आपको मावा बना लिया है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव ने वैराग्य अवस्था से ही स्वयं को साधना शुरू कर दिया। घटना तो ऐसी भी है कि जब उन्होंने सुना कि आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. केवल दूध और छाछ पर रहते हैं, अन्न नहीं लेते हैं तो

उन्होंने विचार किया कि मैं केवल पानी पर रहूंगा और धीरे-धीरे उन्होंने रोटी खाना कम कर दिया। आधी रोटी सुबह और पाव रोटी शाम को। उन्होंने लक्ष्य बना लिया था कि मैं केवल पानी पर रहूंगा। एक बार चक्कर आया तो आचार्य गणेशलाल जी म.सा. ने कहा कि क्या बात है, तब यह रहस्य खुला कि वे अपने आपको साध रहे हैं। उन्होंने कहा कि मैं केवल आधी रोटी सुबह खाता हूं और पाव रोटी शाम को। तब गणेशलाल जी ने फरमाया कि अरे भाई! आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. तो बीमारी के कारण से अन्न का सेवन नहीं करते। उन्होंने समझाया कि केवल ऐसे साध लेने से साधना नहीं होती है। जब तक उसको सही तरीके से नहीं समझे तब तक साधना मुश्किल होता है किंतु साधना की दिशा यदि होती है और सही दिशा मिलती है तो व्यक्ति अपने आपको साध लेता है। कहने का आशय है कि देखा-देखी ही न हो। अन्तर् को भी साधो। आचार्य पूज्य गुरुदेव तो अन्तर् को भी साध ही रहे थे। उनके वैराग्य जीवन के अनेक प्रसंगों से ये जाना जा सकता है। लेकिन इतना अवश्य है कि साधना ज्ञान-पूर्वक होनी चाहिए।

बहुत सारे उदाहरण हैं कि उनको कई चांस मिले। वे चाहते तो वस्त्रों के ढेर लगा लेते, पैसों से पॉकेट भर जाती, किंतु उन्होंने कहा, नहीं मेरे पास पर्याप्त है। मैं ज्यादा नहीं रखता। बहुत सारी बातें हैं ऐसी। ये बातें साधना की मक्कमता, दृढ़ता दर्शाती हैं। ये साधना की मक्कमता, दृढ़ता जितनी होती है, जितनी गहरी होती है, उतनी ही शांति की अनुभूति साधक कर पाता है। यह शांति की अनुभूति भी तब हो पाएगी जब आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान हो जाएगा, आत्मा की अनुभूति हो जाए, आत्मा का संवेदन हो जाए। उसके पीछे सारी चीजें हैं, नहीं तो आत्मा का पता ही नहीं है और साधना करने के लिए चले। दूल्हे का तो पता नहीं और बराती दौड़-दौड़कर इकट्ठा हो गए। अरे भाई! दूल्हा कौन है? हमारी साधना का दूल्हा है- आत्मज्ञान, आत्मा की अनुभूति, आत्मा के अस्तित्व का बोध। बाकी सारी चीजें बराती के रूप में हैं। हम भी अपने आप में प्रयत्न करें। अपने आपको साधने का प्रयत्न करें। कोई कैसे भी तीखे वचन कह दे, कोई कितने भी तीर चला दे किंतु हमारे भीतर एक भी तीर चुभना नहीं चाहिए। हम अपने कलेजे को इतना मक्कम करें कि कोई तीर उसके भीतर घुस ही नहीं पाए।

पहले गारे के मकान होते थे और एक लकड़ी की कील लेकर ठोक दें

तो भी ठुक जाती थी और आज आरसीसी के मकान बनने लग गए हैं तो एक तीखी कील, तीखा कीला हथौड़े से ठोको तो भी वह भीतर घुसती नहीं है। वह टेढ़ी हो जाती है। जैसे आरसीसी की दीवार सशक्त हो गई, मजबूत हो गई, वैसे ही तत्त्व ज्ञान से, साधना से, आत्मा के अस्तित्व के बोधपूर्वक हमारा दिल, हमारी साधना इतनी मजबूत हो जाए, इतनी मक्कम हो जाए, इतनी गहरी हो जाए कि वहां पर कोई तीर चुभे ही नहीं।

जिस दिन हम अपनी साधना को ऐसा बना पाएंगे, वह दिन हमारे लिए अपूर्व अवसर बनेगा और अपूर्व अनुभूति का हमें स्रोत देने वाला बनेगा। हम वैसी साधना की रंगत अपने भीतर पैदा करें। वैसी साधना हमारी बने। इसके लिए लक्ष्य बनाकर हम अपने आपको साधते हुए आगे बढ़ेंगे तो निश्चित रूप से सफलता प्राप्त करने में सक्षम बनेंगे, दृढ़ बनेंगे, सशक्त बनेंगे।

इतना ही कहते हुए विराम।

03.11.2019

13

सँभलो, पाँव फिसल न जाये

सुमति चरण कज आतम अर्पणा,
दर्पण जेम अविकार सुज्ञानी,
मति तर्पण बहु सम्मत जाणिये,
परिसर्पण सुविचार सुज्ञानी,
सुमति चरण कज आतम अर्पणा।।

'सुमति चरण कज आतम अर्पणा' का अर्थ होता है, सुमतिनाथ भगवान के चरण कमलों में अपनी आत्मा को समर्पित कर दो, अर्पित कर दो, न्योछावर कर दो।

तर्क का युग है। तर्क ये खड़ा होता है कि अपना समर्पण हम सुमतिनाथ भगवान के चरणों में क्यों करें? उसका समाधान दिया कि 'दर्पण जेम अविकार सुज्ञानी', अर्थात् सुमतिनाथ भगवान के चरण, दर्पण की तरह विकार रहित हैं। दर्पण में एक बड़ा मौलिक गुण है कि वह किसी के प्रभाव में नहीं आता। वह किसी के दूषण या भूषण को अपने भीतर प्रविष्ट नहीं कराता। उसके सामने कोई जैसा आता है, वैसा वह दिखा देता है। वह भेद नहीं करता कि राजा आ गया तो उसे थोड़ा अलग ढंग से दिखाऊं और रंक आ गया तो उसे अलग ढंग से दिखाया जाए। वह कोई भेद नहीं करता। कैमरे में एक बार बदलाव हो सकता है। फोटो को बढ़िया और घटिया भी बनाया जा सकता है किंतु दर्पण आपकी आकृति में कोई परिवर्तन नहीं करता। जैसी आपकी आकृति है, वैसी ही वह दिखा देता है। वह अपनी तरफ से कोई भेल-संभेल नहीं करता।

कहा गया है-

'सुमति चरण कज आतम अर्पणा, दर्पण जेम अविकार सुज्ञानी'।

यानी जैसे दर्पण विकार रहित होता है, वैसे ही सुमतिनाथ भगवान के

चरण विकार रहित हैं। इसलिए उनके चरणों में स्वयं को समर्पित कर दो। इस पर तर्क है कि सुमतिनाथ भगवान के चरण विकार रहित हैं तो उससे मेरा लेना-देना क्या? मैं उनके चरणों में अपना अर्पण क्यों करूं? अपना समर्पण क्यों करूं? उससे मुझे क्या लाभ?

नीति में एक बात कही गई है कि बिना प्रयोजन के मंद व्यक्ति भी प्रवृत्ति नहीं करता। उसको प्रयोजन मालूम होना चाहिए। मुझे क्या लाभ होगा, मैं अपने लाभ की ओर देखूंगा। अपने लाभ का विचार करूंगा।

सरकार की कोई भी योजना सामने आती है तो वह मेरे लिए क्या लाभ की हो सकती है, मैं उससे कैसे लाभान्वित हो सकता हूं? व्यक्ति अपने लाभ पर विचार करता है। यहां पर भी व्यक्ति यह विचार करता है कि सुमतिनाथ भगवान को आत्म अर्पण करने से मुझे क्या लाभ होगा? उसका समाधान करते हुए स्तुतिकार कहते हैं कि 'मति तर्पण बहु सम्मत जाणिये परिसर्पण सुविचार सुज्ञानी' अर्थात् तुम्हारी मति, तुम्हारी बुद्धि तृप्त हो जाएगी। दुनिया में तृप्ति बहुत कठिन चीज है। व्यक्ति कितना भी खा ले तृप्ति नहीं होती। कितने ही वस्त्र, आभूषण क्रय कर ले, संग्रहित कर ले फिर भी मन तृप्त नहीं होता। सौ साड़ियां पास में हों और नई डिजाइन की साड़ी देखने में आ गई तो मन उसके लिए तैयार हो जाएगा। पैसे यदि पास में हैं तो वह साड़ी भी 101 का नंबर लगा लेगी। तृप्ति नहीं है। इसलिए सुमतिनाथ भगवान की शरण, उनके चरण पाने से तुम्हारी मति तृप्त हो जाएगी, बुद्धि को सुकून मिलेगा, वह समाधि में आ जाएगी।

इतना ही नहीं, उसके बाद तुम्हारी बुद्धि में अच्छे विचारों का परिसर्पण होगा। अच्छे विचार तुम्हारी बुद्धि में पैदा होंगे। तुम्हारी सोच, तुम्हारी समझ सम्यक् बन पाएगी। इन विचारों को सुनने से व्यक्ति को लगेगा कि अवश्यमेव मुझे सुमतिनाथ भगवान के चरणों में अपना समर्पण करना चाहिए।

एक बात और ध्यान में ले लें कि सच्ची परमात्म भक्ति को बिना जाने, बिना भक्ति किये हमारा उद्धार होने वाला नहीं है। कोई सोचे कि मैं परमात्मा की प्रतिमा के सामने नृत्य करूं, गीत गाऊं, जय-जयकार करूं तो परमात्मा रीझ जाएंगे, खुश हो जाएंगे तो कुछ नहीं होने का है। कुछ भी नहीं होने वाला है और न ही हमें तृप्ति मिलने वाली है। नाचने-कूदने में भक्ति होती तब तो किन्नर बहुत नाचने-कूदने वाले होते हैं, बहुत गीत गाने वाले होते हैं। इससे भक्ति नहीं होती।

'शीश दिये बिना भक्ति नाहि'

जब तक शीश नहीं दे सकते, तब तक भक्ति नहीं हो सकती है।

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
शीश दियो जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।

अर्थात् यदि शीश देने पर भी गुरु की प्राप्ति हो जाए तो आप लोग समझो कि काम सस्ते में निपट गया। यह स्पष्ट है कि जब तक हम अपने आप को न्योछावर नहीं कर देंगे तब तक हम आत्मविकास की दिशा में गतिशील नहीं हो सकते हैं। कदाचित् बढ़ भी गये तो मंजिल नहीं मिलेगी। कोई सोचे कि अपनी आत्मा के विकार अपने भीतर भरे रखने से, परमात्मा की भक्ति करते रहने से मेरा उद्धार हो जाएगा, मेरा कल्याण हो जाएगा तो यह उस व्यक्ति की नासमझी होगी। यह उसकी समझदारी नहीं होगी।

जब तक अपने शीश को, अपने मन को, अपनी बुद्धि को समर्पित नहीं कर दोगे, न्योछावर नहीं कर दोगे तब तक उद्धार होने वाला नहीं है, तब तक कल्याण होने वाला नहीं। जिस दिन हम न्योछावर हो जाएंगे, स्वत: हमारे भीतर वह शक्ति जगेगी जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की होगी। वह शक्ति हमारे भीतर जागृत हो जाएगी। 'सुमति चरण कज आतम अर्पणा' अर्थात् सुमतिनाथ भगवान के चरण कज, चरण कमलों में आत्मा की अर्पणा। ये स्पष्ट है कि जब तक हम अपने मन को नहीं सौंप देते हैं तब तक उद्धार नहीं होगा। शीश का मतलब है, मन। शीर्ष स्थान वाला। उसको यदि हमने नहीं सौंपा तो उद्धार नहीं होगा। जिसने अपने शीश को दे दिया, उसका उद्धार हो गया। फिर कल्याण में देर नहीं लगती। हम बहुत बार इसको बचाकर रख लेते हैं।

सिर का दूसरा अर्थ अहंकार भी किया जाता है क्योंकि गर्दन से अहंकार का संबंध जुड़ा हुआ है। गर्दन अहंकार के कारण से खड़ी रहती है, झुकती नहीं है। गर्दन यदि झुक गई तो समझो कि अहंकार झुक गया और अहंकार झुक गया तो फिर कल्याण में देर नहीं लगेगी, उद्धार में देर नहीं लगेगी। समझें इसको थोड़ा-सा कि अहंकार के नमने से कल्याण कैसे हो जाता है, उद्धार कैसे हो जाता है और क्यों हो जाता है? इसको थोड़ा जानने का हम प्रयत्न करें। जब तक अहंकार हमारे भीतर होता है, हमारी दृष्टि बाह्य होती है।

एक विषय मुझे याद आ रहा है। श्रीमद् स्थानांग सूत्र में मन, वचन, काया को शस्त्र कहा गया है। जैसे नंगी तलवार भयोत्पादक होती है, वैसे ही मन,

वचन, काया शस्त्र रूप हैं। ये संवृत नहीं हैं, असंवृत हैं। शस्त्र का मुंह दूसरे की ओर होता है। तीर का संधान करने पर तीर की नोक किधर होती है? अपनी तरफ होती है या सामने वाले की तरफ होती है? (प्रतिध्वनि- सामने वाले की तरफ)

नोक दूसरी तरफ होती है। बंदूक की नाल, रिवॉल्वर की नाल, तोप का मुंह किधर होगा? (प्रतिध्वनि- सामने वाले की तरफ) सामने वाले की तरफ होगा। सामने की तरफ होने का मतलब है कि उसका दृष्टिकोण दूसरी तरफ रहता है।

वैसे ही असंयम का दृष्टिकोण बाह्य होता है। वह बाहर की ओर देखता है, अपनी ओर नहीं देखता। मन, वचन, काया जो संवृत हो गये, जिनको संवृत कर लिया, आस्रव और असंयम से अलग कर लिया, उनके लिए बताया गया है कि वे स्वयं में देखने वाले होते हैं। वे योग अपनी दिशा में लग जाते हैं। अहंकार बाहर की ओर देखता है, अपनी ओर नहीं देखता। उसको दूसरे में बुराइयां नजर आती हैं। उसे दूसरे में दोष नजर आते हैं। वह दूसरे की एक-एक गतिविधि का मुआयना करता रहता है कि यह हो गया, वह हो गया। जब तक हम दूसरों के दोषों को देखते रहेंगे, निहारते रहेंगे तब तक उन दोषों को अपने भीतर संग्रहित करते चले जाएंगे।

जिस व्यापारी को अनाज खरीदना है, वह कौन-सी मंडी में जाएगा? (प्रतिध्वनि- अनाज की मंडी में) वह सर्राफा मंडी में नहीं जाएगा। उसको अनाज खरीदना है इसलिए अनाज मंडी में ही जाएगा।

महाराज जनक की राजसभा में अष्टावक्र ऋषि ने अनुमति लेकर प्रवेश किया। जैसे ही लोगों ने उसको देखा, हँसने लगे कि अरे! कैसा रूप है, कितना बेढंगा है, कैसा बेडौल है? वे जब रुके तो अष्टावक्र ऋषि हँसने लगे। राजर्षि जनक पूछने लगे कि ऋषि आपके हँसने का कारण क्या है? आप क्यों हँसे? अष्टावक्र ने कहा कि राजन्, आप न्याय के सिंहासन पर आरूढ़ हैं और आपको न्याय करना चाहिए। आप मेरे से पूछ रहे हो कि मैं क्यों हँसा! मेरे पहले भी कई लोग हँसे थे, उन लोगों से आपने नहीं पूछा था कि वे क्यों हँसे? जब उनसे नहीं पूछा गया तो मेरे से क्यों पूछा जा रहा है? पहले कौन हँसा? पहले सभा के लोग हँसे थे या पहले ऋषि हँसे थे? (प्रतिध्वनि- सभा के लोग) तो पहले सभा के सदस्यों से पूछा जाना चाहिए था कि वे क्यों हँसे? राजा को अपनी भूल समझ में आई और उन्होंने सभा सदस्यों से अभिमुख होकर पूछा कि भाई, आप लोग क्यों हँसे?

अब कौन बोले? हँसने को तो हँस गए, अब जवाब क्या दें? कैसे बोलें कि ऋषि के बेडौल शरीर को देखकर हमें हँसी आ गई। अंततोगत्वा उन्होंने अपनी सच्ची बात राजा के सामने व्यक्त कर दी। उसके बाद जब राजा ने ऋषि से पूछा तो ऋषि ने कहा कि राजन् मैंने सुना था कि आपकी सभा में आत्मा और परमात्मा की चर्चा होनी है। यहां बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् हैं और मैं भी आत्मा की उस चर्चा को सुनने के लिए यहां पर उपस्थित हो गया। किंतु यहां आने पर मुझे निराशा हुई और मुझे लगा कि यहां तो चमार ही चमार बैठे हैं। मैं कहां आकर उपस्थित हो गया? इसलिए मुझे हँसी आ गई। अपने को चमार सुनकर लोगों को थोड़ा अखरा किंतु बोलें क्या? राजा ने कहा कि ऋषि आप यहां के लोगों को चमार कैसे कह रहे हो? अष्टावक्र ने कहा कि राजन्, चमार की दृष्टि चमड़े पर होती है कि कौन-सा चमड़ा कैसा है। किस कार्य में प्रयुक्त हो सकता है। वह चमड़ी की पहचान करने में माहिर होता है।

चमार के पास कोई पांच प्रकार के हीरे ले जाये, पांच प्रकार के रत्न ले जाये, तो वह उन रत्नों की कीमत आंक पाएगा? (प्रतिध्वनि- नहीं) उसके लिए उनकी कीमत आंक पाना संभव नहीं है क्योंकि उसने जिंदगी भर चमड़े को ही देखा है। हां, चमड़ा कौन-सा बढ़िया है, कौन-सा घटिया है, किस चमड़े का क्या मोल होना चाहिए, यह बात वह बखूबी बता देगा। जैसे चमार चमड़ी की पहचान करने वाला होता है, वैसे ही यहां के लोग चमड़ी की पहचान करने में माहिर हैं। उन्होंने मेरे शरीर के चमड़े को देखा, मेरे काले-कलूटे रूप को देखा किंतु मेरे भीतर झांकने की कोशिश नहीं की। आत्मज्ञानी, शरीर को नहीं, आत्मा को देखता है।

ऋषि के वचनों पर हम सभी विचार करें। आत्मज्ञानी किसको देखेगा? आत्मज्ञानी शरीर को देखेगा या ऊपर की चमड़ी को? हमारे रूप-रंग को देखेगा या हमारी आत्मा की शक्ति को देखेगा? (प्रतिध्वनि- आत्मा की शक्ति को)

धनी व्यक्ति धन को देखता है। उसके सामने बाहर की पोशाक होती है, बाहर का परदा होता है। वह उसको महत्त्व देता है किंतु आत्मार्थी किसको महत्त्व देगा? आत्मार्थी धन को महत्त्व देगा या आत्मधन को ? आत्मार्थी गुणवत्ता को महत्त्व देता है। उसके सामने धन कोई मायने नहीं रखता। उसके सामने यह मायने नहीं रखता कि कौन व्यक्ति कितना बड़ा है। कहने का आशय है कि हमारी दृष्टि जैसी होगी वैसी सृष्टि बनेगी। अहंकार वाली दृष्टि, बाह्य दृष्टि रहेगी, बाहर की

दृष्टि रहेगी। वह अपने आपको देखने के लिए तैयार नहीं होगा। वह दृष्टि स्वयं को नहीं देख पाएगी क्योंकि उसकी रफ्तार, उसकी प्रवृत्ति बाहर की ओर है। वह उन बातों का संकलन करेगी जो बाहर हो रहा है। अपने भीतर क्या घट रहा है, क्या हो रहा है, उसे देखने के लिए उसकी तैयारी नहीं होगी। हम सभी अपनी-अपनी दृष्टि का अन्वेषण करें। बहुतायत हम दूसरों के दोषों को देखने में दिलचस्प होते हैं। सोचें, हम अपने दोषों को देखने में कितनी रुचि रखते हैं?

हमें दूसरों के दोष देखने से क्या मिलेगा? हो सकता है कि हम दोषों को बढ़ावें, हमारे भीतर दोष बढ़ जाएं। हमारे दोष घट जाएंगे, यह बहुत कठिन है। अपने दोषों को यदि घटाना है तो अपने आपको देखना पड़ेगा। अपने दोषों की समीक्षा करनी पड़ेगी। अपने दोषों की खोज करनी पड़ेगी और कौन-सा दोष कितना भारी है, यह जानना पड़ेगा।

एक व्यक्ति बोला कि मेरे में क्रोध नहीं है, मान नहीं है, माया नहीं है, लोभ नहीं है। फिर क्या खामी है? (प्रतिध्वनि- वह झूठ बोलता है) वह झूठ बोलता था। झूठ बोलने वाले में क्रोध था या नहीं था? क्रोध है या नहीं है? मान, माया, लोभ अभी इससे मालूम पड़ेगा कि कौन-सा दोष कितना भारी है? जब तक व्यक्ति अपने भीतर के दोषों की समीक्षा नहीं करेगा, जानने का प्रयत्न नहीं करेगा, तब तक उसे ज्ञात नहीं हो पायेगा कि हकीकत में कौन-सा दोष भारी है। झूठ बोलना, क्रोध आदि से भारी ही नहीं बहुत भारी है। इसलिए कोई यह कहे कि मैं क्रोध नहीं करता, मान-माया से दूर हूं, लोभ तो है ही नहीं, बस केवल झूठ बोलने की आदत है तो आप सोचें कि वह कहता है कि क्रोधादि नहीं है केवल झूठ बोलने की आदत है। उसको क्रोधादि के समक्ष या उसकी तुलना में झूठ हलका लगता है। क्या उसकी सोच से आप सहमत हैं? आप उससे सहमत नहीं होंगे। झूठ नहीं बोलना तो क्या कषाय करना! अध्यात्म की भाषा में न झूठ जायज है और न कषाय। दोनों त्याज्य हैं। प्रश्न हो कि दोनों में से पहले किसे छोड़ना है तो उत्तर होगा कि झूठ को पहले छोड़ें।

मूल कषाय क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। इनके आधार पर भय, शोक, ईर्ष्या, डाह आदि अन्य कषाय भी हैं। इसमें ईर्ष्या की प्रवृत्ति बहुत जल्दी होती है। क्यों? इसका उत्तर आपको अध्यात्म दृष्टि से प्राप्त होगा। अध्यात्म की दृष्टि से दूसरों की बढ़ती को देख अपने भीतर ईर्ष्या का भाव पैदा होता है। यह भी एक बहुत बड़ी खामी है। यह एक दोष हमारी आत्मा को कभी ऊंचाइयों पर जाने नहीं

देगा। वह नीचे बैठाए रखेगा। ईर्ष्यालु कभी भी किसी की संप्रभुता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा।

ईर्ष्या अहंकार की सहचरी होती है। अहंकार आएगा तो ईर्ष्या होगी और ईर्ष्या होगी तो वह दूसरे की संप्रभुता को, दूसरे की विशेषता को स्वीकार नहीं कर पाएगी। वह कहेगी कि नहीं, नहीं कोई मतलब ही नहीं है। इसमें कोई तंत ही नहीं है। कोई मायने नहीं रखता है। वह सच्चाई को स्वीकार नहीं कर सकती।

चश्मे के उदाहरण से इसे आसानी से समझा जा सकता है। चश्मे पर लगे हुए नंबर के ग्लास से हमें बाहर की दुनिया दिखती है। यदि नंबर के ग्लास नहीं हों और एक प्रकार से लकड़ी लगी हुई हो तो बाहर क्या दिखेगा? ईर्ष्या, लकड़ी के समान है, जिससे आदमी को कुछ भी नहीं दिखता। दूसरे शब्दों में ईर्ष्या वह ग्लास है जो बिना नंबर का है। वह काला, पीला, लाल, नीला दुनिया को भिन्न-भिन्न रंग दिखाएगी। सच्चाई जान लेने की न उसकी तैयारी होती है और न वह जान पाती है। वह कभी भी किसी की अच्छाई को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगी। हमारी यह वृत्ति जब तक बनी रहेगी तब तक चाहे हम कितनी भी भक्ति कर लें, तब तक चाहे हम कितना ही प्रयत्न कर लें, अपने जीवन को ऊंचाइयों पर नहीं ले जा पाएंगे। हम कभी भी आत्म विकास में सफल नहीं हो पाएंगे। हम कभी भी आध्यात्मिक जीवन में ऊंचाइयां प्राप्त नहीं कर पाएंगे।

ऊंचाइयां प्राप्त करना है तो सुमतिनाथ भगवान के चरणों में आत्मा का अर्पण करना होगा क्योंकि वे चरण निर्दोष हैं। किसी प्रकार का दोष नहीं है। निर्विकार हैं। जब तक निर्विकार चरणों में स्वयं को अर्पित नहीं किया जाएगा तब तक हमारे भीतर निर्विकार भाव बढ़ नहीं पाएंगे। किंतु जैसे ही हम निर्विकार चरणों में अपना समर्पण कर देते हैं वैसे ही हमारे विकार वहां से हटते हुए चले जाएंगे। हम अपने विकारों को बहुत आसानी से दूर कर सकते हैं। मेरी बात समझ में आ रही है ना? (प्रतिध्वनि- समझ में आ रही है) कितनी समझ में आ रही है? एक तोला, एक माशा? कितनी समझ में आ रही है? यह केवल समझने की बात नहीं है, हकीकत में जीवन में उतारने की बात है। निर्विकार जीवन जीने की बात है। जब तक हम निर्विकार दिशा में स्वयं को समर्पित नहीं कर देंगे तब तक हमारे विकार दूर होने मुश्किल हैं। निर्विकार चरणों में अपने आपको नत करते ही, नमाते ही हमारे भीतर निर्विकार शक्ति विकसित होगी जिससे विकार दूर होते हुए चले जाएंगे।

मैंने इंद्रभूति गौतम और गौतम स्वामी के लिए यहां पर कई बार बोला है कि भगवान के पास आए तब उनकी वृत्ति क्या थी? उनके क्या विचार थे? जब भगवान के पास आने के लिए चले यज्ञ स्थान से, तो उस समय के विचार और भगवान के पास में नतमस्तक होने तक के विचार में कितना फर्क हो गया? उस समय उनको ऐसा लग रहा था कि मेरे से बढ़कर कोई नहीं है। उनमें अहंकार था, ईर्ष्या थी। मेरे यज्ञ में आने वाले विमानों को कौन ले जा रहा है? वे भगवान के पास आए और भगवान का बोध मिला। निर्विकार चरणों में समर्पित हो गए। उसके बाद क्या कभी भी प्रभु से उनको शिकायत हुई? क्या जीवन में कभी भी उनके मन में एक बार भी ऐसी बात कौंधी कि भगवान मेरे साथ भेद कर रहे हैं। मुझे इस अंतिम समय में भी यहां से रवाना कर रहे हैं। ऐसी कोई शिकायत उनके मन में पैदा नहीं हुई। सौंप दिया मतलब सौंप दिया। अब कोई भी समस्या मेरी नहीं है। किसकी है? अब मेरी नहीं है।

बहुत कठिन काम है। कहना आसान है क्योंकि यह जीभ बिना हड्डी की होती है, घूम जाती है किंतु वैसी स्थिति को अपने भीतर पैदा करने वाले ही कर पाते हैं। करने वाले ही कर पाएंगे। हकीकत में इस दुनिया से जिनको अरुचि हो गई है, वह व्यक्ति उन चरणों में अपना समर्पण कर पाएगा। अब मुझे नहीं भटकना। बहुत भटक लिया। जब तक मैं अपनी मति से चला, भटका। भटकी मति से चला तो भटका। और भटकते हुए चले गए। ज्ञान का गौरव भी हमें भटकाने वाला हो जाता है। हमारे भीतर सामर्थ्य, शक्तियां हो जाने मात्र से योग्यता नहीं हो जाती है। बिना योग्यता के मेरे पास शक्तियां हैं तो मुझे और अयोग्य बनाएंगी। मेरे भीतर और दुर्गुण बढ़ाएंगी।

दुर्योधन के पास भी शक्ति थी। शिशुपाल के पास भी शक्ति थी। उनकी शक्ति का दुरुपयोग हुआ या सदुपयोग? (प्रतिध्वनि- दुरुपयोग हुआ) दुरुपयोग हुआ। शक्ति रावण के पास भी थी किंतु उसने गलत यूज किया। वैसे ही हमारे पास सामर्थ्य हो जाएगा, शक्ति हो जाएगी तो वह हमें योग्य नहीं बना देगी। योग्यता होती है, हमारी समझ से। हमारी समझ सही है तो हम योग्य हो सकते हैं। अपनी शक्ति का, अपने सामर्थ्य का सही उपयोग करने वाले हो सकते हैं अन्यथा हो सकता है कि हमारी शक्तियां, हमारा सामर्थ्य हमें गलत रास्ते दिखाए और हम गलत रास्ते पर ही आगे बढ़ चलें। हम सही रास्ते पर गतिशील हो जायेंगे, यह बहुत मुश्किल है।

एक राजा बहुत गुणवान था। बुद्धिमान् राजा था। मणिरथ राजा ने अपने भाई को युवराज बनाया। युगबाहु को युवराज बनाया। सामान्यत: अपनी संतान को युवराज बनाया जाता है किंतु मणिरथ ने अपने भाई को युवराज बनाया। दोनों भाइयों का अटूट प्रेम, अखंड प्रेम किंतु एक बार दृष्टि फिसली, दृष्टि बदली और सारा नजारा बदल गया। मदनरेखा अपने आकाशी पर धूप ताप रही थी, अपने बालों को सुखा रही थी। मणिरथ राजा अपने महल की छत पर था। उसकी दृष्टि वहां गई और फिसल गई। उसका मन हो गया कि मदनरेखा तो मेरे राजमहल में होनी चाहिए। अब सारी की सारी बुद्धि विपरीत दिशा में चली गई। अब तक सही दिशा में चल रही थी किंतु अब उसका प्रयत्न होने लगा कि मदनरेखा को मैं अपना कैसे बना सकूं। क्या उपाय किया जाए? उसे लगा कि युगबाहु से इसको अलग किया जाए। युगबाहु जब तक मौजूद रहेगा तब तक यह मेरी तरफ आकर्षित नहीं होगी। युगबाहु अलग होगा तो लता को जैसा सहारा मिलेगा लता उधर बढ़ेगी।

व्यक्ति अपनी सोच से सारा घाट गढ़ता है। उसने एक योजना बनाई और चालू हो गया काम। योजनानुसार राजसभा में सेना को तैयार होने के लिए सूचना दी। आदेश दिया तो युगबाहु ने कहा कि भैया ऐसी कैसी बात है? ऐसा क्या हो गया? मणिरथ ने कहा कि पड़ोसी छोटे-मोटे राजा सिर उठाने लगे हैं। गुप्तचर से सूचना मिली है, उनको पछाड़ना जरूरी है। इसलिए मुझे युद्ध के लिए जाना है। बहुत सहज प्रक्रिया थी। युगबाहु उस कूटनीति को नहीं समझ पाए। क्योंकि वे शुद्ध भ्रातृ प्रेम की भावनाओं से भावित थे। उन्होंने कहा कि भैया, यह कैसे संभव है? यह नहीं हो सकता। मेरे रहते हुए आपको युद्ध के लिए जाना पड़े, यह मेरे लिए शर्म की बात है। ऐसा कभी नहीं हो सकता है। नहीं हो सकता है। यदि जाना है तो मैं जाऊंगा, आप नहीं जाएंगे। तो मणिरथ ने कहा कि नहीं-नहीं, भैया अभी तो तुम छोटे हो। तुम्हें अभी से मैं कैसे भेज दूं। ये सारे नकली बोल हैं। असली भाव है कि चला जाए तो बहुत अच्छा। भगवान का बहुत-बहुत शुक्रिया।

मन चाहता है कि युगबाहु यहां से हट जाए। ऊपर से बना क्या रहा है? घाट क्या गढ़ रहा है? ऊपर से बोलता क्या है और भीतर क्या है? इसे शास्त्रकारों ने विष का घड़ा और अमृत का ढक्कन कहा है। घड़े में जहर भरा हुआ है। ऊपर से बात बना रहा है। भीतर से खराब है और ऊपर से अच्छा बन

रहा है। अरे भाई! तुम अभी छोटे हो। उन लोगों के दांव-पेंच तुम क्या जान पाओगे। इस पर युगबाहु कहते हैं कि भैया, आप क्या विचार करते हो? मैं भी उसी माता की संतान हूं। मैं कोई कम नहीं हूं। आप महान हैं किंतु मुझे भी आप छोटा मत आंको। ये तो हैं ही क्या? ये तो बाएं हाथ का खेल है। इनको एक झटके में ही परास्त किया जा सकता है।

अंततोगत्वा नाटक रचकर भैया को विदा करता है। भैया को विदा करके पीछे से मदनरेखा के पास दूती के माध्यम से पोशाक, आभूषण, अच्छे खाद्य पदार्थ भेजे जाते हैं। मदनरेखा ने एक बार तो सोचा कि जेठ साहब ने भेजा है तो रख लिया। जब बार-बार यह सिलसिला चालू हुआ तब उसके मन में हुआ कि मामला गड़बड़ है। दाल में कुछ काला है। ऊपर से दूती के एक्शन, भाव, बोलने के तरीके से वह समझ गई कि यह रास्ता गलत है। उसने कहा खबरदार! ये सारी चीजें ले जाओ यहां से। दूती 6-5 करने लगी तो उसे फटकारते हुए कहा कि चुपचाप निकल जा यहां से, नहीं तो ऐसा धक्का लगवाऊंगी कि जिंदगी भर याद रखेगी। ऐसी लताड़ दी कि वह चली गई। कहानी बहुत लंबी है और सारी कहानी कहने का मेरा कोई उद्देश्य भी नहीं है। दूती को फटकार कर निकालने का अर्थ भी उसने अपने तरीके से लगाया। उसने सोचा कि मदनरेखा वस्तुत: समझदार है। वह गंभीर है। वह इस विषय में किसी को बीच में नहीं रखना चाहती।

युगबाहु शत्रुओं को जीतकर आ गया। थोड़े दिन विश्राम के लिए वह बगीचे में चला गया, उद्यान में चला गया। मदनरेखा भी साथ थी। रात्रि के समय मणिरथ विचार करता है कि उद्यान में वह एकाकी होगा। ज्यादा लोग होंगे ही नहीं। ज्यादा सेना और आरक्षी दल नहीं होंगे। मैं वहां पर आसानी से उसका काम तमाम कर दूंगा फिर मदनरेखा मेरी हो जाएगी। ऐसा सोचता हुआ वह उद्यान में जाता है।

उसके मन में भय था कि मेरा यह भेद खुल नहीं जाए। आदमी बुरे कर्म कर लेता है फिर भयभीत भी होता है। भेद खुलने के विचार उसे सताते रहते हैं। क्या-क्या सोचा? बहुत सारी बातें। ये सारा विपरीत मति का खेल है। एक बार दृष्टि फिसली नहीं, एक बार विचार फिसला नहीं कि सारी सोच बदल गई। वैसे ही जब हमारे भीतर एक दुर्गुण विशेष रूप से कार्यरत होता है तब हमारी सारी शक्तियां उसी ओर कार्यरत होने लग जाती हैं। एक अहंकार जब हमारा सक्रिय

होता है तो हमारी सारी शक्तियां किधर लग जाती हैं? सारी चर्या, सारी शक्तियां, सारे विचार उस ओर लग जाएंगे। अब युगबाहु पर उसकी दृष्टि चली गई। नंगी तलवार पर विष लगाकर मणिरथ उधर आता है।

उसका आना समझकर मदनरेखा ने युगबाहु से कहा कि नाथ अभी आपके भाई का आना उचित नहीं है। उसने संक्षिप्त में बता दिया कि उनकी दृष्टि कैसी है। युगबाहु ने कहा कि नहीं, तुम तो भोली हो। भैया का ऐसा विचार हो नहीं सकता। तुम्हें भ्रांति हुई होगी। कहा, नाथ! आप सावधान रहिए। इस रात्रि में आने का मतलब क्या हुआ! युगबाहु को शक हुआ कि इस रात्रि में क्यों आए? दरवाजा खटखटाया तो कहा, कौन? कहा, मणिरथ। युगबाहु ने कहा भैया आप, इस रात्रि में? मणिरथ ने कहा, हां भाई, आप अभी यहां पर रुक गए हो। अभी-अभी आप शत्रु को हराकर आए हो। कहीं शत्रु रात्रि में हमला न कर दे, इसलिए मुझसे रहा नहीं गया और मैं चलकर आ गया।

वह सच्ची बात बोल रहा है क्या?

(प्रतिध्वनि- नहीं)

एक गलत दिशा लेने के बाद आदमी को कितनी गलतियां करनी पड़ती हैं। कितने गलत घाट गढ़ने पड़ते हैं और कितने झूठ बोलने पड़ते हैं, यह हम इस एक घटनाक्रम से समझ सकते हैं। ऐसे यदि अपने विचारों को लेकर चलेंगे तो क्या आत्मा को ऊंचाइयां दे पाएंगे?

दोनों भाइयों में वार्ता चल ही रही थी कि मणिरथ तलवार निकालकर उसका वार युगबाहु के शरीर पर करके भागता है। वह सोचता है कि बस! अब मैं जीत गया। लेकिन भागते समय रास्ते में उसके घोड़े के पांव के नीचे सर्प की पूंछ आ गई। घोड़े का पांव सर्प की पूंछ पर पड़ गया। सर्प ने उछल करके मणिरथ के पैर को काट लिया। मणिरथ वहीं गिर जाता है और आर्त-रौद्र ध्यान के वशवर्ती होकर नरक में चला जाता है।

क्या हो गया? कौन-से मनसूबे थे? कौन-सी सफलता प्राप्त करने का मनसूबा था? कौन-सा बुलंद भाव लेकर चल रहा था? और 7वीं नरक का मेहमान बन गया।

बंधुओ, मानसिक विकार, मानसिक अध्यवसाय, मन की लताड़ भयंकर है। कर्मों का बंध कराने वाली है। यदि हम सावधान नहीं हो सके, सजग नहीं हो सके, सुमतिनाथ भगवान के चरणों में अपने आपको समर्पित नहीं कर

सके तो हम निर्विकार नहीं हो पाएंगे। हमें निर्विकार बनने के लिए, अपनी आत्मा के उद्धार के लिए अवश्यमेव परमात्मा के चरणों को प्राप्त करना चाहिए और पूरा लक्ष्य बना लेना चाहिए।

सुमति चरण कज आतम अर्पणा।
दर्पण जेम अविकार सुज्ञानी,
मति दर्पण बहु सम्मत जाणिये,
परिसर्पण विचार सुज्ञानी।

हमने बहुत बार सुना है कि मगरमच्छ के भायण में रहने वाला तंदुलमच्छ कैसे विचार करता है और मरकर के 7वीं नरक में चला जाता है। मणिरथ 'सल्लं कामा विषम कामा, कामा असि विसोवम' के अनुसार काल ग्रसित हो फिसल गया। कहां तो भाई को युवराज बनाया। बेटे के समान समझ रहा था और कहां दृष्टि फिसलते ही कैसे कुकर्म किए? इतना मानसिक अपराध किया और अपने अध्यवसायों को इतना मलीन बना लिया कि 7वीं नरक का मेहमान बन गया।

बंधुओ, बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। बहुत संभलकर रहने की आवश्यकता है। हमारे ही विचार हमें दुर्गति में ले जाने वाले होते हैं। दूसरा कोई हमारा बिगाड़ करने वाला नहीं है। हमारा यदि बिगाड़ होगा या हुआ है या हो रहा है तो वह बिगाड़ करने वाले हम स्वयं हैं।

है कोई दूसरा? है क्या कोई तीसरा? कोई भी कुछ बिगाड़ कर सकेगा क्या? जितना भी बिगाड़ किया है, जितना भी बिगाड़ हुआ है, वह सारा बिगाड़ करने वाला कौन है? (प्रतिध्वनि- व्यक्ति स्वयं है)

बिगाड़ करने वाले स्वयं हम ही हैं। इसलिए हमें अपनी समीक्षा करनी चाहिए। अपनी वृत्तियों का समीक्षण करना चाहिए और अपनी समीक्षा करते हुए हम अपनी वृत्तियों का संशोधन करेंगे, परिमार्जन करेंगे और परमात्मा के चरणों की दिशा में अपने आपको नत बनाएंगे तो सच्चे मायने में सही दिशा को पकड़ पाएंगे। हो सकता है कि हम निर्विकार अवस्था को प्राप्त कर धन्य बन जाएं।

इतना ही कहते हुए विराम।

04.11.2019

14

अलख को हम लख सकें

पद्म प्रभु! जिन तुज मुज आंतरूं रे,
किम भांजे भगवंत।
पद्म प्रभु! जिन तुज मुज आंतरूं रे।

पद्म प्रभ भगवान की स्तुति करते हुए भावना व्यक्त की गई है कि पद्म प्रभ भगवान में और मेरे में अंतराल पड़ गया, दूरी बढ़ गई। काल की दूरी बढ़ गई, क्षेत्र की दूरी बढ़ गई, भावों की दूरी बढ़ गई। भगवान, 'किम भांजे' यह अंतराल, यह जो दूरी है इसको दूर कैसे किया जाए? क्या उपाय है, क्या फॉर्मूला है जिससे इस दूरी को दूर किया जा सके। इस दूरी को कैसे बांटा जा सकता है?

क्षेत्र और काल की दूरी अलग दूरी है। सबसे बड़ी दूरी भावों की है। वे क्षायिक और पारिणामिक भाव में विराज रहे हैं। बात थोड़ी जटिल होने लग जाएगी। पारिणामिक भाव, क्षायिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, औपशमिक भाव, औदयिक भाव। क्या हैं ये सारी चीजें? कम ही लोग जानते हैं ना! फिर भी हम जानने का प्रयत्न करेंगे तो ठीक रहेगा। कर्मों के उदय से होने वाली रचना को कहते हैं औदयिक भाव। शरीर मिला है कर्मों के उदय से। यह शरीर उदय का परिणाम है। कषाय लेश्या कर्मों के उदय से होते हैं। यह कर्मों के उदय से प्राप्त होते हैं, इसलिए इनको औदयिक भाव के अंतर्गत माना गया है।

कर्मों के क्षय से जीव को जिस भाव की प्राप्ति होती है, उसको क्षायिक भाव कहा गया है। क्षायिक समकित, क्षायिक ज्ञान-केवलज्ञान, केवल दर्शन, क्षायिक चारित्र कर्मों के क्षय से हमें प्राप्त होते हैं। इसलिए इनको क्षायिक भाव के अंतर्गत लिया गया है। हमारे में विकसित हुए ये गुण कर्मों के क्षय से हुए। मोह कर्म के उपशम से, उपशम समकित और उपशम चारित्र की प्राप्ति होती है और

कर्मों के क्षयोपशम से कुछ कर्मों का उदय है और कुछ कर्मों का क्षय। इससे जो अवस्था उत्पन्न होती है, वह क्षायोपशमिक भाव है।

हममें थोड़ी-बहुत समझ है या नहीं है? समझ है किंतु भगवान महावीर जैसी समझ, भगवान महावीर जैसा ज्ञान, जिनेश्वर देवों जैसा ज्ञान हमारा नहीं है। यह कुछ हमें प्राप्त हुआ है और कुछ प्राप्त नहीं हुआ है। इस अवस्था को कहते हैं क्षायोपशमिक। मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनपर्यव ज्ञान, क्षायोपशमिक समकित कर्मों के क्षय एवं उपशम से निष्पन्न हैं इसलिए इनको क्षायोपशमिक भाव कहते हैं।

हम अभी किन भावों में जी रहे हैं? पारिणामिक भाव में। जिसमें आत्मा का परिणमन होता रहता है, वह पारिणामिक भाव है। भव्यत्व, अभव्यत्व, द्रव्यत्व, अस्तित्व आदि सारे भाव पारिणामिक भाव हैं। ये पारिणामिक भाव के भेद हैं।

उत्तमचंद जी रांका, आपमें अभी कौन-कौन-से भाव विद्यमान हैं? (वे 'ना' कहने के अर्थ में कुछ हाव-भाव करते हैं।)

अरे! ऐसा करने से नहीं चलेगा। हां, बोलो मैं इंतजार कर रहा हूं। कोई जल्दी नहीं है मुझे। ले लो राजकुमार जी का सहयोग। सहयोग लेना है तो सहयोग ले लो। छूट है यह भी। ऑपन बुक एक्जाम है। अध्यक्ष बनाने में राजकुमार सहयोगी बन सकते हैं तो यहां पर सहयोगी नहीं बन सकते हैं क्या? (प्रतिध्वनि- एक दिन आएगा तब बताऊंगा) वह दिन आएगा। अरे! कब आएगा? चार महीने तो चातुर्मास का उठ रहा है। अब और कितने दिन बाकी रह गए? यदि महासतियां जी की क्लास अटेंड करते तो आज यह दिन नहीं देखना पड़ता। बोलो, दिन देखना पड़ता क्या? अटेंड करते तब जवाब दे सकते थे। दे सकना कोई जरूरी नहीं है। क्लास में यह विषय चला ही नहीं होगा तो क्या करेंगे? क्लास में जो विषय चलेगा उसका आप जवाब दे सकोगे। इसलिए हमें निरंतर स्वाध्याय में रत रहना चाहिए। स्वाध्याय में रत रहेंगे तो कई नए विषय आयेंगे। कई नए अनुभव होंगे। हम तो बड़ी मुश्किल से 15 मिनट का समय निकालते होंगे कि सौगंध लिए हुए हैं इसलिए 15 मिनट पढ़ लो। ऐसा नहीं कि आपको जब भी फुर्सत हो तब आप पढ़ने बैठ जाओ। मैं तो यह कहूंगा कि आपके सारे काम बाद में, पहले हमारे अध्यात्म की खुराक होनी चाहिए।

डॉक्टर कमलचंद सोगानी ने आचार्य देव के ग्रंथ 'समता दर्शन और

व्यवहार' के विषय में कहा कि जब तक मैं इसका एक पेज नहीं पढ़ लूं, एक पन्ना नहीं पढ़ लूं, तब तक मुझे चैन नहीं पड़ता। सरदारशहर के डॉक्टर छगनलाल शास्त्री का भी उस ग्रंथ के प्रति ऐसा ही भाव था कि इसको पढ़े बिना चैन नहीं पड़ता। डॉक्टर शिवाशंकर त्रिवेदी ने तो कहा कि पूरा विश्व धू-धू करके जले और मुझसे कहा जाये कि एक चीज बचानी है तो मैं आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. का 'समता दर्शन और व्यवहार' ग्रंथ बचाना चाहूंगा। इस ग्रंथ को यदि बचा लिया तो हम नए सिरे से समाज की सृष्टि कर सकते हैं, रचना कर सकते हैं। नए सिरे से समाज को हम खड़ा कर सकते हैं। दुनिया उसका लाभ उठा रही है, पर हमारे घर की चीज हमारे लिए अबूझ बनी हुई है। पता नहीं क्या है? समता दर्शन व्यवहार क्या है? दीपेश जी क्या है? किताब है तो सही नानेशवाणी। किताब में क्या है? (प्रतिध्वनि- समता दर्शन का विवेचन) हां, क्या है विवेचन? ऊपर से हेडिंग है। नाम लिख देते हैं। बेटे में ऐसा होगा कोई लक्षण तभी तो नाम निकाला है।

लूणकरण जी विद्यार्थी सरदारशहर में हमको अध्ययन करा रहे थे। मैं उस समय वैराग्य अवस्था में था। सरदारशहर में ही शांतिमुनि जी म. सा. का चातुर्मास भी था। उस समय उनसे अध्ययन कर रहा था। हिंदी का अध्ययन चल रहा था। एक बार उन्होंने निबंध लिखने के लिए दिया। मैंने कहा कि आप शीर्षक बता दें। शीर्षक क्या दें? उन्होंने कहा कि हमारी भारतीय संस्कृति में पहले जन्म होता है उसके बाद नाम रखा जाता है। पहले निबंध लिखो उसके बाद शीर्षक ढूंढेंगे। आजकल तो पहले ही सोच लेते हैं कि क्या नाम रखना है? भले ही पहले सोच लो किंतु जन्म के बाद में नामकरण होता है ना! आज हमें मुंह ताकना पड़ रहा है। यहां पर मौन रखना पड़ रहा है। इसका कारण क्या है? हमने उस ग्रंथ का ध्यान नहीं किया। हमारे घर में होंगी चीजें। नानेशवाणी के पूरे सेट होंगे। और भी दूसरे सेट होंगे। किताबें ले जाकर घर में रखने की नीयत है। आदत तो अच्छी है। रखना चाहिए। पर खाली रखने से क्या होगा?

हम बात कर रहे थे कि पद्मनाथ भगवान से दूरी कैसे दूर हो? पर मेरे यहां प्रश्न खड़ा है कि हमारी नानेशवाणी, समता दर्शन और व्यवहार में क्या विषय है? उससे दूरी कैसे दूर करें? हमारे को वह भी पता नहीं है कि कौन-से दिन में, कौन-सी तारीख को, कौन-से आचार्य श्री ने कौन-सा व्याख्यान दिया।

गंगाशहर-भीनासर की एक बात है। मैंने जैसा सुना है वैसा बता रहा हूं। किसी घर में पिता जी बोले, घर वालों को प्रेरणा देते हुए कहा कि तू अभागा है, जो व्याख्यान में नहीं जा रहे हो। मैं हर दिन व्याख्यान सुनता हूं। मैं प्रत्येक तारीख के व्याख्यान का विषय बता दूं कि किस तारीख को गुरुदेव ने क्या व्याख्यान दिए? जिसको जिज्ञासा होगी, वह देवलोक से आकर भी व्याख्यान सुन लेगा। जिनको जिज्ञासा नहीं हो उनको?

जयपुर वालों ने नहीं सोचा था कि हम नमाज पढ़ने जा रहे हैं और रोजे गले पड़ जाएंगे। वे आने वाले चातुर्मास की विनती कर रहे हैं और पूरा सर्वे करके बता रहे हैं कि कौन-सा-कौन-सा स्थान है, कितना बड़ा हॉल है, कितने कमरे हैं, कितने घर लगते हैं, आस-पास में। उन्होंने लिखा है कि संवर, पौषध करने की प्रचुर जगह है। जगह तो प्रचुर है किंतु करने वाले प्रचुर हैं या नहीं हैं?

यहां जोधपुर में संवत्सरी या पर्युषण के अलावा यह पंडाल कब भरा है बताओ? ताराचंद जी, संयोजक साहब बोलो! ये बताओ कि पर्युषण के अलावा यह पंडाल कभी संवर, पौषध से भरा या नहीं भरा?

जगह तो बहुत है किंतु जगह भरने वाले कौन हैं? क्या आप यह ताकत रखते हो कि हम अगला चातुर्मास कराएंगे तो संवर करने वालों से पंडाल रोज भरा रहेगा! बाहर के दर्शनार्थी भी पंडाल में, हॉल में ही रुकेंगे। वहीं उनको सोना है, पौषध करना है। अलग से न तो हॉल रहेगा और न कोई और। अपनी सुरक्षा अपने हाथ।

एक उत्तमचंद जी से पूछ लिया कि उनमें कितने भाव हैं। यही प्रश्न यदि आप में से किसी से पूछ लूं कि आप में कितने भाव मौजूद हैं तो आप क्या जवाब देंगे। अभी जोधपुर वालों से ही पूछना ठीक है। अभी ताजा-ताजा सुने हुए हैं। बोलो पटवा जी, कौन -कौन-से भाव हैं? नीलम जी, कौन-कौन-से भाव हैं?

(पटवा जी खड़े हो गए। पटवा जी कहते है, जितना सामर्थ्य है, उतना बता सकता हूं।)

जितना सामर्थ्य है, उतना ही बताओ। ज्यादा भार देने की बात करते ही नहीं हैं।

अब करणीदान जी में सामर्थ्य नहीं है तो पीछे वालों में कितना सामर्थ्य होगा? कोई बात नहीं आप दया पालो। विषय की शुरुआत में बोला

गया कि बात जटिल हो जाएगी। विषय अपरिचित होने से व सहसा पूछ लेने पर हर कोई तत्काल जवाब दे दे यह थोड़ा कठिन है। मेरे पूछने के पीछे एक कारण यह भी है कि हमें प्रेरणा मिले कि हमारा जीवन निरंतर स्वाध्याय की अपेक्षा, स्वाध्याय की मांग कर रहा है। बहुत कुछ ऐसा लगता है कि जहां निरंतर चातुर्मास हो रहे हैं, साधु-साध्वी विचरण कर रहे हैं, वहां बड़ा अंतराल पड़ना चाहिए। निरंतर वर्षा होती है तो जड़ें गल जाती हैं। निरंतर वर्षा होने से जड़ें गल जाएंगी और निरंतर धूप पहुंचेगी तो जड़ें सूख जाएंगी। इसलिए थोड़ी वर्षा भी होनी चाहिए और थोड़ी धूप भी मिलनी चाहिए। थोड़ा खुला भी रखना चाहिए। कभी चातुर्मास होना, कभी चातुर्मास? (प्रतिध्वनि- कभी चातुर्मास नहीं होना।) अरे! ये कैसे हो सकता है? चातुर्मास नहीं कैसे हो सकता है? चातुर्मास होने चाहिए। अपनी भूल हमें सुधारनी चाहिए।

जिन भावों में हम जी रहे हैं, उनकी अपने को जानकारी होनी चाहिए। मैं भावों की परिभाषा कर गया। अब विचारें कि कर्मों का उदय हमारे है या नहीं है? हमारे यहां अभी कर्मों का उदय चल रहा है। कर्मों का उदय चल रहा है तो औदयिक भाव है या नहीं है? यह हमने जाना कि थोड़ा बहुत ज्ञान हमको है, पर पूरा नहीं है। मति हो, श्रुत हो, कुछ भी हो और ये कौन-से भाव का भेद है? ये क्षायोपशमिक भाव का भेद है। तो क्षायोपशमिक भाव भी हुआ या नहीं हुआ? और पारिणामिक भाव, प्रत्येक आत्मा चाहे भवी होगी या अभवी, कोई-न-कोई तो है ही। इस प्रकार पारिणामिक भाव हुआ या नहीं हुआ? केवलज्ञान है क्या वर्तमान में? (प्रतिध्वनि- नहीं) नहीं है ना? तो बस! अभी हमारे औपशमिक और क्षायिक दो भाव नहीं है। बाकी कितने भाव हो गए? तीन भाव हो गए और सिद्ध भगवान में कितने भाव मिलेंगे?

सिद्ध भगवान में कितने भाव मिलेंगे? (प्रतिध्वनि- दो भाव) हां, दो। एक क्षायिक भाव, दूसरा, पारिणामिक भाव। जो क्षायिक भाव हमारे में नहीं है, वह किसमें है? (प्रतिध्वनि- वह सिद्ध भगवान में हैं) पारिणामिक तो है ही हमारे में। पारिणामिक हमारे में भी है और सिद्ध भगवंतों में भी है। प्रत्येक पदार्थ में पारिणामिक भाव रहा हुआ है। चाहे वह जड़ हो और चाहे चेतन हो। पारिणामिक भाव में द्रव्यत्व भी है, अस्तित्व भी है। द्रव्यत्व पुद्गलों में भी है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय में भी है और अस्तित्व भी है।

टेबल, घड़ी का अस्तित्व है या नहीं है? यह पारिणामिक भाव हुआ।

यह द्रव्य मात्र में है, पदार्थ मात्र में है तो सिद्ध भगवान में पारिणामिक भाव और क्षायिक भाव होंगे और हमारा और परमात्मा का मेल, अंतर, दूरी कैसे दूर हो पाएगी? औदयिक भाव हमारा छूटेगा, औदयिक भाव को समाप्त करेंगे तो सिद्धत्व की प्राप्ति होगी। जब तक औदयिक भाव रहेगा, कर्मों का बंध रहेगा, कर्मों का उदय रहेगा तब तक हम सिद्ध नहीं बन सकेंगे। अत: कर्मों को हटाना होगा। औदयिक भाव समाप्त होगा तो हम सिद्ध भगवान से रू-बरू हो पाएंगे या उस स्थान पर पहुंच पाएंगे। वह दूरी दूर होगी। साक्षात्कार की दूरी दूर करने में हमारा क्षायिक भाव काम आएगा। यदि क्षायिक समकित आ गयी तो हम दृढ़ आस्थावान बन पाएंगे। सिद्ध भगवान पर अटूट, अविचल विश्वास करने वाले बनेंगे। जिस दिन केवलज्ञान पैदा हो जाएगा, यहां से हम सिद्ध भगवान को देखने में भी समर्थ हो जाएंगे तो वह दूरी एक प्रकार से दूर हो जाएगी।

औदयिक भाव को हटाने के लिए हमें प्रयत्न करना पड़ेगा। औदयिक भाव हटेगा, घाती कर्मों का क्षय होगा तो केवलज्ञान भी मिल जाएगा। इसलिए हमारी साधना का एक मात्र उद्देश्य कर्मों को हटाना है। कर्मों के उदय को दूर करना, उदय को भोग-भोग करके कर्मों को नष्ट कर देना है। जब सारे कर्म हट जाएंगे, कर्म समाप्त हो जाएंगे, जब कर्म रहेंगे ही नहीं, तब कोई कर्म उदय में आएंगे ही कैसे? टंकी खाली हो जाए तो टोंटी में पानी आयेगा ही कहां से? वह क्षण किसका हो जाएगा? परमात्मा और मेरा एकमेक हो जाएगा। मैं भी सिद्ध बन जाऊंगा। अगला क्षण नहीं लगेगा। जिस क्षण हमने कर्मों का क्षय कर दिया, उसी क्षण, उसी समय हम सिद्ध बन जाएंगे। उस क्षण को हमें पैदा करना है। वह समय, वह अवसर लाने के लिए भगवान ने दो उपाय बताये हैं।

भगवान के बताये दो उपाय हैं श्रुत धर्म और चारित्र धर्म। श्रुत धर्म से समझो, श्रुत धर्म से जानो और चारित्र धर्म से काटो। इन दो से हमारा सिद्धत्व, सिद्ध भगवान की दूरी को दूर करने में समर्थ हो सकता है।

कर्म विपाके ओ कारण जोइने रे, कोई कहे मतिमंत।

कर्म विपाक का मतलब, कर्म का उदय। उसका कारण कर्मबंध, कर्मबंध और कर्म का उदय बीच में रुकावट हैं। इनको हटा लिया तो अंतराल दूर हो जाएगा। सिद्ध बन जाएंगे।

आचार्य पूज्य गुरुदेव पिछले समय में लोगों की दृष्टि और उनकी समझ से भिन्न थे, क्योंकि अब उन्हें दुनिया से ज्यादा कोई मतलब नहीं रह गया

किंतु अपने आपमें मक्कम थे। वह एकदम जागरूक थे कि मुझे संथारा करना है। डॉक्टर का इलाज नहीं चाहिए। पहले तबीयत ऊंची-नीची हो जाती तो डॉक्टर को दिखाने की स्थिति हो जाती थी किंतु उस समय यह हो गया कि डॉक्टर आ जाए तो डॉक्टर से बात नहीं करना। उससे बात ही नहीं करते, मुंह फेर लेते। कहा जाता कि बी.पी. की जांच करवा लें तो कहते, नहीं करवाना। हिमांशु मुनि जी जब दीक्षित नहीं हुए थे, उस समय डॉक्टर थे। उन्होंने कहा कि ऐसे कैसे गफलत में रह जाएं। एक बार सी.टी. स्कैन करवाना चाहिए। जैसे-तैसे हॉस्पिटल तक ले गए पर जैसे ही मशीन पर बैठाया तो उतर गए। कहने लगे कि नहीं बैठना, चलो। मुझे नहीं करवाना, यहां से चलो।

हिमांशु मुनि जी, जो उस समय डॉक्टर हरक चंद जी थे, वो प्रयत्न करते रह गए कि सी.टी. स्कैन करवाएं, पर कैसे? कब तक शरीर का पोषण करते रहेंगे? कब तक पोषण करते रहेंगे। बहुत किया, अब शरीर के पोषण का समय नहीं है। अब तक शरीर का पोषण बहुत कर लिया। अब औदयिक भाव को समाप्त करने की दिशा में प्रयत्न करना है। अब शरीर के पोषण से काम नहीं चलेगा। यह तो मौका है। मौके का लाभ लेना है तो ले लो नहीं तो हाथ से निकल जाएगा। वापस कब मिलेगा कहना कठिन है। अभी नौका मिली है। इस नौका में बैठ गए तो तर जाएंगे। यह नौका यदि चूक गए, गाड़ी चूक गए, प्लेन चूक गए तो यह अवसर भी चूक जाने वाला है। एक बार चूक जाने के बाद वापस जाना पड़ेगा शरीर में। वापस औदयिक शरीर में चले गए तो फिर कौन-सी नौका मिलेगी? नौका तो होगी पर किसकी नौका होगी? यह हो सकता है कि तिर्यंच में चले जाएं, अन्य योनियों में चले जाएं। हो सकता है कि औदारिक शरीर भी मिल जाए पर वे नौकाएं काम नहीं आएंगी। एकमात्र मनुष्य का शरीर है और वह भी कर्मभूमि के मनुष्य का शरीर, वही नौका के रूप में काम आ सकता है। वही नौका पारगामी है। शेष नौकाएं संसार का भ्रमण कराने वाली हैं।

आचार्य देव ने साधना के मकरंद को प्राप्त कर लिया। वर्षों तक जो साधा, लास्ट में उसका सार निकाल लिया। जाने नहीं दिया हाथ से। पूर्ण सजग कि मुझे संथारा लेना है। संथारा किया भी। संलेखना की। महीनों पहले उन्होंने संलेखना चालू कर दी थी। दवा नहीं लेना, आहार बिलकुल कम कर देना। जो कुछ भी हो भीतर सजगता थी। हम बोलते हैं कि गुरुदेव मांगलिक नहीं सुनाते हैं। बोलते ही नहीं हैं। कितनी सुना दी मांगलिक? अब तो उन्हें अपना मंगल

करना था। उन्होंने अपने आपमें अपने आप को केंद्रित कर लिया। वह दृष्टि जिस दिन हमारी केंद्रित होगी तो हम सिद्ध भगवान की दूरी को दूर करने का सामर्थ्य पा सकेंगे।

चौमासा कराने के लिए बहुत सारे संघ विनती कर ही रहे हैं। फाल्गुनी चातुर्मास के लिए भी कई संघ आग्रह कर रहे हैं। कई छोटे-छोटे संघ भी जहां 15-20-25 घर हैं, विनती कर रहे हैं कि होली चातुर्मास हमारे यहां पर हो। कभी-कभी लोग कहा करते हैं कि आप बड़े-बड़े शहरों में चातुर्मास करने वाले हो। गांव वाले हिम्मत ही नहीं कर सकते हैं। पर यहां तो देखो छोटे-छोटे गांव वाले ही बहुत हैं कि हमें भी चातुर्मास कराना है, हमें भी चातुर्मास कराना है। चातुर्मास कराने में सक्षम हैं या नहीं हैं? (प्रतिध्वनि- सक्षम हैं)

आप चातुर्मास-फाल्गुनी चौमासा कराने को तो सक्षम हैं किंतु चातुर्मास-होली चातुर्मास या कुछ भी कराने के बाद उसका लाभ क्या उठाते हैं? व्यापार में पैसा लगाया जाता है तो इनकम देखते हो और चातुर्मास की इनकम कितनी हुई? चौमासे की इनकम? हमें क्या हाथ आता है? मलाई लोग लूटकर ले जावें तो पीछे दूध की खुरचन रह जाती है। वह किस काम का? हम केवल व्यवस्थाओं में रह जाएंगे।

बाहर से आने वाले यदि सामायिक नहीं करें, संवर नहीं करें, पौषध नहीं करें और न ही स्थानीय लोग करें तो क्या होगा? आने वाले सोचते हैं कि हम तो बाहर से आए और स्थानीय लोग सोचते हैं कि हमें बाहर से आने वालों की सेवा करनी है। ऐसी स्थिति में दया, पौषध, संवर बेचारे मुंह ताकते रह जाते हैं कि कोई तो आए। 'बाबो आवे न बाटियो लावे। भूखो कुण रहे जावे?' पेट सबके भरेंगे किंतु दया, पौषध, संवर का पेट कितना भरेगा? कितना पेट भरेगा? मदनलाल जी बोलेंगे कि बावजी मैंने तो किया था। अरे! मैं कब बोल रहा हूं कि आपने नहीं किया। जिन्होंने नहीं किया है, बात उनके लिए है। इसलिए ऐसी प्लानिंग बनाओ, ऐसा प्लान बनाओ कि हम चातुर्मास करावें तो पहली श्रेणी में मौजूद मिलें। हर क्लास में। जो आ रहा है, उसमें भले ही मत बैठो किंतु नहीं आ रहा है उसमें?

हम क्या सोचते हैं? हम केवल व्यवस्था करने वाले हैं। हम व्यवस्था कर देंगे। यह शिविर लगा देंगे, वो शिविर लगा देंगे। शिविर आप लगवा देंगे लेकिन आ कौन रहा है? कितने लोग आ रहे हैं? कौन-से शिविर में कितने

उपस्थित हुए हैं? तब क्या उत्तर होगा? इसका कारण है कि हमने अपनी जवाबदारी समझी ही नहीं है। मैं यह नहीं कहता हूं कि आप 24 घंटे साधुओं के पीछे लग जाओ किंतु कुछ तो आपके समय का उपयोग होना चाहिए। कुछ तो आप लाभ उठाओ। आप नहीं भी आओगे तो भी हमारे को कोई दिक्कत नहीं है। हमको तो कहीं भी चातुर्मास करना है तो करना ही है। यदि एक भी आदमी सुनने के लिए नहीं आएगा तो हमारा कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। हमको तो स्वाध्याय करना है। आप आए तो आपके निमित्त से स्वाध्याय कर लेते हैं। आप नहीं होंगे तो हमको अपने आप करना है।

हमको हमारा काम करना है किंतु आप जब चातुर्मास कराने के हिसाब से आते हैं तो फिर आपकी क्या जिम्मेदारी होनी चाहिए? अन्यथा क्यों चातुर्मास की विनती लेकर आगे आवे? हम लाभ उठाने के लिए तैयार ही नहीं हैं। लाभ नहीं उठा सकते तो फिर किसलिए चातुर्मास करना! कुछ प्लान होना चाहिए या नहीं होना चाहिए? प्लान होना चाहिए या नहीं होना चाहिए? कई बार यह देखा जाता है कि चातुर्मास में (बीच में सभा में एक श्रावक बात-चीत करने लग जाते हैं) अरे! राजकुमार जी अभी तो मैं बोल रहा हूं। मैं बोल रहा हूं तो मेरी सुनो। आप यह मत समझो कि केवल जयपुर वालों को ही सुनाया जा रहा है। जो भी विनती लेकर आए हैं, उन सबके लिए ही बोला जा रहा है और जो चातुर्मास करा चुके हैं उनके लिए भी है। क्योंकि उन्होंने क्या विशेष कर लिया? बल्कि कई बार यह देखा गया कि चातुर्मास में होड़ लग जाती है कि मेरा नाम, मेरा नाम और यह नाम क्यों?

मैंने कल या परसों ही बताया था कि नील के रंग से या नील के घोल से लिखे हुए नाम पर जब पानी पड़ता है तो वह धुल जाता है। फिर पक्का नाम किसका होगा? ऑयल पेंट से लिखा हुआ नाम पक्का नाम होता है। ऑयल पेंट में किसका नाम होगा? जिसने चातुर्मास का लाभ उठा लिया, उसका नाम ऑयल पेंट में आ जाएगा। यदि कागजों पर नाम लिखोगे तो दीमक खा जाएंगे और दीवार पर लिखे हुए नाम पर पानी गिरा और पुत गया। कौन किसको याद करने वाला है? कौन किसको स्मृति पटल पर उभारने वाला है? इसलिए ऐसा कुछ कर जाओ-

अरे परदेशी कुछ काम कर जा,
जाते-जाते पैदा यहां नाम कर जा।

ऐसा कुछ काम करो कि ऑयल पेंट में लिखा जाए। जैसे राम, कृष्ण, महावीर। हमको मालूम नहीं, कितने वर्षों के संवत् बीत गए। कितने संवत् बीत गए। हजारों वर्ष बीत गए फिर भी नाम लिया जा रहा है। इसका मतलब उनका नाम किससे लिखा गया? (प्रतिध्वनि- ऑयल पेंट से) हां, ऑयल पेंट से नाम लिखा गया। हम भी ऐसा नाम लिखावें। नहीं तो फालतू में लड़-झगड़कर यह नील से लिखा जाने वाला नाम कल उतर जाने वाला है। ऐसी स्थिति में आज लड़कर लिखवा भी लोगे तो वह कल उतर जाने वाला है। ऐसा कोई बढ़िया फॉर्मूला ईजाद करो जिससे नाम की भूख ही खत्म हो जाए ताकि फालतू की नील घोल-घोलकर खत्म नहीं करनी पड़े।

कुछ हम करें। जीवन में कुछ परिवर्तन करें। जीवन में प्रामाणिकता लाएं। ईमान और सत्य को संजोएं। ऐसा लक्ष्य बनाते हैं तो लाभकारी हो सकता है। उससे भगवान से बनी हुई दूरी को दूर करने में समर्थ बनेंगे।

पद्म प्रभ! जिन तुज मुज आंतरूं रे।
किम भांजे भगवंत।।

परमात्मा से बनी दूरी को दूर करने का प्रयत्न करना हमारे लिए सार्थक है, वह हमारे लिए सफल है। ऐसा कुछ लक्ष्य जोधपुर वालों को करना है। अन्य को भी करना है। जो भी चातुर्मास के लिए उत्साहित हो रहे हैं उनको ऐसा प्लान करना चाहिए कि वे सिद्ध भगवान की दूरी को दूर करने में समर्थ बन सकें। अलख को लख सकें।

मुमुक्षु बहिन अनिता कुंभट की तमन्ना है कि सिद्ध भगवान से उसकी दूरी दूर हो जाए। काफी समय से वैराग्य भाव में चल रही हैं। इनके पारिवारिकजन भी आज यहां पर उपस्थित हैं। संबलपुर (छ.ग.) के कुंभट परिवार की ऐसी भावना हुई कि 25 अप्रैल को बहिन अनिता कुंभट की दीक्षा हो जाए। उसकी स्वीकृति आज यहां दी जा रही है।

इतना ही कहते हुए विराम लेता हूं।

05.11.2019

“संशयशील आत्मा का विनाश होता है। वह आत्मा विकास की ओर नहीं बढ़ सकती किंतु जिज्ञासा और समाधान व्यक्ति का आत्मविकास, आध्यात्मिक विकास कराने वाला होता है और विकास कराने में सहयोगी बनता है।”

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत – श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर–334401 (राज.)
दूरभाष : 0151–2270261, 3292177, 2270359

visit us : www.sadhumargi.com
e-mail : ho@sadhumargi.com

राम चमक रहे भानु समाना

Price : ₹ 100/-